"....आपके साथ जो गुजरता है उसे विस्मृत करके क्या आप कोरा कागज हो सकते हैं? मस्तिष्क का सहज धर्म तो यही है न कि जो आपके साथ हो रहा है उसी को लेकर आप दुखी या प्रफुल्लित होते रहें। हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। कोई लाख उसके प्रभाव को दूर करना चाहे पर वह छूत की तरह लगकर रहता है। इसमें लाभ-हानि का भी कोई प्रश्न नहीं है।...

इसी उपन्यास से

लेखक ने दाम्पत्य जीवन की विषमताओं और विडंबनाओं को 'अनदेखे पुल' में समग्रता से रेखांकित किया है और पारस्परिक समझ के प्रभाव में बढ़ती संवादहीनता की खाई को भी उसकी भयावहता के साथ अंकित किया है पर दाम्पत्य में स्नेह, समर्पण और संवाद का खुलापन द्वैध को किस प्रकार काट देता है। यह भी निर्दिष्ट किया है, सहजीवन और सहअस्तित्व के लिए गहरी सम्पृक्ति अपेक्षित है और वही एक ऐसा पुल है जो द्वैध की खाई को पाटने में समर्थ है।

विलक्षण दार्शनिक चिंतन और जीवन मूल्यों से आपूरित यह कृति निश्चय ही पाठकों को दृष्टि सपन्नता प्रदान करेगी।

"....आपके साथ जो गु
करके क्या आप कोरा
हैं? मस्तिष्क का सहज
कि जो आपके साथ ह
लेकर आप दुखी या प्र
हर क्रिया की एक प्र
कोई लाख उसके प्रभाव
पर वह छूत की तरह
इसमें लाभ-हानि का
है।...

लेखक ने दाम्पत्य जी
और विडंबनाओं को
समग्रता से रेखांकित कि
समझ के प्रभाव में बढ़
खाई को भी उसकी
अंकित किया है प
समर्पण और संवाद
किस प्रकार काट देता
किया है, सहजीवन
लिए गहरी सम्पृक्ति
एक ऐसा पुल है जो
पाटने में समर्थ है।
विलक्षण दार्शनिक चिं
से आपूरित यह कृति
की दृष्टि

अनदेखे पुल

अनदेखे पुल

से. रा. यात्री

"....आपके साथ
करके क्या आप
हैं? मस्तिष्क का
कि जो आपके
लेकर आप दुखी
हर क्रिया की
कोई लाख उसके
पर वह छूत की
इसमें लाभ-हानि
है।...

लेखक ने दाम्पत्य
और विडंबनाओं
समग्रता से रेखांकि
समझ के प्रभाव
खाई को भी उस
अंकित किया है
समर्पण और संव
किस प्रकार काट
किया है, सहजीव
लिए गहरी सम्पृदि
एक ऐसा पुल है
पाटने में समर्थ है
विलक्षण दार्शनिक
से आपूरित यह
को दृष्टि संपन्नत

ISBN-81-88162-00-0

मूल्य : 250.00 रुपये

प्रथम संस्करण : 2003

प्रकाशक : हर्षिता प्रकाशन
ई-11/5, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

शब्द-संयोजक : दीप लेजर प्रिंटर्स, दिल्ली

मुद्रक : वी के. ऑफसेट
दिल्ली-110032

UNDEKHE PUL By S R Yatri

Price Rs

अनदेखे पुल

250/-

1

दूर-दराज के इलाको मे मेरा अक्सर आना-जाना बना रहना है। साहित्यिक समारोहो और गोष्ठियों मे जाने से मैं इसलिए नही कतराता कि वहा कई बार कुछ ऐसे लोग भी मिल जाते है जिनसे परिचय हो जाने पर कभी-कभी लिखने के लिए बहुत कुछ मिल जाता है और मजे की बात यह है कि इसके लिए मुझे अपनी ओर से कोई विशेष प्रयास भी नहीं करना पडता। कितने ही जन इतने भरे हुए होते हैं कि अपनी समूची जीवनगाथा ही अनायास सुना देते हैं। यह भी अजब नही है कि आपको ऐसे पात्र भी मिल जाएं जो आग्रह पूर्वक अपने बारे मे लिखने को उत्साहित करे।

हालांकि सच्ची घटनाओं को लिखने मे एक बडा जोखिम भी रहता है। कोई लेखक कही और बताई हुई स्थितियों को जस का तस तो लिखता नही है। अपनी ओर से उसे बहुत कुछ कहना और जोडना भी पडता है और यही सब जब लिखित रूप में सामने आ जाता है तो कुछ लोग लेखक द्वारा अंकित स्वरूप से बुरी तरह भड़क उठते है।

मै इस भूमिका को और अधिक नहीं बढाना चाहता। बस एक बार की बात बतलाना काफी समझता हू कि कई वर्ष पहले मध्य प्रदेश के एक पिछड़े इलाके मे एक साहित्यिक समारोह में गया था। साहित्यिक हलचल तो दो ही दिन में खत्म हो गई पर जिस मित्र ने मुझे वहां बुलाया था वह वहां के मुख्यालय मे डी.सी. तैनात था। कहना न होगा, बड़ा अफसर होने की वजह से उसके रोब और उसे मिली हुई सुविधाओं का कोई अंत नहीं था। उसने आग्रह किया कि वह मुझे अबूझमाड घुमाना चाहता है। मै कुछ दिन और ठहर जाऊ तो लिखने के लिए भी बहुत कुछ मिल सकता है।

अब आप जानिए कि लेखक को इस तरह का कोई प्रलोभन दे दिया जाए तो वह उसे शायद ही दरगुजर कर पाएगा। प्रकट मे तो मैंने कोई आग्रह नही दिखाया। पर पुख्ता इनकार भी नही किया। मेरा वह अफसर मित्र यह भी जानता था कि मै परिवारविहीन अकेला आदमी हू। कहीं भी कितने भी समय के लिए रह जाऊ, क्या अतर पडता है।

ग्रामीण अचल के एक गेस्ट हाउस में उसने मेरे रहने का प्रबंध करा दिया और मैंने महीने बीस दिन वहां रहकर लिखने-पढ़ने का मन बना लिया।

मेरा मित्र सारे दिन अपने दफ्तर के कामो और सरकारी दौरों मे रहता था लेकिन शाम को देर-सबेर अपनी जीप लेकर आ जाता था। वह देर गए रात तक मेरे साथ रुका रहता था और बाद मे लौट जाया करता था।

कभी-कभी छुट्टी के दिनों मे मुझे साथ लेकर वह घने जंगलो मे घुमा लाता था या किसी आदिवासी गाव मे ठहरने का प्रबंध हो जाता था तो वहा लोक सगीत-लोक नृत्य का आयोजन भी हो जाता था।

एक रविवार को मेरा मित्र एक दंपती को अपने साथ लेकर आया और बोला—"देखो रविकांत, आज मै तुम्हारी एक घनघोर पाठिका और प्रशंसिका को साथ लाया हू।"

मैंने देखा मझोले कद की अट्ठाईस-तीस की आयु की एक गेहुंए रंग की स्वस्थ सुंदर युवती और गठीली देह के चालीस की वय को छूते एक सज्जन मेरे सामने खडे थे। युवती खादी सिल्क की गहरे नीले रंग की साड़ी पहने हुए थी जो उसके रग रूप को सहज आकर्षण प्रदान कर रही थी। उसकी आंखों में काजल की हल्की रेखा और माथे पर कुमकुम वर्णी बिदी चमक रही थी। देह न दुर्बल थी न अधिक मांसल। मगर उसके साथ आए सज्जन न केवल आयु में उससे काफी बडे लगते थे बल्कि अपने धोती-कुर्ते के लिबास मे कोरे पडिताऊ किस्म के एक पुराणपंथी नजर आते थे। उनके सिर पर सख्त बाल थे जो इतने छोटे थे कि उन्हे कघी से संवारने का भी सवाल नहीं उठता था। देह की तरह ही उनका चेहरा भी खूब चकला चौड़ा था और होठों को घनी मूछों ने पूरी तरह ढक रखा था।

मेरे मित्र ने उन दोनो से मेरा परिचय कराया—"ये उर्मिला जी हैं—राजकीय कन्याशाला में शिक्षिका हैं और पंडित मुकुंद माधव राजकीय महाविद्यालय मे दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर तथा ज्योतिष के प्रकाड विद्वान् हैं।"

उन दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्कार की तो मेरे हाथ भी स्वतः जुड़ गए और मैंने प्रसन्नता व्यक्त की—"आप गुरुजनों को मेरे प्रणाम। मुझे आप दोनो को देखकर

हार्दिक प्रसन्नता हुइ।

मुस्कराते हुए उर्मिला जी बोली—"आप तो एकदम उल्टी बात कह रहे हे। गुरुजन तो आप है। आपके सामने तो हम गिरिजन है।"

मै बोला—"यदि आप गिरिजन हैं तब भी मेरे लिए प्रणम्य है क्योंकि इतने सुदर सुरम्य गिरि शिखरों तथा उपत्यकाओ से घिरे अचल मे रहने का सौभाग्य किसी अर्जित पुण्य प्रभाव से ही संभव है।"

इस पर उर्मिला मुंह बिचकाकर बोली—"ऐसा तो यहां कुछ नहीं है जिस पर वडा भारी गर्व किया जा सके। पूरा इलाका एकदम पिछडा हुआ ठेठ है। भले ही हम लोग मुख्यालय में रहते है पर वहा भी क्या है—लाल धूल और ऊंघती हुई जिदगी। रात को कभी उधर आएंगे तो ढिबरी का धुआं देती भुतही रात से डर जाएगे। भला यहा भी कोई रह सकता है?"

इस पर मै कुछ कहता इससे पहले ही उर्मिला के पति पडित मुंकुद माधव की घोर गंभीर वाणी सुनाई पडी—"भीतर के उल्लास से ही सब कही रहा जा सकता है। जिनके भीतर असतोष के अतिरिक्त कुछ बाकी ही नहीं बचता वही कुंठित रहते है। स्थान मे क्या रखा है। उसे हम अपनी प्रज्ञा से रजित करते हैं।"

पंडित मुकंद माधव ने सारगर्भित वाक्य बोलकर मेरी ओर इस दृष्टि से देखा जैसे वह अपने कथन पर मेरी सहमति चाहते है।

मैने देखा कि उर्मिला का चेहरा अपने पति की बात सुनकर आवेश से लाल हो उठा। मेरा मित्र इस बीच उठकर अपने ड्राइवर से कुछ कहने चला गया था।

उन पति-पत्नी को एक-दूसरे से भिन्न मत रखने के कारण मै क्या समझाता? मैने उनका ध्यान हटाने की गरज से पूछा—"आप लोग तो इस अचल के निवासी नही लगते। आप लोगो की शिक्षा-दीक्षा कहा-कहां हुई है?"

इस पर उर्मिला ने तुरत कहा—"मैं तो भोपाल की रहने वाली हू। वहीं से हिंदी मे एम ए.बी.एड किया है। तकदीर देखिए, कहां आकर रहना पडा रहा है। लगता है जैसे देश निकाला दे दिया गया हो।"

मैने उर्मिला की कटूक्ति का कोई उत्तर न देकर पडित मुकद माधव से पूछा—"और पंडित जी आपने कहां रहकर अध्ययन किया है?"

"मै तो बांदा का निवासी हूं। हमारा मिसिर खानदान चौदह पुश्तो से ज्योतिष शास्त्र के लिए प्रसिद्ध है। मैने वाराणसेय काशी विश्वविद्यालय में अध्ययन किया है। वही से विशिष्टद्वैत में डाक्टरेट की पदवी प्राप्त की है।"

"अरे आप तो बडे विश्रुत परिवार से सबध रखते हैं।" मैंने उन्हें सतुष्ट करने

"....आपके सा
करके क्या आ
हैं? मस्तिष्क क
कि जो आपके
लेकर आप दुख
हर क्रिया की
कोई लाख उसवे
पर वह छूत क
इसमें लाभ-हानि
है।...

लेखक ने दाम्पत
और विडंबनाअ
समग्रता से रेखावि
समझ के प्रभाव
खाई, को भी उ
अंकित किया
समर्पण और सं
किस प्रकार काट
किया है, सहजी
लिए गहरी सम्पृ
एक ऐसा पुल है
पाटने में समर्थ है
विलक्षण दार्शनिक
से आपूरित यह
को दृष्टि संपन्न

क उद्देश्य स कहा।

इसके बाद हम लोगों की बातें चल निकली और उर्मिला मेरे उपन्यासों के पात्रो की बातें करने लगी। मुझे लगा कि पंडित मुकद माधव का साहित्य के प्रति वैसा कोई उत्कट लगाव नहीं था। वह बीच-बीच मे किसी सूत्र का हवाला देकर मीमासा करने लगते थे।

मैंने देखा कि उन दोनो की एक-दूसरे के प्रति छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति ही अधिक थी। पारस्परिक सहजता और सहिष्णुता की भावना का तो मानो पूर्ण रूप से लोप ही हो चुका था।

मित्र लौट आया तो बैरा चाय और नाश्ता ले आया पर मुकुद माधव ने न चाय पी और न कुछ खाया। संभवतः वह घर से बाहर बाजार का कुछ खाते ही नही थे। मेरे आग्रह पर उन्होंने कहा—"मैं दो समय के भोजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाता-पीता।" जरा रुककर उन्होने यह भी कह दिया—"यह चाय पान आदि का रोग मैंने नहीं पाल रखा है।"

जब वह जाने लगे तो उर्मिला ने साग्रह कहा—"कस्बा यहां से दस-बारह मील ही तो दूर है—किसी दिन आप हमारा आतिथ्य अवश्य ग्रहण कीजिए।"

पडित मुकुद माधव ने भी अपने सिर की लबी चोटी को थपथपाकर कहा—"हां! जाने से पहले कभी एक बार अवश्य दर्शन देकर कृतार्थ करें।" उनके यहा जाने का मैंने वादा कर दिया।

मेरे मित्र के साथ जब वह दोनों चले गए तो मै देर तक उन दोनो के विषय में ही सोचता रहा। यह एक विचित्र विडंबना ही कही जाएगी कि दो विपरीत स्वभाव के लोग निरतर एक दूसरे के साथ रहे और आपस मे कभी किसी भी विषय पर एकमत न हो सकें।

2

मध्य प्रदेश के उस अस्थायी प्रवास में फिर उर्मिला और उनके पति मुकुद माधव से मेरी भेट नहीं हो सकी। एक-दो बार मेरे मित्र हीरेंद्र वर्मा ने कहा भी कि उर्मिला जी मुझसे मिलने को वहुत उत्सुक है पर मै मिलने की बात टाल गया क्योकि मुझे यही लगा कि मैं उनके घर जाऊंगा तो किसी मामूली-सी बात को लेकर उनमे फिर से खींच-तान शुरू हो जाएगी और मिलने का कोई औचित्य नही होगा।

मैं दिल्ली से थोड़ा हटकर एक ऐसे स्थान पर रहता हूं जहां दिल्ली की गहमा-गहमी का कोई प्रभाव अभी तक नहीं आ पाया है और मेरा लिखना-पढना मजे मे चलता रहता है।

मै घर-परिवार वाला प्राणी नहीं हू। मेरे पास जोखन नाम का एक आदमी हे, जो घर में बना रहता है। कितने ही बरसों से जोखन मेरे पास है। मेरी अनुपस्थिति मे वह भी अपने गाव चला जाता है। जहां उसके भाई और बेटे खेतीबाडी का काम करते है। मैने कितनी ही बार उससे कहा है कि वह अपनी पत्नी को साथ ले आए मगर उसे मेरे पास अकेले बने रहने में ही सुविधा रहती है। वह मेरे स्वभाव से परिचित है और मुझे उसके साथ रहने से तनहाई का अहसास भी नहीं होता। यदि मे कभी घर मे न रहूं और मेरा कोई मित्र घर मे रहना चाहे तो वह उसकी सेवा शुश्रूषा भी बड़े सहज भाव से करता रहता है। सच पूछिए तो इतने वर्षो मे मालिक ओर नौकर का रिश्ता भी हम दोनों के बीच से खत्म हो चुका है। कई बार मै किसी साहित्यिक समारोह से रात गए देर से लौटता हूं तो जोखन मुझे प्रतीक्षा करते हुए मिलता है।

एक रात मै ऐसी ही किसी साहित्यिक गोष्ठी से रात को वहुत देर से लौटा

तो मेन देखा कि मर कमरे आर सहन की वत्तिया जल रही हे और किसी के बोलन की आवाज भी आ रही है।

मै घर मे न रहू तो मेरे दोस्त इतनी रात गए तक कभी मेरे इंतजार मे वेठकर मेरी प्रतीक्षा नही करते। हा, दूर दराज के कोई सबधी दिल्ली किसी काम से आते है तो मुझसे मिलने की नीयत से चले आते है। दरअसल कभी-कभी यह भी होता है कि कोई रिश्ते-नाते का आदमी दिल्ली अपने काम से आता है और उसे कहीं रात बिताने की जरूरत पड़ जाती है तो वह होटल, अथवा लाज का खर्चा बचाने के उद्देश्य से मेरे यहा चला आता है। मेरे घर म उसी तरह की सब सुविधाएं उसे मिल जाती है जो किसी परिवार मे जाकर ही मिल सकती है।

मैं अपने घर के दरवाजे पर ठहरकर भीतर से आने वाली आवाजो की कुछ देर तक आहट लेता रहा—और यह जानने की कोशिश करता रहा कि मेरे इंतजार मे कौन इतनी देर तक जाग सकता है। अक्सर तो यही होता है कि मेरी अनुपस्थिति मे आने वाले को जोखन समय से खाना खिलाकर अतिथि कक्ष में सोने के लिए भेज देता है और स्वय बाहर के कमरे में जागता रहता है।

अंततः मैंने किवाडो पर दस्तक दी। आधे मिनट से भी कम समय मे दरवाजा आधा खुल गया और कोई बाहर झांका।

मुझे सामने देखकर एक साथ पूरा दरवाजा खोलते हुए एक रमणी ने हाथ जोड़कर नमस्कार की और चहकते हुए स्वर मे कहा—"तो जनाव इतनी रात को घर वापस लौटते हैं।"

मैंने ध्यान से उसे देखा तो मै पहचान गया, वह मध्य प्रदेश की उर्मिला ही थी।

मैंने हसते हुए कहा—"क्या करें, कोई रोकने-टोकने वाला जो नही है।"

वह दहलीज के उस ओर खड़े खड़े ही हंसते हुए बोली—"तुलसी दास ने तो नारी के स्वतंत्र होने पर ही बिगड जाने की बात कही है मगर मैं यहा देख रही हू कि पुरुष भी स्वतंत्र रहने पर....।"

उर्मिला ने अपनी बात पूरी नहीं की तो मैं बोला—"यहा आकर आपने देखा कि पुरुप भी बिगड़ रहा है।"

उर्मिला ने प्रगल्भता से कहा—"वही सब तो मैं देखने आई हूं कि आप पुरुष लोग अकेले बिना परिवार के कैसे रहते हैं। इस बार. ."

उर्मिला ने मेरी ओर अजीब सी शोखी से देखा और हस पड़ी।

'उसने इस बार' के बाद वाक्य पूरा नहीं किया था। उसकी पूर्ति 'मैं कुछ करके ही जाऊगी।' अथवा 'इस बार मैं यह देखने आई हू कि आप अकेले किस प्रकार रहते है' कितने ही वाक्यो और अर्थो मे हो सकती थी।

मैने कहा—"मै न यहां अकेला रहता हूं न परिवार विहीन हूं।"

"आंय! ऐसा? लेकिन आपके मित्र ने तो हमे यही बतलाया था कि आपने अभी तक परिवार बनाया ही नहीं है। कुछेक क्षण ठहरकर उसने संज्ञात्मक लहजे से पूछा—"वह कहां गई है आपकी...?"

मैं ठठाकर हस पडा और बोला—"क्या आप मुझे अंदर आने की इजाजत देंगी? मै आपको आराम से सब कुछ बतला दूंगा।"

उसने जीभ काटते हुए कहा—"अरे यह तो मुझसे घोर अनर्थ हो गया। घर का स्वामी दहलीज के बाहर खड़ा सूख रहा है और मै मजे मे गप्पे मारते हुए उसे अटकाए हुए हूं।" और यह कहकर वह दरवाजे से एक ओर हटकर खडी हो गई।

मैं दरवाजा पार करके सहन में आया तो मैने जोखन को रसोई से बाहर निकलते हुए देखा। उसके कधे पर जो लाल रग का अगौछा पड़ा था उससे वह हाथ पोछते हुए सहन के उधर खड़ा रहा।

गमछे से हाथ पोंछते हुए जोखन जिस तरह रसोई से बाहर निकला था उससे यह स्पष्ट हो गया कि वह इस समय रात के खाने के सरजाम मे लगा हुआ था।

मै आगे बढकर कमरे के द्वार पर पहुचा तो सब्जियों के छौंक की मसालों की गध मेरे नथुनो में आने लगी। इससे मुझे आभास हुआ कि उर्मिला को आए हुए अभी अधिक समय नही हुआ था।

मैंने अपने कमरे में घुसते हुए उर्मिला से पूछा—"क्या आप अकेली ही आई है?"

लेकिन भीतर कमरे का दृश्य देखकर यह बात साफ हो गई कि उर्मिला अकेली नहीं आई थी। एक हालडाल, अटैची और लोहा का बक्सा कोने की अलमारी के पास रखा था और प्लास्टिक की टोकरी मेरी मेज पर रखी थी। जिसमे बेतरतीब ढंग से बहुत सा सामान ठुंसा पड़ा था।

मैने पूछा—"क्या आपकी गाडी यहां काफी विलब से पहुंची?"

वह सफाई-सी देते हुए बोली—"दरअसल आपसे मिलने की बात तो सोचकर चली थी मगर आज नही कभी बाद मे मिलती। वह तो गाडी इतनी लेट हो ग<

कि हमें लगा कि पता नही दिल्ली मे रात को कितना भटकना पड सकता है। आपका स्टेशन नजर में आया तो हम लोग यही उतर पड़े। चलते समय हीरेंद्र जी से आपका पत्ता ले लिया था सो इस आडे वक्त पर काम आ गया और हम लोग मजे मे यहा आ धमके।''

मैने विनम्रता दिखाते हुए कहा—''अरे-अरे यह कैसी बात कही आपने। आप लोग यहा आ गए, यह तो आपकी जबरदस्त अनुकपा है एक तरह से।''

अब तक उर्मिला बराबर 'हम लोग' कहकर अपनी बात-चीत कर रही थी मगर वह मुझे घर भर मे अकेली ही दिखाई पड़ रही थी। मैने उससे कहा—''लेकिन आपके मिसिर जी तो कही नजर नहीं आ रहे है। क्या आपने उनको कहीं बहुत ही छिपाकर रखा है बगाली स्त्रियों की तरह।''

उर्मिला हंसकर बोली—''बंगाल का जादू हमे कहां सिद्ध है लेखक जी। सुना है वहां तो वह मेढ़ा बकरा-मक्खी आदि बनाकर रखती है पुरुषों को।''

''वहीं क्या यहा भी तो पुरुष की कोई दूसरी नियति नही है। भले ही वह बाहर से आदमी लगे मगर हो तो वह भी जाता है मक्खी मेढ़ा-बकरा वगैरह। पुरुष से ज्यादा निरीह प्राणी और कहा मिलेगा इस संसार मे?''

वह मुंह चिढाते हुए बोली—''अरे वाह रे सबसे निरीह प्राणी। आपका क्या कहना।''

मैंने हसते हुए पूछा—''श्री मुकुद माधव पंडित कहा हैं? कही भी तो दिखाई नही पड रहे हैं।''

उर्मिला बोली—''वह रात को दस बजे के बाद तो किसी भी हालत मे जागते नही रह सकते। ट्रेन मे ही झपकिया लेने लगे थे। ऊंघते-ऊंघते ही आपके घर मे घुसे और सोफे पर बैठते ही खर्राटें भरने लगे। तब जोखन ने उन्हें अतिथि कक्ष मे ले जाकर सुला दिया।

उर्मिला ने जोखन का कुछ इस अंदाज पर नाम लिया जैसे वह बरसों से उसे जानती हो।

मैने कहा—''तो क्या अब रातभर भूखे ही सोते रहेंगे?''

''नहीं नहीं, भूखे क्यों सोएंगे उन्होंने साथ लाया हुआ भोजन ट्रेन मे ही खा पी लिया था। फिर कुछ पल ठहरकर बोली—''इस समय खाने का बखेडा खडा करने का सवाल ही क्या उठता था अगर आप घर में होते और भोजन कर चुके होते।''

मै तो बाहर ही खाना खा चुका था और जोखन यह बात जानता भी था

कि अगर मै रात को आठ-नौ बजे तक नहीं लौटता तो फिर रात्रि भोजन करके ही वापस आता हूं। मगर मैंने उर्मिला से यह बात नहीं कही। इस बात को जानकर उसका खाना बनवाने-खाने का उत्साह ही बुझ जाता। मैं बोला—"चलिए यह ठीक हुआ कि आप लोग हमारे शहर के स्टेशन पर ही उतर पड़े। अब जब तक भी चाहें इधर ही रहें। जोखन और मैं दोनों ही आप लोगों के संसर्ग से लाभान्वित होंगे।"

"यह तो आप एकदम विपरीत बात कह रहे हैं। हम आपको क्या आराम देंगे—उल्टा आपकी एकांत शांत जिंदगी में विघ्न खड़े कर देंगे। जोखन का काम अलग से बढ़ जाएगा।"

"अरे जी वह कुछ नहीं।" कहकर मैं दूसरे कमरे में कपड़े बदलने चला गया।

3

जोखन ने डाइनिग टेबिल पर खाना लाकर रख दिया तो मै और उर्मिला खाने के लिए बैठ गए।

खाना शुरू करने से पहले मैंने कहा—"आप पंडित जी को भी बुला लेती तो अच्छा होता। कही वह भूखे ही न सो गए हो।"

उर्मिला बोली—"वह भूखे सोने वाले नहीं हैं। भूख और नीद—इनको लेकर वह किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते।"

मैं बोला—"इससे तो कोई अच्छी बात हो ही नहीं सकती।"

तभी मुझे याद आया कि पंडित मुकुंद माधव ने पहली मुलाकात मे ही बतला दिया था कि वह न चाय पीते है न नाश्ता करते है—बस दोनो वक्त भोजन ही करते हैं। मैं बोला—"वास्तव में पंडितजी अपने नियम के बडे पाबद है। जब वह भोजन के अतिरिक्त कुछ और लेते ही नही हैं तो फिर नींद और भूख की हानि क्यो सहें?"

"आप ठीक कहते हैं, वह हानि सहने वाले नही हैं। अपने लिए जीने वाले सभी प्राणियों का यही हाल हैं।"

मैने अपने प्लेट मे थोडी सी सब्जी ले ली। यद्यपि मैं खाना खाकर आया था पर मै उर्मिला का साथ देने की गरज से खाने के लिए बैठ गया था और खाने में उसका साथ देना चाहता था।

मैंने एक चपाती अपनी प्लेट मे रखते हुए पूछा—"आपको मकान मिलने में तो कोई कठिनाई नही हुई?"

उर्मिला ने अपनी प्लेट में सब्जी रोटी रखते हुए कहा—"रिक्शा चालक आपको जानता था। लगता है यहा के सभी लोग आपके नाम और काम से खूब परिचित हैं।"

मै बोला—"नही एसी तो कोइ बात नही है—बस एकाध रिक्शे वाला मुझे जानता है। संयोग से शायद वही आपसे टकरा गया है। रही काम की बात उसे तो शायद ही कोई समझता बूझता हो।" कुछ क्षण ठहरकर मैंने हंसते हुए कहा—"भला मे भी कोई ऐसा काम करता हू जिसे कोई जाने या जिसका कोई महत्त्व हो।"

उर्मिला ने खाते हुए हाथ रोक लिया और मेरी ओर विस्मय के भाव से देखते हुए बोली—"ये आप क्या कह रहे हैं? आपका काम क्या ऐसा मामूली है जिसे नजरदाज किया जा सके!"

"काम? यह भी कोई काम है भला। बैठे ठाले की खामखयाली है। यह तो लोगो की कृपा है कि हमे भी किसी गिनती में गिन लेते हैं।"

उर्मिला अपने मुह मे जो निवाला डालने जा रही थी वह उसके हाथ मे ही थमा रह गया। वह आश्चर्य व्यक्त करते हुए बोली—"यह आप क्या कह रहे है? आप इस देश के इतने बड़े लेखक हैं कि आपको हर कहीं से सम्मान मिलता है, फिर भला यह नगर आपको कैसे उपेक्षित कर सकता है!"

मै हसकर बोला—"उर्मिला जी आप खाना खाइए। इस देश में हिंदी के लेखक को कौन जानता है और कौन उसको जानना चाहता है? यह एक तरह से उत्सवधर्मी भाषा है जिसका उत्सव की समाप्ति के बाद किसी भी तरह का महत्त्व शेष नहीं रह जाता है। आपने देखा होगा कि जब समारोह समाप्त हो जाता है तो हमारे उत्सव के मुख्य अतिथि को भी कोई नही पूछता। उसके हाथ मे जो प्लेट होती है उसे लिये वह एक कोने में उपेक्षित खड़ा रहता है। कोई भी आगे बढकर उसमे खाद्य-सामग्री परोसने की चिंता नहीं करता। यह अलग बात है कि मां सरस्वती के सामने दीप प्रज्वलित करते समय उसके भव्य चित्र प्रकाशित होते हैं। उस समय उसकी बगल मे खड़े लोग अपने घर-परिवार के साथ-साथ दुनिया जहान के लोगों को यह दिखलाना बतलाना नही भूलते कि अमुक जी की बगल मे खडा हुआ मै हूं।"

खाना खत्म करने के बाद मै और उर्मिला बराडे में पडे मोढो पर बैठकर बाते करने लगे। उर्मिला बोली—"बहुत बार सोचा कि कभी दिल्ली देखी जाए मगर कभी भी ऐसा कोई अवसर हाथ नहीं लगा कि दो-चार दिन दिल्ली में कहीं टिककर सारे दर्शनीय स्थल देख लिए जाएं। पिछली बार जब आप उधर आए थे तो मेरे मन मे यह बात आई थी कि आप से प्रार्थना करू कि आपके लिए संभव हो तो इस दिशा मे थोड़ा कष्ट करके अपना समय देने की कृपा करेंगे।"

मैं बोला—"इसमे कौन-सी बडी भारी परेशानी है। अरे मै तो रहता ही ऐसे स्थान पर हूं जिसे केंद्र बनाकर कई लोग दूर दराज से आते हैं और मजे से घूम

"....आपके
करके क्या
है? मस्तिष्क
कि जो आप
लेकर आप
हर क्रिया व
कोई लाख उ
पर वह छूत
इसमें लाभ-ह
है।...

लेखक ने दा
और विडंबन
समग्रता से रेख
समझ के प्रश
खाई को भी
अंकित किय
समर्पण और
किस प्रकार व
किया है, सह
लिए गहरी स
एक ऐसा पुल
पाटने में समा
विलक्षण दार्शनि
से आपूरित य
को दृष्टि संप

फिरकर लौट जाते हैं। आपका जब तक मन हो ठहरिए। यहां न मुझे कोई कठिनाई होगी न परेशानी।"

उर्मिला सकुचाते हुए बोली—"नही-नही, ज्यादा देर तक तो रुकना सभव नही है—पर तीन-चार रोज का समय तो है। इन्हें दिल्ली मे एक-दो स्थानो में शोध सबंधी सामग्री भी लेनी है और दिल्ली विश्वविद्यालय के एक-दो विद्वानों से भी मिलना है।"

"ठीक है तो आप लोगों का जो भी कार्यक्रम बनेगा मैं उसी के अनुरूप उपलब्ध रहूगा।" कहकर मैंने उससे सोने के लिए पूछा।

उर्मिला मोढे से उठते हुए बोली—"हां अब तो सोना ही चाहिए—"आप भी थके होंगे।"

"मेरे थकने का तो कोई सवाल ही नहीं है। सारे दिन घर मे रहता हूं और दोपहर के भोजन के बाद तो दो-तीन घंटे सोता ही रहता हूं पर आप लोग काफी लंबी यात्रा करके आए है इसलिए आपका विश्राम करना जरूरी है।"

उर्मिला उठकर अतिथि कक्ष की ओर चली गई तो मैंने जोखन से कहा कि वह उन लोगो के कमरे में सुराही और गिलास रख दे।

रात बहुत बीत चुकी थी—मैं भी अपने कमरे मे सोने चला गया।

4

अगली सुबह मेरी आखें कुछ देर से खुली। मैं अपने कमरे से बाहर आया तो मैंने देखा पंडित मुकुद माधव बरांडे मे कुर्सी पर बैठे अखबार पढ रहे थे। उन्हे देखकर मुझे लगा कि वह नहा-धोकर तरोताजा हुए बैठे हैं।

मैने नमस्कार की तो वह कुर्सी से खडे होते हुए बोले—"श्रीमान् को मेरे शत-शत प्रणाम।" उनकी नमन शैली पर मै हस पड़ा और हाथ जोडकर बोला—"एक दो प्रणाम ही काफी हैं आपने तो सैकडो ही एक साथ कर डाले।"

"आप जैसी यशस्वी विभूति के लिए तो इतने भी अपर्याप्त हैं।"

मुझे लगा मिसिर जी लक्षण-व्यंजना की ऊंचाई से अपनी बात कह रहे हे। जाहिर है उनके लिए कविता उपन्यास लिखने वाला व्यक्ति लगभग निरर्थक ही था।

इसी समय उर्मिला बरांडे की ओर आती दीख पडी। वह भी नहा-धो चुकी थी ओर पिंक बार्डर की एक रेशमी साडी पहने हुए थी। घने काले बाल उसकी पीठ पर छितरा रहे थे। पंडित मुकुद माधव ने अपनी पत्नी पर एक उडती-सी निगाह डालकर कहा—"इन्हे आपके दर्शनो की बहुत उत्कठा थी।"

उर्मिला ने उनके चेहरे पर एक कड़ी नजर डालते हुए कहा—"बस मुझे ही उत्कंठा थी? फिर आप यहा कैसे चले आए?"

मुझे लगा कि यह तो सुबह ही सुबह कलह प्रसंग शुरू होने जा रहा है। मैने उसे नजरदाज करते हुए मिसिर जी से पूछा—"अरे छोडिए उत्कठा-उत्सुकता की बाते, आप यह बतलाइए कि रात नींद कैसी आई? आपको मच्छरो ने तो ज्यादा तग नही किया?"

पंडित जी ने अपनी चोटी पर हथेली फिराते हुए लापरवाही से कहा—"अजी अब मच्छरों-खटमलो से क्या डरना। यह तो थोडे बहुत सभी स्थानों पर होते है पर

मै जव सो जाता हूं तो मुझे फिर कोई भय बाधा आघात नहीं पहुंचाती। मैं निश्चिंत होकर सोता हूं। मै व्यर्थ के स्वप्न भी नही देखता। सोने के बाद प्रात. चार बजे ही स्वतः आखें खुल जाती है।"

मुझे यह तो पता था ही कि वह चाय नहीं पीते थे—नाश्ता भी नही करते थे इसलिए जोखन को पुकारकर मैंने कहा—"देखो भई चटपट सब्जी तैयार करके पूरिया तल लो। पंडितजी ने रात भी खाना नही खाया था इसलिए जितनी जल्दी हो सके खाना तैंयार हो जाना चाहिए।"

जोखन ने पूछा—"क्या चाय नाश्ता नहीं होगा आप लोगन का?"

"होगा भई होगा। मै और उर्मिला जी चाय बिस्कुट टोस्ट या पूरी-परांठा कुछ भी ले लेगे पर पंडित जी चाय नही पीते है—खाना ही खाएगे सीधा।"

जोखन को यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ कि कोई ऐसा आदमी भी घर मे मौजूद है जो चाय नही पीता, सुबह को नाश्ता नही करता मगर उनकी पत्नी चाय भी पीती है और बिस्कुट-टोस्ट वगैरह भी नाश्ते में लेती है। शायद वह उन दोनो की अद्भुत जोडी को देखकर चकित था।

मैंने पंडित मुकुंद माधव की ओर देखा। उनकी आंखों पर लगे चश्मे के कांच धूप पडने के कारण वहुत चमक रहे थे और आंखो का भाव पकड़ मे नही आ रहा था।

जब जोखन चला गया तो मैं और उर्मिला भी मोढ़ों पर बैठ गए। पडित जी उर्मिला की ओर उन्मुख होकर बोले—"मुझे भी इनसे मिलने की उत्सुकता थी पर वह तुम्हारी लालसा से भिन्न प्रकार की थी।"

मुझे उनकी बात सुनकर हैरत हुई। वह बात तो कब की खत्म हो चुकी थी। मैं उस प्रसग को ही टाल चुका था मगर वह अब भी उसी को कसकर पकडे वेठे थे।

उनकी वात से उर्मिला का चेहरा रोष से तमतमा उठा पर वह बोली कुछ नहीं—मोढ़े से उठी और रसोई की तरफ चली गई। पडित मुकुद माधव ने उर्मिला के चले जाने पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह अखबार में सिर गडाए बैठे रहे।

मैं सुबह उठते ही एक दो प्याले चाय पीता हूं—यह बात जोखन जानता था। उसने मेरे हाथ मे काच का गिलास थमाते हुए कहा—"मैंने चायदानी आपके कमरे की मेज पर रख दी है बाबू जी"

'कोई बात नहीं, उसे टिकोजी से ढक दो

म चाय पीते हुए सोचता रहा कि इन दो विपरीत दिशाओ मे जाने वाले पति-पत्नी का पारस्परिक टकराव कैसे रोका जाए।

मैंने चाय का गिलास खाली करके तिपाई पर रख दिया और उठते हुए बोला—"पडित जी आप चाय तो नही लेते पर खाना बनने तक एक गिलास दूध ले लेने मे क्या हर्ज है?"

"मैं रात को सोने से पहले एक गिलास दूध लेता हूं।"

मैंने हसते हुए कहा—"अगर आप इस समय दूध ले लेंगे तब भी आपका रात का दूध सुरक्षित रहेगा—उसमें कोई कटौती नही की जाएगी।"

पंडित जी ने अखबार से सिर उठाते हुए कहा—"मगर सभी को अनावश्यक भोग से बचना चाहिए। जब एक गिलास दूध पर्याप्त हो तो दो गिलास का उपयोग क्यों किया जाना चाहिए। इस तरह क्या यह दूसरो के भाग पर डाका नही है।"

मैं व्यर्थ की बहस में नहीं पड़ना चाहता था क्योंकि इसका कहीं अत तो था नही, इसलिए उठते हुए बोला—"नहीं मन है तो छोडिए—मै देखता हू कि खाना बनने में कितनी देर है।"

पंडित जी ने हवा मे दाए हाथ का पंजा लहराया और बोले—"महाशय! खाने की कोई वैसी जल्दी नही है। मैं दस, ग्यारह के बाद ही भोजन करता हूं। इतनी सुबह खाने का मुझे अभ्यास नहीं है। आप जिस तरह खाते पीते हैं। उसी नियम के अनुसार खानपान सुचारु रूप से चलाइए। मै तो विद्यालय भी बिना कुछ खाए पीए ही जाता हूं। कभी दोपहर बारह तो कभी एक दो-बजे तक वापस लौटता हू और तभी खाना खाता हू।"

मैंने सरसरी तौर पर कहा—"हां ऐसा ही होता है, आप जैसी भी आदत डाल लें।"

"दरअसल आदते भी बहुत देर से नहीं डाली जा सकतीं। छोटी उम्र में ही जो स्वभाव बन जाता है फिर जीवन पर्यत वही स्थायी बनकर साथ-साथ चलता है।"

यह एक बहुत उबाऊ-बहस थी—मै उसे वही छोड़कर चला गया।

पंडित जी के पास से उठकर मै रसोई में पहुंचा तो मैंने देखा उर्मिला जोखन की सहायता कर रही थी। वह थाली हाथ में लेकर चावलों से कंकड़ बीन रही थी।

मैं बोला—"अरे आप किस झझट में पड गई! जोखन पर भरोसा कीजिए वह चावलो मे एक भी कंकड़ छोडने वाला नहीं है। आप चलकर पंडित जी के पास बेठिए और उनसे कुछ बातचीत कीजिए।"

"मैं यहीं भली हूं—आप विद्वानो से मै क्या बात करूगी। आप दोनो ही किसी ऊंचे विषय पर वाद-विवाद कीजिए। वह कुछ सार्थक भी होगा, हम औरतें तो वैसे ही बुद्धिहीन मानी जाती हैं।"

"औरतों को कौन बुद्धिहीन मान या कह सकता है। आज तो उनकी बुद्धि की हर कही धाक है।"

मै कुछ रुककर बोला—"आज ही क्या उनकी कब धाक नही थी। गार्गी, गायत्री, मैत्रेयी, अरुन्धती, सावित्री, अनुसूया कोई एक नाम है। शिखरासीन देवियो का नाम गिनाते चलो तो कही गिनती ही खत्म होने में नही आती।"

वह उदासीनता से बोली—"ये सब कहने की बाते है। सच पूछिए तो स्त्रियों की प्रशंसा करके भी उनका शोषण ही होता चला आया है। गुप्त जी ने नारी का अबला जीवन बिल्कुल सही कहा है।"

"गुप्त जी ने जो भी कहा हो मगर इतिहास तो यह नहीं कहता। इतिहास, पुराण की तरह कल्पना भी नही है। वह समय की प्रासगिकता, रेखांकित करता है और यथार्थ परक दस्तावेज होता है। हमारे भारत मे ही नहीं, महान् नारियों की यूरोप में भी सख्या कम नही है। अन्याय और शोषण के विरुद्ध नारी एक जबरदस्त प्रतिरोधी शक्ति है।"

"रही होगी पर मैं नहीं मानती। मैं जो यथार्थ मे देखती हूं उसे कैसे नकार दू! यहा तो उसके साथ पशु से भी कही ज्यादा गर्हित व्यवहार किया जाता है फिर चाहे उसकी प्रशंसा मे कितने भी ढोल पीटे जाएं।"

अब तक उर्मिला चावल साफ कर चुकी थी। उसने सीमेट की पटिया पर थाली रखकर जोखन से कहा—"भैया जी क्या सब्जी बनानी है। मुझे बताओ मैं काटे-छीले देती हू।"

जोखन उर्मिला के मुह से 'भैया जी' सबोधन सुनकर एक तरह से गद्गद हो उठा। वह बोला—"काय कू परेशान होय रई हो। जे सब काम आपकू शोभा ना देत है। मै यहा काये लैया बैठो हूं। मेहमानन की आव भगत तो मेरो धरम है। आप उत मे चलके बइठो—मैं अबई छाल, दाल चावर सब्जी फुल्का सबई त्यार करै देत हू।"

उर्मिला से मैंने भी, अनुरोध किया कि वह इस सब के लिए तंग न हो। चलकर बैठे—रेडियो सुने-या अखबार ही पढे।

"अखबार मे पढने को तो कुछ है नही। वही हत्या, वही बलात्कार, वही दहेज की कमी का रोना रोकर औरतों को जलाना या पखे से लटकाना। आज का अखबार

भी महीनो पुराना ही लगता है। अगर उस घर पर आज की डेट न हो तो वही सब पुराना घिसा-पिटा एक जैसा ही विवरण छपता रहता है।"

मै हसकर बोला—"बात तो आपकी एकदम सही है मगर दिन तो अब भी निकलता है। सूरज उसी तरह चमकता है। मौसम पहले की तरह ही बदलते है। अनास्था और अविश्वास लेकर तो हम मनुष्य जी नही सकते। इस संसार मे सब कुछ तो गर्हित और उतना बुरा नही है। आखिर जीने के लिए आपको कोई आधार तो स्वीकार करना ही होगा।"

"मनुष्य के पास सोच-विचार की शक्ति ही तो उसका सबसे बड़ा अभिप्राय है। जानवर दुक्खम-सुक्खम किसी तरह जी तो लेते हैं। उन्हे लबी आयु का अभिशाप भी तो नहीं मिला मगर हम मनुष्य-छीजते-बीतते चले जाते है और पिट-पिटकर भी पता नही किस झूठी उम्मीद को लेकर जीते चले जाते हैं।"

"आपने एकदम सही बात कही। उम्मीद ही चिर नवीन है। प्रतीक्षा हमेशा आगत के लिए ही होती है। और उसे कोई भी नही जानता कि वह हमारे लिए क्या वरदान लेकर आ रही है।"

उर्मिला मेरे आशावाद पर एक विद्रूपमयी हंसी हसकर बोली—"कौन सा आगत? आगत भी तो उन्ही के लिए होता है जो कहीं ठहर नहीं गए होते है। नदी ही तो कहीं पहुंच सकती है। तलैया और तालाबों की क्या गति है। वह तो एक जगह स्थिर हो जाते है और उसके ठहरे हुए जल में सिवाय सेवार और काई के क्या हो सकता है? इससे तो सडाध ही बढती है।"

उर्मिला की इन बातो को सुनकर मुझे उसकी मनःस्थिति और गहरे अवसाद का आभास मिल गया। मैं उसके मन के कोलाहल को किस-प्रकार शात कर सकता था। मैंने उसे सहज और उत्साही बनाए रखने के लिए कहा—"तुम्हारी इतनी छोटी उम्र के लिए ऐसे विचार बहुत घातक हैं। बडी आयु में पहुंचकर तो वाकई ऐसा अहसास होने लगता है कि अब कुछ नया और सार्थक शायद न हो पर जब हमारी देह मे ऊर्जा का ज्वार हो मस्तिष्क में कल्पनाए और सपने हो तो सृजनशीलता को एक नई दिशा की तलाश होनी ही चाहिए।"

"जिनके पांवो मे बेडियां पड़ी हों—सामाजिक बंधनों ने देह और मन को एक पथरीली काल कोठरियों में बंदी बनाकर रख दिया हो तब मन का पक्षी कहा और कितनी उडान भर सकता है?"

"मै समझ नही पा रहा हूं कि यह आपके साथ क्या और क्यो हो रहा है। आप अच्छी पढ़ी-लिखी मनस्वी युवती है। अभी आपकी जिम्मेदारिया भी उतनी नही

ह। नौकरी करती है--आपकी अपनी इयत्ता और स्वायत्तता है। फिर आप इतनी हताशा क्यों झेल रही है? हम जिन बधनो को स्वीकार करते है यदि वह हमारे मनोनुकूल न रहें तो हम उन्हे क्यो नही तोड़ सकते?"

"क्या इन सामाजिक अभिशापो की जकडबदियो को तोड डालना इतना आसान है?"

"निश्चय ही यह आसान नही है लेकिन क्या अपने हितों की रक्षा के लिए हम कठिन परिस्थितियो और समस्याओ से नही जूझना चाहिए।"

"लेकिन उसकी कोई दिशा और मार्ग तो दिखलाई पडे।" उर्मिला ने मेरी बात पर सोचते हुए कहा। उसकी आंखो में एक जिज्ञासा उभरी और वह मेरी ओर देखने लगी।

"समस्याएं अपना मार्ग स्वय अन्वेषित करती है। आज तो हम लोग बीसवी शताब्दी के उस बिदु पर खडे है जहां व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व सभी व्यक्ति को केंद्र में रखकर उसकी परिक्रमा कर रहा है और गर्हित और गलत के विरोध में एक नहीं अनेक स्वर मुखरित हो उठते है। मै यह दावा नहीं करता कि गलित और कुत्सित हमारे समाज मे नही हैं पर साथ ही यह भी एक ठोस सच्चाई है कि गलत के प्रति विरोधी स्वरों का भी अकाल नही पड गया है। चीजो की पारदर्शिता की ओर लोगों की निगाहे जाती है और असत्य कही से भी आए उसके मिथ्यापन को हम उग्रता से रेखांकित करते हैं।"

"लेकिन स्त्रियो की स्थितियो में तो कोई उल्लेख्य परिवर्तन नहीं हुआ है। वह बेचारी तो आज भी मध्ययुगीन नारी की तरह बेबस प्रताडित और प्रवचिता है।"

मैं बोला--"ऐसा आप कैसे कह सकती है? आज तो सारे विश्व में कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया है जिसमे स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण योगदान न हो। उनकी रचनात्मक भूमिका को लेकर खूब चर्चाए भी होती हैं। उनकी यशस्विता को भी प्रचार माध्यमो द्वारा रेखाकित किया जाता है।"

उर्मिला ने अपना दायां हाथ उठाकर मेरे बोलने मे विराम दे दिया। वह बोली--"आप जिन यशस्वी महिलाओं की बात कर रहे हैं उनके रहते हुए क्या इस देश मे प्रतिवर्ष हजारों युवतियों को दहेज का दानव नही लील जाता। अधिकाश लडकियों की क्या प्रतिवर्ष भ्रूण हत्या नहीं होती? क्या विवाहिताओं की विवाह के दस-बीस दिन बीतते-बीतते हत्या नही कर दी जाती? क्या सद्य: विवाहिताओ के विधवा हो जाने पर उन्हे पति के साथ चिता पर नहीं चढ़ा दिया जाता। आपने राजस्थान की पढी-लिखी रूपकुवर का अत नहीं देखा जाता।" उर्मिला बहुत गहरे

आवेश मे बोलती चला जा रही था बोलते बोलते उसका चहरा लाल हा गया और गले की नसें फूल उठीं।

मैंने जोखन को पुकारकर पानी लाने का कहा और उर्मिला को शांत करने के लिए बोला—"दरअसल जिस दुनिया मे हम रहते है उसमें इतनी सारी मिश्रित प्रवृत्तियां एक साथ ही चलती रहती हैं कि वह कई बार एक-दूसरे के विरोध मे जाती दीख पडती हैं पर साथ ही क्या यह भी सत्य नहीं है कि कोई भी युग रहा हो, सत्य को खोजने के मुमुक्षु और जिज्ञासु किसी भी बाधा विरोध या विसगति के सामने नहीं झुके। आप जरा कल्पना करे, जिस मध्य काल में राजस्थान मे रानिया-महारानिया असूर्यम्पइया होती थीं उसी मध्यकाल मे और राजस्थान के हृदय चित्तौड मे विद्रोह का स्वर प्रखरतम स्तर तक बुलद कर दिया था। क्या मीरा को कोई झुका सका? किसी प्रकार के समझौते पर राजी या विवश कर पाया? मीरा के पति की मृत्यु हुई तो क्या मीरा को कोई पति के शव के साथ चिता पर चढ़ाकर जला सका? दरअसल होता यह है कि हममे अपने अधिकार की सत्यता को विश्वसनीय बना सकने का कितना जोर है।"

"आप कुछ भी कहें-औरत निर्बल है और समाज उसे और भी निर्बल बनाकर देवी और पूज्या बनाने का निरंतर षड्यत्र रचता रहा है।"

मैने पूछा—"समाज से आपका क्या आशय है?"

"समाज माने आप पुरुष लोग। आप लोग ही हमारा कद छोटा करते चले जाने के दोषी है। आप लोगो ने हमें बोन-साई बना दिया है। हमारी जडे गहरी न जाए, इसी के प्रयास मे आप लोग लगे रहते हैं।"

उसके इस आरोप पर मुझे हंसी आ गई तो उसके चेहरे पर और भी गहरी उत्तेजना के लक्षण दिखाई देने लगे।

जोखन पानी का गिलास ले आया और मेरे सकेत करने पर गिलास उर्मिला की ओर बढाते हुए कहने लगा—"आप लोगन का खानो मैंने त्यार कइओ है—जब मज्जी (मर्जी) होय खा लइयो।"

मै बोला—"खाना अभी थोड़ा ठहरकर खा लेंगे। पहले तुम दो प्याले चाय बना लाओ।" तभी एकाएक मुझे पडित मुकुद माधव की याद आई कि वह उधर बराडे मे अकेले ही बैठे हैं। मैंने उर्मिला से पूछा—"क्या पंडितजी को भी इधर ही बुला लें? उधर वह अकेले बोर हो रहे होगे।"

उर्मिला अनमनी होकर बोली—"आपकी मर्जी है—बुला लीजिए पर यह भी जान लीजिए कि वह कितनी भी देर अकेले बैठे रहें कभी बोर नहीं होते।"

मै अविश्वास प्रकट करते हुए बोला—"ऐसा नही हो सकता—यह एक असभव-सी बात है कि कोई आदमी कभी बोर ही न हो। जानवर तक भी बोर हो जाते है।"

उर्मिला ने कटाक्ष किया—"वह आपके जानवरो की श्रेणी में नही आते।"

इस पर मै चुप्पी साध गया। यह तो मै गहराई से महसूस कर ही चुका था कि उर्मिला और पंडित मुकुद माधव की जोडी 'भयो यह अनचाहत को सग' को ही चरितार्थ करने वाली थी।

जोखन ट्रे में दो प्याले-चाय लेकर आ गया और दीवार के नजदीक पडे स्टूल पर चाय की ट्रे टिका दी। स्टूल हम दोनो के सामने रखते हुए उसने पूछा—"कऊ जानो तो नाय है आप लोगन को?"

मैंने कहा—"हां भई खाना खाकर हम लोग दोपहर तक दिल्ली जाएगे।"

जब जोखन चला गया तो मै बोला—"अगर हम आज के बजाय कल दिल्ली चले तो कैसा रहे? आप लोग लंबा सफर करके आए हैं—एक दिन तो आपको आराम करना ही चाहिए।"

"मुझे तो दिल्ली मे कोई काम ही नही है—जो भी मिलना जुलना या करना खरीदना है वह इन्ही को है। मै सोचती हूं वह अपना एक दिन क्यों व्यर्थ करे?"

मैंने उर्मिला के सामने प्रस्ताव रखा—"तो पडित जी को खाना खिलाकर दिल्ली भेज दिया जाए और सैर-सपाटे घूमने फिरने का कोई और दिन रखा जाए?"

"यह बहुत अटपटा-सा नही लगेगा कि वह दिल्ली अकेले ही जाएं और मै यहां बनी रहूं?"

"औचित्य और अनौचित्य की इसमे कौन-सी बात है! अरे भाई पंडित जी तो यूनिवर्सिटी के लोगों से मिलेंगे, सभा सोसायटी में सम्मिलित होंगे और तुम वहां उनकी छाया बनकर साथ लगी रहोगी। हां तुम भी कही सक्रिय भागीदारी कर सको तो उनके साथ तुम्हे जरूर जाना चाहिए।"

मेरे प्रस्ताव को सुनकर उर्मिला चुप होकर कुछ सोचने लगी। मैंने उससे कहा—"अरे भई चाय ठडी मत करो। आपका जाना या यहा रहना कोई बहुत सिर खपाने वाला मुद्दा नही है। जाने का मन हो तो साथ चली जाना।"

"नही-नही, वो बात नही है। मै सोच रही थी कि यहां मेरी वजह से आपका बधन हो जाएगा।"

"मेरा क्या वंधन हो जाएगा—तुम क्या मेरे सिर पर रहोगी!"

उर्मिला उन्मुक्त भाव से हंस पडी—"मैं न सही कोई तो आकर आपके सिर

पर रहेगा हा

मैंन भी हसकर कहा—"मैं ऐसे सिर को काटकर फेंक दूगा जिस पर कोई रहने की सोचे।"

"कोई काटकर नहीं फेंकता। सब कहने की बाते हैं।"

"तब तो ठीक है, फिर मैं क्या कर सकता हू? जिसे सिर पर ही रहना होगा वह वहां रहेगी ही।"

"आप वडे समझौतावादी है।"

"समझौता नही, शायद समन्वयवादी।"

उर्मिला चाय खत्म कर चुकी थी। प्याला स्टूल पर रखते हुए बोली—"आप लेखको का यही तो है कि आपके पास शब्दो के इतने सारे विकल्प मौजूद रहते हें कि उन्हे इधर से उधर अदलते-बदलते रहते हैं।"

मै बोला—"वह तो बाबा तुलसीदास ने पहले ही कह दिया—

कविहि अरथ आखर बल सांचा।
अनुहरि ताल गतहिं नर नाचा।।

मै कुर्सी छोडकर उठा और बाथरूम की ओर जाते हुए बोला—"आप लोग सब स्नान ध्यान किए बैठे है, एक मै लद्धड हू कि अभी दीन हीन अवस्था मे ही भटक रहा हू।"

दस बजे तक मै भी नहा-धोकर निवृत्त हो गया और मैंने जोखन से मेज पर खाना लगाने के लिए कहा। हालाकि अभी दोपहर होने मे देर थी पर जून मास के तपते सूरज का ताप झेला नहीं जा रहा था और अभी से लू के झोके चलने लगे थे।

जब हम खाने बैठे तो मैने खाना शुरू करने से पहले पंडित मुकुद माधव से पूछा—"आज आपको कहा-कहां जाना और किस-किस से मिलना है?"

उन्होंने अपनी चुटिया मे गाठ लगाई और मेरी ओर उन्मुख हो गए "दरअसल यूनिवर्सिटी तो वद ही है अभी। मुझे अमेरिकन लाइब्रेरी और मैक्समूलर भवन जाना है। नई सड़क से कॉलेज के लिए कुछ पुस्तके भी खरीदनी पडेगी। कल एकेडेमिक कमेटी की एक मीटिंग सीनेट हाल मे होनी है उसमे भी सम्मिलित होना है।"

मैने उन्हें खाना शुरू करने के लिए कहा तो उन्होने पूछा—"क्या आप हमारे साथ-खाना समाप्त करने के बाद दिल्ली चलना चाहेगे?"

"बडी खुशी से। मगर मैं सोचता हू जिन स्थानों पर आपको जाना है वहा मेरे साथ जाने की तो कोई उपयोगिता नही है।" फिर एक क्षण ठहरकर मैंने जानना

चाहा—"क्या आप दिल्ली पहले भी आते रहे है—मेरा मतलब है दिल्ली के भूगोल से परिचित हैं?"

पण्डित जी ने मनोयोग से भोजन करना शुरू कर दिया था। उन्होंने मेरी जिज्ञासा का तुरत कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर खाते रहने के बाद उन्होने हाथ रोककर कहा—"मै दिल्ली का इतिहास कहीं ज्यादा जानता हू, उसके भूगोल की अपेक्षा और सच पूछिए तो मैंने दिल्ली के वही कुछ स्थान देखे है जहा मुझे काम-धाम के सिलसिले मे आना-जाना पड़ता है।"

मैंने खाना खाते-खाते बात आगे बढ़ाई—"हां तो आपको अपने परिचित स्थानों पर काम के सिलसिले मे जाना है फिर उर्मिला जी और मै या हममे से कोई एक आपके साथ फालतू जैसा ही रहेगा। उधर आप अपना काम निपटा रहे होंगे ओर हम व्यर्थ और अप्रासगिक से साथ लगे होगे।"

मुकुंद माधव जी की आखों में सोच का भाव घिर आया। उन्होंने सिर झुकाकर अनमनस्कता से खाना खाती उर्मिला की ओर निगाहे उठाकर पूछा—"तुम क्या कहती हो?"

उर्मिला ने सिर को हल्का-सा खम देकर ऊपर उठाया और बोली—"मैं क्या बताऊं? मै क्या आपके साथ पहले कभी दिल्ली आई हूं।"

उर्मिला की बात सुनकर मेरे मुंह से बरबस यह निकल गया—"अरे! आपने कभी दिल्ली आने का कष्ट नहीं किया? ताज्जुब है कि आप इतनी उम्र तक राजधानी मे एक बार भी नहीं आईं।"

उर्मिला की आखों में चिनगारी-सी दिखाई दी और वह खाने की ओर से अपना हाथ रोककर बोली—"राजधानी बड़े लोगो के घूमने-देखने की जगह है। हम जैसे देहाती वज्र मूर्खो का वहां क्या काम? किसे घुमाने की इच्छा है?"

मुकुद माधव ने इस पर कोई टिप्पणी नही की। मैंने कहा—"यदि आप लोग पसद करें और आपको उचित लगे तो मैं एक प्रस्ताव रखता हू।"

"हां, हां आपका सुझाव बहुत व्यावहारिक होगा और हम लोगों को उसी के अनुसार चलने में सहूलियत भी रहेगी। आप बतलाइए क्या करना उचित होगा।"

मै बोला—"आज आप अकेले जाकर अपने कुछ काम निपटाइए हम लोग कल आपके साथ चले चलेंगे। फिर आप और उर्मिला जी दोनों ही साथ-साथ घूम-फिर सकेंगे।"

मुकुंद जी कई मिनट चुपचाप खाना खाते रहे और बाद मे उर्मिला की ओर मुह करके बोले—"अब जैसा ये ठीक समझती है वही करना होगा।"

मेरे प्रस्ताव पर उनकी ओर से कोई स्पष्ट सहमति नही थी वह उर्मिला से ही साफ कहलाना चाहते थे कि वह उनके साथ जाएगी या वह अकेले ही अपने काम निपटाने जाएगे।

उर्मिला उनकी बात पर झुझला पड़ी—"मै क्या कह सकती हू? आप साथ लाए हे तो आप ही जानें। आप मुझे लटकाए-लटकाए घूमने में खुश हों तो मै आपके साथ चलूगी। मेरे यहा रहने का तो कोई तुक ही नही है। हा आपको लगता हो कि आप निर्विघ्न होकर अकेले ही इधर-उधर आते-जाते अपना काम निपटा लेंगे तो बात अलग है।"

उर्मिला के सख्त रवैये से वह एकाएक घबरा उठे और बोले—"तो फिर आप लोग कल किसी समय दिल्ली मे ही मिले—आज मै अकेला ही चला जाता हू।"

मैं बोला—"ठीक है आप रात को फोन पर बता दें। हम आपको निश्चित किए हुए स्थान पर यथासमय मिल जाएगे।"

बात तय हो गई और हम लोग खाना खाकर उठ गए। मैंने मुकुद जी से कहा—"गर्मी बहुत है—आपने अभी खाना खाया है, थोडी देर आराम करके जाते तो शायद ठीक होता।"

वह बोले—"हा बात तो आपकी ठीक है मगर मेरी कठिनाई यह है कि मै खाना खाकर एक बार बिस्तर पर पसर जाऊ तो फिर कई घटे नही उठ सकता।

मैंने हसते हुए कहा—"इसके लिए कोई दंड तो आपको देगा नही। मजे से सोइए काम-धाम कल देखा जाएगा।"

"नहीं वैसा करना उचित नही होगा। इस तरह के शिथिलीकरण से संकल्प शक्ति कमजोर पड़ जाती है। जब किसी काम को, हाथ में लिया हो तो उसे तुरत निपटाने का निर्णय किया जाना ही समीचीन है।"

"आपकी बात ठीक है। मै तो बहुत ढीला और आलसी हू—शायद ही कभी सकल्प और निर्णय मेरे पास फटकते हो। कुछ भी, ऐसा विशेष करणीय मुझे नही दीख पड़ता जिसे थोड़े हेर-फेर के साथ या आगे-पीछे करने मे लाभ-हानि की संभावना हो। हानि-लाभ दोनो ही एक जैसे हैं। यहा पाने और गंवाने के लिए अपने पास हे ही क्या?"

"यह निर्वेद और वैराग्य का दर्शन हम सामान्य गृहस्थियो से कहा चल पाता हे? भले ही कुछ फर्क न पडता हो पर सचय तो गवा देने से स्पष्ट ही अलग हे। आप जिस दुनिया में रहते हें वहा भावों का मूल्य है परतु हम दुनियादार

"यानी दूसरे शब्दो में आपका आशय है कि हम लोग भाव बेचते है।" मैने मुस्कराकर पूछा।

"मैं ऐसा कैसे कह सकता हू। भावना, भावुकता, कल्पना, विचार आदि का हमशा से सम्मान होता आया है। कलाकार किसी भी समाज की मूर्धन्य शोभा है पर यदि उसे ग्राहक-गुणग्राहक नहीं मिल पाता तो उसकी परिणति क्या होती है यह शायद बतलाने की जरूरत नही है।"

मै बोला—"पर भवभूति ने तो कुछ और ही कहा है।"

"हा भवभूति ने जो कहा है वह मुझे पता है पर साथ ही उसने अपने समान धर्मा और गुण ग्राहक की आशा छोड़ी नही है। कही न कही—कभी न कभी कोई न कोई होगा जो उसके महत्त्व को पहचानेगा, स्वीकार करेगा।"

अपनी बात को मुकुंद माधव ने आगे बढाया—"मगर आज जो दुनिया है, जो जीवन है, उसके जो मारक दबाव हैं—उनके चलते भावना को भी बाजार चाहिए, क्रेता चाहिए। क्या आप इससे इनकार कर सकते है।"

"नहीं! भला इनकार किया ही कैसे जा सकता है। भले ही उस तरह का वाणिज्य व्यापार न होता हो मगर कागज रंगने वालों को भी किसी न किसी रूप मे विक्रेता की भूमिका निभानी ही पड़ती है।"

"परतु कालातर में ऐसा नहीं था। कलाकारो को राजकीय सम्मान और आह्लादकारी पुरस्कार दिए जाते थे। तब उन्हें अपनी कला को बेचने के लिए दर-दर की ठोकरें नही खानी पडती थी। पर साथ ही यह भी है कि तब वह आज की तरह हर गली-मोहल्ले मे बिखरे नहीं पडे थे।"

मैंने कहा—"मगर राज्याश्रय पाने वाले कवि कलाकारो के सरोकार क्या थे, उनकी प्रतिबद्धता क्या थी—यह भी तो देखा जाना चाहिए।"

पडित जी बोले—"कलाकारों-कवियो के विषय-वस्तु को कौन निश्चित कर सकता है। वह तो स्वच्छद वृत्ति के प्राणी होते है—कल्पना में जीते और कला की साधना करते है।"

मैंने उनके विचार से असहमति व्यक्त की—"ठीक ऐसी बात नहीं है। कला क्या है—यह भी देखने की चीज है। नितांत काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करके उन्हे किसी अन्य लोक का बना देने से तो कला की कोई उपयोगिता ही नही रह जाती।"

मुकुद माधव बोले—"सस्कृत साहित्य मे वाल्मीकि, कालिदास, भास, भवभूति हर्ष और बाणभट्ट जैसे कवि और नाटककारों को क्या आप साधारण कोटि की विभूतियां मानते हैं?"

"नहीं, नही मै इन्हे साधारण कतई नही मानता पर इनमे से सभी तो गज्याश्रित और दरवार की कृपा के पात्र नहीं थे। उन्होंने जनसामान्य को अपने साहित्य का विषय भी नही बनाया। अधिकांश जन तो उनके साहित्य मे गोण स्थान ही पाते है। वहा तो राजा-महाराजा, सेठ-सामत, रानिया-महारानिया ही दीख पडती हे।"

"वह तो होना ही चाहिए। साधारण लोगों को साहित्य का विषय केसे बनाया जा सकता है? साधारण लोगों में ऐसा होता ही क्या है जिसे महत्त्वपूर्ण माना या कहा जा सके?"

उनकी बात पर मै हंस पडा और बोला—"तभी तो बहुसंख्य कवियो ने फूल-पत्तो, नदियों और राजाओ के भोग-विलास का वर्णन अपने काव्य मे किया है ओर इसे कवि कर्म की इतिश्री मान लिया है। रीतिकाल का ज्यादातर साहित्य नायिकाओ के नख-शिख वर्णन मे ही लिप्त दिखाई पडता है। घोर शृगारी रचनाएं जनमानस की समस्याओ से एकदम अछूती है इसीलिए उनका कोई सामाजिक पक्ष उभरकर नही आ पाता।"

मुकुंद माधव बोले—"नहीं, नही मै ऐसा नहीं मानता। मध्यकाल की रचनाओ को देखिए। वह तो हमारे काव्य का स्वर्णकाल है। आप तुलसी, सूर, मीरा, जायसी की रचनाए देखे उनके प्रति सैकड़ो वर्षो से जनमानस जुड़ा हुआ है और उनकी रचनाओ से निरंतर प्रेरणा प्राप्त करता चला आ रहा है।"

"आप बिल्कुल सही कह रहे है पर यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जितने नाम आपने मध्यकाल के कवि मनीषियों के गिनाए हैं उनमें से एक भी दरबार की शरण में नहीं गया। मीरा ने तो राजघराने के सारे आचार-विचार को ही तिलाजलि देकर सारे दरबारी कायदे ही तोड डाले थे और जनसाधारण के बीच जा बसी थी। बाकी कवियो का स्वर भी 'सतन को काहा सीकरी सो काम' का था। इन सबने दरबार की पूर्ण उपेक्षा की तभी यह जनता के गले का हार बन सके।"

"मुझे नही लगता कि साधारण लोगो को लेकर उत्कृष्ट साहित्य सर्जन सभव है। वह तो अत्यत निम्न कोटि का जीवन जीते हैं—उनकी आज्ञा आकांक्षाएं भी कही से विशिष्ट नहीं होती फिर उनके संबध में लिखा ही क्या जा सकता है।"

मै बोला—"लेकिन गांधी जी के स्वातंत्र्य आंदोलन में कूदने वाले तो यही बहुत साधारण कोटि के लोग थे। प्रेमचद का तो सारा साहित्य ही निर्बल, निरक्षर, निर्धन लोगो की गाथाओं में समाहित है। लेखक और कवि भी तो इन्हीं के बीच से निकलता है इसलिए उसे उनकी ही बातें कहनी हैं। राजाओं की प्रशस्तियां करने
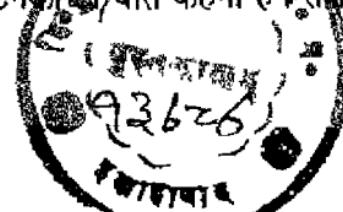
वाले कवि लेखक आज के समाज मे कोई महत्त्वपूण स्थान नही रखते। प्रेमचद ने तो अग्रेजो के रायसाहबी के अलकरण को यही कहकर ठुकरा दिया था कि मुझे शासको की नही जनता की रायसाहबी ही इष्ट है।"

पडित मुकुंद माधव बोले—"बहस लबी हो जाएगी—सबका अपना-अपना सोच-विचार है। आप जैसा ठीक समझते है वही ठीक होगा पर मै फिर भी यह मानता हू कि महान् और शाश्वत साहित्य इन रोजमर्रा की स्थितियों और असंतोष को लेकर नहीं रचा जा सकता इसकी अवधारणा के लिए शास्त्रीय मानदड ही स्थिर करने पड़ेंगे।"

साहित्य की प्रासंगिकता उसके सरोकारो और उसकी शाश्वत तथा शास्त्रीयता को लेकर तो कितनी भी देर तक बहस की जा सकती थी पर एक तो हम दोनो दो अलग-अलग ध्रुवों पर खड़े थे। इसके अलावा मुकुद माधव को काम के सिलसिले में दिल्ली भी जाना था इसलिए मैने बातचीत को वही विराम देते हुए कहा—"तो फिर आप जाने की तैयारी करें, मैं आपको दिल्ली जाने वाली बस पर सवार करा आऊगा।"

"मुझे तैयारी ही क्या करनी है जी! बस काधे के झोले में एक-दो कपडे और डायरी डालनी है।"

मै बोला—"तो ठीक है मै भी कुरता डालकर आता हू।"

जब पंडित जी चलने लगे तो मैने जोखन से कहा—"पंडित जी के लिए फ्रिज से पानी की एक ठडी बोतल निकालकर लाओ।"

वह हाथ हिलाकर बोले—"पानी-वानी लादकर ले जाने का क्या औचित्य है? क्या दिल्ली मे पीने को पानी भी नहीं मिलेगा?"

"पानी तो बहुत मिलेगा पर वह अस्वस्थ होने के साथ-साथ गरम भी कम नही होगा। ठेलों पर बिकने वाले पानी को आप पी भी नहीं पाएंगे। यहा से निकलेगे तो भी प्यास लगेगी ही और तुरत आप किसी के परिवार मे जाएं, शायद यह भी आपके कार्यक्रम मे शामिल नही है।"

"हा यह तो आप ठीक कहते है। तब मुझे प्लास्टिक की बोतल ही दें। काच की बोतल तो बहुत वजनी हो जाएगी।"

मैने जोखन से प्लास्टिक की बोतल ही लाने को कह दिया।

जोखन पानी की बोतल ले आया तो मैने स्टील की एक छोटी-सी गिलसिया भी मगवा दी और बोला आप इस गिलसिया से पानी पीएंगे तो पानी नष्ट नहीं होगा।'

पडित जी ने बोतल और गिलसिया अपने झोले में डालकर कहा—"आप अतिथियो का जितना खयाल रखते है, इतना तो कोई सदगृहिणी ही रख पाती है।" फिर एक पल ठहरकर हसते हुए वोले—"आप रचनाकार लोग वास्तव मे नारी हृदय रखते है। इसीलिए आपको अर्धनारीश्वर कहू तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।"

"अरे छोड़िए यह भी कोई ऐसा कारनामा है जिसके लिए आप इतनी बडी पदवी दे रहे है।"

पडित जी को साथ लेकर मै घर से निकला तो उर्मिला हमारे साथ ही घर के वाहर चबूतरे पर आकर खडी हो गई। वह मेरी ओर सकेत करके वोली—"मैं भी बस स्टेशन तक साथ न चलू?"

मैं बोला—"पति महोदय को भावभीनी विदा देने का मन है तो जरूर चलें।"

मुकुद माधव बोले—"ये धूप में व्यर्थ परेशान होगी। आराम करने दो।" फिर कुछ सोचते हुए वोले—"बस स्टेशन दूर होगा तो एक की बजाय फालतू मे दो रिक्शो का भाडा देना होगा।"

मैं उनकी किफायतदारी पर कुछ कहता इसके पहले ही उर्मिला तमतमाती घर के भीतर चली गई।

मै पडित मुकुंद माधव को दिल्ली की बस मे विठाकर लौटा तो मुझे उर्मिला नजर नही आई। मैंने जोखन से उसके विषय में मालूम किया तो वह बोला—"मैमजी गैस (गेस्ट) होस में सो रही है।"

मै जानता था कि वह सोई तो क्या होगी, पंडित जी के इस वाक्य में 'एक की बजाय फालतू मे दो रिक्शो का भाडा देना होगा' से मर्माहत होकर दुखी मन से विस्तर में जाकर पड़ गई होगी।

पर मैने उसे छेडना उचित नही समझा और अपने अध्ययन कक्ष मे जाकर पढने-लिखने मे लग गया।

5

उर्मिला लगभग ढाई बजे मेरे अध्ययन कक्ष मे आई तो मैने देखा कि उसकी आखे लाल थी। सभवत· वह मुकुद माधव की कृपणता को लेकर लज्जित और अपमानित अनुभव करती रही थी। शायद इस बात को लेकर क्षोभ की स्थिति में रोई भी थी।

मैने उसकी मनःस्थिति का कोई सकेत पा लिया है--यह उस पर प्रकट नही किया और बोला—"क्या फिल्म देखने चलोगी?"

"फिल्म? इस जेठ की दोपहरी मे?" फिर उसने कुछ सोचकर पूछा—"क्या आपका मन है? आप क्या फिल्म देखने के शौकीन हैं?"

"अरे नही जी! मै तो कभी शायद ही भूले-भटके कोई फिल्म देखता हू।"

"तो क्या मेरी वजह से ही फिल्म देखना चाहते है?"

"नहीं! तुम्हारी वजह से नहीं अपनी वजह से भी!"

"कौन-सी फिल्म लगी है?"

"कितने ही टाकिज हैं इस शहर मे। पहले तो दो ही थे मगर देखते-देखते अव तो दस-बारह हो गए है। शहर भी तो पहले की अपेक्षा इधर-उधर वहुत फैल गया है।"

"सारे कस्बो की यही गति है। सुरसा के मुह की तरह फैलते चले जा रहे है। फिर आपके शहर की तो वात ही अलग है—एक तो औद्योगिक नगरी इसके अलावा दिल्ली के इतने नजदीक यह तो एक तरह से दिल्ली का एक उपनगर जैसा ही है।"

उसे एकाएक याद आया कि मैने सिनेमा देखने की वात कही थी। उसने पूछा—"कौन-कौन-सी फिल्में लगी हैं?"

"यह तो पता नही मगर अखबार मे देखने से पता चल जाएगा कि किस हाल मे कौन-सी फिल्म लगी है।"

बाते करते-करते तीन बज गए तो मैं बोला—"चलो अब मैटिनी शो क्या देखना—वह तो एक तरह से जहमत ही हो जाएगी। लू लपट मे सिनेमा देखने की तुक भी क्या है। अब शाम का शो ही देख लेगे।"

मैने उर्मिला से पूछा—"सुबह तो दरअसल नाश्ते के समय ही खाना खा लिया गया था। मै समझता हू अब तक आपको खासी भूख लग गई होगी।"

"पहले तो आप यह बार-बार 'आप' 'आप' कहने से बाज आइए। इसस बहुत पराएपन का बोध होता है और ऐसा भी लगता है जैसे आप मुझे स्वय से काफी दूर ठेलकर रखना चाहते है। सीधे से तुम कह सकते है। मेरा नाम भी इतना कठिन नही है कि इसके उच्चारण में आपको कोई कष्ट हो।"

मैं बोला—"नहीं, उच्चारण मे कोई दिक्कत नही है मगर मेरा सस्कार आडे आ जाता है। मुंह से तुम शब्द यदा-कदा ही बोल पाता हू मगर आप कहती हे तो कोशिश करूगा। वैसे हो यह भी सकता है कि मै जब आपसे 'आप' कहू तो उसे आप तुम के रूप मे ही ग्रहण करे। मेरा मतलब है कि उसका आशय 'तुम' से ले।"

उर्मिला मुक्त भाव से हस पड़ी। मैने देखा उसके मुख पर जो अवसाद देर से फला हुआ था और वह मन में जो सताप झेल रही थी पता नहीं एकाएक वह कहा तिरोहित हो गया था। हसते हुए वह वास्तव में बहुत सुदर और सरल दीख पडती थी। ऐसी हसी को सहज रूप से पा जाने वाला यदि उसका तिरस्कार या उपेक्षा करता था तो मै उसे अभागा ही कहूंगा। किसी युवती को वेबाक हसते हुए देखना और यदि उसकी हसी आपके हिस्से मे ही आनी हो तो वह किसी भी मूल्य पर महगी नही है।

हंसी थमने पर उर्मिला बोली—"लेखक महाशय, जो भी संबोधन हम किसी को देते है उसे किसी दूसरे रूप मे वह कैसे ग्रहण कर सकता है? किसी व्यक्ति को यदि आप भोंडा कह देगे तो क्या वह उसका आशय स्वय को सुदर या सुरूप कहे जाने के अर्थ में ग्रहण कर लेगा। कम से कम आपको तो शब्दों का यथारूप ही प्रयोग करना चाहिए। मेरा तात्पर्य अभिधा से है।"

"चलो इसमे क्या कलहबाजी उर्मिला जी।" कहकर मैने जोखन को आवाज दी और मैं उर्मिला से बोला—"चलिए अब तो मैं आपको नाम से ही बुला लिया करूगा। इससे तो खुश हैं।"

"यह 'उर्मिला जी' तो 'आप' से भी ज्यादा भारी-भरकम बल्कि कहिए पहाड जसा सबोधन है। क्या मै आपको इतनी वजनी, दिखलाई पड़ती हू कि आप मेरे नाम क साथ जी लगाने की अनिवार्यता समझे?"

"बडी मुश्किल है अपने देश और भाषा की सस्कृति और आचार सहिता जिसमे किसी को 'तू' कहो तो बुरा माने न कहो तो बुरा माने। आप कहो तो उस सबोधन वजनी लगे न कहो तो उसे अपना तिरस्कार लगे।"

"तिरस्कार भी न करे—बुरा लगने वाली बात भी न कहे बस 'आत्मीय' लगने वाले सबोधन दे। यही पर्याप्त है मेरे लिए।"

"सबसे आत्मीय तो 'प्रिय' है। स्त्री को 'प्रिया' कहा जा सकता है। क्या मुझे आपको प्रिया कह सकने का अधिकार मिल सकता है? इस पर भी आप तैयार नही हो पाएंगी—मैं जानता हूं।"

"इस पर अगर मै तुरत तैयार हो जाऊ तो आप क्या देगे?"

उसके इस निर्व्याज स्वीकार पर मैं एकदम अवाक् रह गया। कोई भी युवती चाहे वह कुमारी हो अथवा विवाहिता, अपने घनिष्ठतम परिचित अथवा आदरणीय को भी यह अधिकार नही दे सकती। बस प्रिया कह सकने का अधिकार तो किसी एक का ही हो सकता है।

मुझे चुप देखकर वह मुस्कराई और बाकपन से बोली—"मैने तो आपको एक इच्छित सबोधन की स्वीकृति दे दी अब आप जरा इसका प्रयोग तो करके बताइए।"

मैंने काफी ऊहापोह के बाद कहा—"यह सबोधन अधिकार नही दायित्वो से जुडता है। शायद मै न इसके योग्य हू न अधिकारी फिर इसे भी क्योंकर सहज मान लू?"

"कोई पहेली नही इसमे। एकदम सहज और आसान बात है। आपके बहुत से नाम होते हैं। जन्म नाम कुछ होता है, घर वाले उसे बदलकर कुछ और रूप दे देते है। मित्र उसमे भी कुछ घटा-बढा देते हैं। विवाह से पहले मैके मे लडकी का नाम कुछ और होता है। विवाह हो जाने पर ससुराल में कुछ और नाम से पुकारा जाने लगता है। कभी-कभी पति ही कोई अन्य नाम दे देता है। क्या फर्क पडता है आपके लिए यदि उर्मिला 'प्रिया' हो जाए।"

मेरी ठहरी हुई सास इतनी देर बाद सम स्थिति पर आई और मै बोला—"बेचारी औरत की यह तो वाकई बड़ी दुर्गति है कि जहां देखो उसके नाम रखे जा रहे है।"

"नाम रखे जाना तो गाली हो गया। रखे न कहिए, दिए जा रहे हैं बोलिए। वही ज्यादा सही होगा शायद।"

"अच्छा। हा यह ठीक है अब मै आपको उर्मिला जी की बजाय 'प्रिया जी' कहकर बुलाऊगा। इस पर तो आपको कोई आपत्ति नही है?"

"मुझे आपत्ति है और खूब है।" उर्मिला ने सिर को एक ओर झटककर कहा। मे कुछ पूछता तब तक जोखन मेरे सामने आकर खड़ा हो गया।

मै बोला—"आज के सारे अखबार उठा लाओ।" जब जोखन कमरे से बाहर निकल गया तो मैंने उर्मिला से पूछा—"हा आप क्या कह रही थी तुम।"

"आपने मुझे प्रिया जी कहकर फिर गाजर-मूली मे बदल दिया।"

मै समझ गया वह 'प्रिया जी' कहने से भडक उठी थी। मैं हंस पडा और बोला—"तो फिर 'सुप्रिया' पर समझौता रहा। मै आज से और अब से आपको सुप्रिया कहूगा। कोई आपत्ति?"

वह सक्षिप्त बोली—"कोई आपत्ति नही। आपने कविता में ही बदल दिया प्रिया को। प्रिया तो वैसे ही सुप्रिया हो जाती है लेकिन यदि वह पहले से ही सुप्रिया हो तो तूफान ही बरपा कर डालेगी। अब जब यह आपने कर ही डाला तो आप ही सभालेगे इसके परिणाम। हमारे महाशय जी जब आपके मुह से मेरे लिए प्रिया या सुप्रिया सबोधन सुनेंगे तो पता नही क्या होगा।"

"कुछ नही होगा। यह नाम मै प्राइवेट तौर पर ही इस्तेमाल करूंगा—यह सबके लिए और आम नही होगा।"

उर्मिला बोली—"ठीक है, तो यही सही।"

इसी समय जोखन अखबारो का बडल उठा लाया। मैंने अखबार मे उन फिल्मो के नाम देखने शुरू कर दिए जो शहर के विभिन्न छविगृहों मे लगी हुई थीं। एक हाल में अंग्रेजी फिल्म 'ब्लू एंजिल' लगी देखकर मै उर्मिला से बोला—"क्या आप अंग्रेजी फिल्म देखना पसद करेंगी?"

"पता नही कैसी होगी?"

"फिल्म का नाम ब्लू एजिल है।"

"फिर तो यह ब्लू फिल्म होगी। सुना है ब्लू फिल्म बहुत अश्लील होती है।"

उसके सयम पर मैं हस पड़ा तो उसने मेरे हसने का कारण पूछा।

मैने कहा—"भई यह ब्लू फिल्म नही है इसका नाम 'ब्लू एंजिल' यानी नीला देवदूत या नीला फरिश्ता है। फिर यह भी है कि भयानक गर्मी में तीन घंटे की घुटन भी नही झेलनी पडेगी यह फिल्म डेढ-दो घटे से ज्यादा की नही होगी।"

उमिला कुछ देर तक सोचता रहा और फिर बोला मगर मुझे तो उसकी अंग्रेजी ही समझ में नहीं आएगी। मेरी तो अंग्रेजी ही एकदम चौपट है।"

"मैं कौन-सा विलायत में पैदा हुआ हू। मेरी अंग्रेजी की समझ तुम्हारे जितनी ही है।"

"फिर भी, आप तो लेखक है। अंग्रेजी के अखबार और किताबे तो पढते ही है।"

"अंग्रेजी पढ लेने से कुछ नहीं होता। उन लोगों के उच्चारण बहुत ऊट-पटाग होते है। बस कभी-कभी इतना जरूर समझ में आ जाता है कि कुल मिलाकर कहानी क्या है।"

कहानी ही पढनी हो तो फिर फिल्म देखने की क्या जरूरत—उपन्यास-कहानियां न पढ़ी जाए।"

"ये फिल्मे भी कहानियों और उपन्यासों पर ही तो आधारित होती है। और जहा तक हिंदी की बबड्या फिल्मो का सवाल है, वह तो ज्यादातर अंग्रेजी फिल्मों के मसालों पर ही तैयार की जाती है। यह बात अलग है कि फिर वह न अंग्रेजी की रहती है न हिंदुस्तानी। अजीब चू-चू का मुरब्बा लगती है। यही कारण है कि कोई मुझे घसीटकर न ले जाए तो मै फिल्में देखने नही जाता।"

उर्मिला बोली—"पर कभी-कभी तो बडी अच्छी फिल्मे बनती है। मैने गुरुदत्त की कई फिल्मे देखी हैं। बडी मार्मिक होती है।"

"हा थोडे से डायरेक्टर है जो साफ-सथुरी फिल्मे बनाते है। गुरुदत्त-वी शाताराम, हृषिकेश मुकर्जी वगैरह।"

"पहले की फिल्मो मे भी अच्छी बाते दिखलाई जाती थी। सोहराब मोदी की ऐतिहासिक फिल्में तो एकदम अनूठी होती थी।"

"चलो तो कोई जल्दी नहीं है, अभी। सोच लो। हो सकता है शाम तक पंडित जी भी लोट आए। उन्हें भी घसीट ले चलेगे।"

मेरी बात पर उर्मिला हस पड़ी।

"इसमें हसने की क्या बात हो गई।"

"कुछ नही। आपने पंडित जी के फिल्म देखने की बात कही तो मुझे हसी आ गई। वह तो फिल्मों के नाम से ही भड़क उठते है। टेलीविजन पर कभी-कभी कोई बहुत अच्छी फिल्म आती है पर क्या मजाल कि वह उसकी ओर आखें उठाकर भी देख लें। कहते है, यह फिल्मे हमारे आचरण और सस्कृति को गारत करने पर तुली हुई हैं। इन्होने सारे सामाजिक मूल्यो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है।"

मैने हसकर कहा—"जोर देकर उन्हे सत ज्ञानेश्वर दिखाती—उसमे तो एक भैसा भी वेद पाठ करता है।"

जोखन दरवाजे में आते हुए बोला—"काह चाय वना दऊ?"

मैंने उर्मिला की ओर देखकर पूछा—"क्या चाय पीने का मन है?"

"आप इस टाइम चाय पीते हो तो बनवा लीजिए—मैं भी साथ दे दूगी। वैसे म तो चाय-वाय की इल्लत ज्यादा पालती नही हू।"

"तो कुछ ठडा पी लो।"

"नही-नही उसकी क्या जरूरत है। मैं भी आधा प्याला चाय ही पी लूगी।"

मैने जोखन से कहा—"जोखन इन्हें अब तक भूख भी लग आई होगी। खाना तो आज बहुत जल्दी ही खा लिया गया था। चाय के साथ कुछ बना लेना। न हो तो पड़ोस का हलवाई समोसे तल रहा होगा वही ले आना।"

उर्मिला कुर्सी से उठते हुए बोली—"जोखन भैया समोसे-अमोसे लाने के फेर मे मत पड़ो। बस तुम चाय ही बनाओ।"

जोखन के पीछे-पीछे जाते हुए उसने कहा—"जोखन भैया क्या घर में थोडा वेसन पडा होगा।"

पता नही जोखन ने क्या कहा। मै जोखन की आवाज सुन नही पाया।

मैं भी कुर्सी छोड़कर उठने ही जा रहा था कि तभी जोखन मेरी डाक लेकर आ गया।

कई पत्र और पत्रिकाए आई थीं। मै उन्हें खोल-खोलकर, पढ़ने लगा। अधिकाश पत्र सपादको और प्रकाशकों के थे और कुछ पाठको के खत थे।

मै पत्र पढने म लगा था कि तभी जोखन ट्रे लेकर आया और ट्रे मेज पर रखते हुए बोला—"मैम जी पकौडी तल रई हैं—उनन्ने कयो है के गरम-गरम खाय लेवो नाय तो ठंडी है जाएगी।"

मैने आखें उठाकर देखा तो मेज पर चाय और पकौडियों की प्लेट रखी थी।

मै बोला—"जोखन ये क्या गजब है? इतनी पकौड़िया कौन खाएगा भई? फिर उन्हे भी तो भेजो। मै क्या यहा बैठकर अकेला ही चाय पिऊगा?"

जोखन ने जाकर यही बात उर्मिला से कही होगी। तीन-चार मिनट बाद हलवे की प्लेट लेकर वह भी आ गई और बोली—"जब घर में ही सारी चीजे उपलब्ध है तो आप फिर वाजार से खाने की चीजे क्यो मगवाते है।"

"यह हलवा और पकौड़िया हमारे नसीब मे कहा है सुप्रिया पंडितानी। इन्हे हमारे लिए बनाने वाला कौन वैठा है इन सूनी दीवारो के बीच।"

एसा बात नहा ह। इच्छा होनी चाहिए सब बनाने वाले आ जाते या हो जात हे।"

मे बोला—"वह कहावत तो आपने शायद सुनी ही होगी कि इच्छाए घोडे हुआ करती तो भिखारी भी पैदल न चलते।"

"कहावत तो मैंने सुनी या नहीं सुनी पर मै एक बात तो जानती हू कि अगर आदमी मे किसी चीज की इच्छा पैदा हो जाए तो वह चीज उसे मिल ही जाती हे या वह उसे किसी-न-किसी तरह प्राप्त कर ही लेता है।"

उसके इन वाक्यों से मेरे भीतर उथल-पुथल-सी मच गई। क्या वास्तव मे उर्मिला सत्य ही कह रही थी? उसे क्या पता मैंने जिसे कभी मन से चाहा था। मेरी चाहत जिसके लिए दुर्निवार थी और लगता था कि उसको पाए बिना मेरी सास ही थम जाएगी और मै एक क्षण भी नही जी सकूगा—क्या वह मुझे मिली?

उर्मिला ने मुझे विचारों में डूबे देखकर कहा—"अरे यह क्या अधेर है? आप किस सोच मे गर्क हो गए? चाय और पकौडिया तो ठडी हो जाएगी।"

उसके टहोके से जैसे मै सोते से जाग पडा।

मेरी अस्त-व्यस्त मानसिकता का शायद उसे पता चला गया। वह बोली—"आप मेरी ऊल-जलूल बात सुनकर इतने अस्थिर क्यो हो उठे? क्या मैने कोई अनुचित बात कह दी थी।"

मैने एक लबी सांस छोड़कर कहा—"नही-नही कुछ नही। तुमने तो ठीक ही कहा पर शायद मैं ही उस लायक नही निकला।"

उर्मिला ने चाय का प्याला मेरी ओर सरकाते हुए कहा—"आप यह क्या कह रहे हैं—किस लायक न होने की बात कह रहे हैं आप?"

मैने चाय का प्याला उठाकर होंठों की ओर ले जाते हुए कहा—"छोडो उस बात को। वह जहाज लंगर खोलकर अब बहुत दूर जा चुका है। इतना दूर कि आखो से दिखाई नही पडता। दुरांत पर ओझल हो गया कभी का।"

मेरी आवाज मे शायद कोई ऐसी लरज प्रतिध्वनि हुई होगी कि उर्मिला एकदम गभीर हो उठी। वह बोली—"मैने भूल से शायद कोई ऐसी बात कह दी है जिससे आप विचलित हो उठे। क्या मुझे नही बताएगे वह क्या बात थी—वह कौन थी?"

मै बोला—"नही छिपाने जैसा कुछ नहीं है मगर उससे क्या होगा। सुनकर शायद तुम भी उदास ही हो उठो। छोडो-छोडो चाय पीओ।"

उसने चाय को हाथ भी नही लगाया न पकौडियां छुई। उसके कंठ से एक माधुर्य जगाता-सा स्वर फूट पड़ा—"में कभी-कभी सोचती थी कि कवि लोग इतने

अकेले आर उदास क्यो हाते ह। आपके वार म भा यहा कातूहल था कि आपन घर-परिवार क्यों नही बसाया पर अब वह वात समझ मे आ गई। बुरा न माने तो पूछू वह कौन थी--क्यो आपके जीवन से निकल गई?" फिर वह कुछ क्षण ठहरकर वोली—"आप कविता भी जरूर लिखते होगे। अपनी कोई कविता सुनाइए न।"

"मुझसे कविता की फरमाइश?" मैने आश्चर्य व्यक्त किया।

"कविता की क्यो नही? मै दावे के साथ कहती हू कि आपका यह उपन्यास कहानियो का छद्म मुझे धोखा नही दे सकता। हालांकि मैंने तो आपके पहले उपन्यास से ही जान लिया था कि आप मूलतः कवि है पर सोचती थी वह सब काल्पनिक ही होगा। आपके पहले ही उपन्यास का अत नायिका के उस पत्र से हुआ है जो बिना मिले—मात्र एक पत्र छोडकर चली जाती है। कहिए तो वह पत्र मै आपको सुनाऊ?"

"नही नहीं, वह तो सब वास्तव मे एक कल्पना ही है। मेरे जीवन का उसमे कुछ भी नही है। बहुत लोगो ने उसे मेरी आपबीती मानकर धोखा खाया हे। उसको लेकर न जाने कितने पाठको के जिज्ञासा पूर्ण पत्र आए है।"

"पर मै कह सकती हू कि मैने बिल्कुल धोखा नहीं खाया, हम स्त्रिया किसी पुरुष की असलियत को जानने-समझने मे ज्यादा देर धोखा नहीं खातीं।"

इस पर मै हस पड़ा तो उसने पूछा—"इसमे हंसने जैसा क्या है?"

"यही कि स्त्रियां पुरुष को समझने मे ज्यादा देर नही थोडी देर ही धोखा खाती मगर खाती जरूर हैं। है न?"

"चलिए यही सही मगर असली बात को टालने की कोशिश न कीजिए मे आपसे पूछकर जरूर रहूंगी।"

"अरे भाई कुछ भी नहीं छिपाया है आपसे।"

"मै किसी से भी नहीं कहने जा रही हू—बस आपकी मनोव्यथा को सहानुभूति के स्तर पर लेना चाहती हूं।"

मेने उर्मिला का उत्कट आग्रह देखकर कहा—"अच्छा तो फिर मै तुम्हे एक कविता सुनाता हूं मगर साथ ही यह भी बतला दूं कि यह कविता मेरी नही हे।"

"न सही आपकी, जिसकी भी हो सुनाइए।" फिर एक क्षण ठहरकर उर्मिला ने पूछा—"उसका शीर्षक क्या है।"

मैने कहा—"शीर्षक है 'भूले हुओ का गीत'।"

"अच्छा तो फिर सुनाइए।"

कविता न जाने कितने वर्षो पहले पढी थी सो कठस्थ थी—हा कवि के नाम

को लेकर भ्रम था इसलिए मने वह कावता हा सुनाइ :

बरसों के बाद कभी
हम तुम यदि मिले कहीं
देखें अपरिचित से
लेकिन पहचानें ना
याद भी न आए नाम
रूप रंग काम धाम
सोचें पहचान है
पर मन में मानें ना
हो न याद एक बार
आया तूफान ज्वार
बंद मिटे पृष्ठों को
पढ़ने की ठाने ना
बातें जो साथ हुई
वर्षों के साथ गई
और जो शेष रही
उनको भी जानें ना।

उर्मिला दत्त-चित्त होकर पूरी कविता सुनती रही। कविता की समाप्ति के बाद भी वह कई क्षण स्तब्ध हो बैठी रही। लगता था जैसे उसकी दृष्टि कहीं बहुत दूर किसी अन्य लोक में चली गई थी।

मैंने अपने मनोभाव से उभरते हुए हंसकर कहा—"अरे भई कहा खो गई। कविता तो कब की खत्म हो गई।"

जैसे उसकी तंद्रा टूटी। वह खोए हुए स्वर में बोली—"नहीं-नहीं कविता खत्म नहीं हुई—कविता कभी समाप्त होती भी नहीं है। भले ही कविता में कुछ भी लिखा गया हो पर बात आज भी उसी बिंदु पर खड़ी है—चिर प्रतीक्षा रत—किसी के लौट आने की प्रतीक्षा मे।"

मैं बोला—"गया हुआ कुछ तो कभी लौटता नहीं है। बस हमारी स्मृति के निभृत कोने में एक कील की तरह गड़ा रह जाता है।"

"हां वही तो। मैं भी तो यही कहती हूं।"

मैंने जैसे वर्षों पुरानी गर्द को झाड़ते हुए कहा—"बहुत हुआ, हवाओ मे घूमने भटकने में क्या धरा है। वर्तमान ही काफी है—वही एक चुनौती है।"

"हा, वर्तमान ही चुनौती है पर वह भी तो अतीत का ही अगला चरण है। क्या आप यह नही मानते?"

"मानता हू भई, सब कुछ मानता हू।" कहकर मै उठा और कमरे से बाहर निकल गया।

मैंने जोखन को इधर-उधर देखा पर वह कही दिखलाई नही पडा तो मै उसकी कोठरी की ओर बढ गया।

जोखन अपनी कोठरी की दहलीज पर बैठा अपने फटे कुरते की मरम्मत कर रहा था। मैंने हसते हुए कहा—"औरतो का काम चल रहा है जोखन।"

उसने मेरी ओर आखे उठाकर देखा और सिर हिलाकर बोला—"नाय तो।"

"नाय तो क्यो? सिलाई मे लगे हुए हो। क्या यह औरतों का काम नही है?"

"जा काम कू बी कन्न (करने) लगो वोई अपनो काम है जात हैगो। न्यो (यों) देखो तो रोटी-पानी, वर्तन-भाडे सबई कू सभारना औरतन के ई कारज ठेरे। पर खुद कन्न लगो तो वोई आदमीन के काम है जात है, का ना है जात है?"

जोखन ने एकदम ठीक और पते की वात कही थी। जोखन ने सारा घर किसी औरत की तरह ही तो सभांला हुआ था। अब वह बरसों से मेरे साथ रहता था ओर गृहस्थी के सारे धंधे करता चला आ रहा था। उसका गाव जाना तो कभी-कभी ही हो पाता था। जब उसका कुरता बनियान या धोती फट जाती थी तो उनकी सिलाई या थेगली वगैरह खुद ही लगा लेता था। हो सकता है उससे औरतो का कौशल न निभ पाता हो पर वह जैसे तैसे कर तो लेता था।

मैं सोचने लगा, अगर जोखन मुझे छोड़कर चला जाए तो मैं क्या करूंगा? क्या यह सब काम-धधे करने या सीखने नहीं पडेगे?

मैं उल्टे पांव लौटते हुए बोला—"ठीक है, जब तुम्हारा यह मरम्मत का काम खत्म हो जाए तो चाय बना देना।"

उसने दात से तागा काटते हुए कहा—"अबई हाल बनाय देत हूं।"

मैंने ठहरकर कहा—"चाय बस मेरे लिए बनाना—वो जो आई हुई हैं वह ज्यादा चाय नहीं पीती—उनके लिए नीबू की शिकंजी ही बनाना।"

"हओ" कहकर वह सुई में तागा डालने लगा।

मै लौटकर कमरे में आया तो मैंने उर्मिला को कुर्सी मे मूर्तिवत् बैठे देखा।

मैंने जैसे उसकी तद्रा भग करते हुए पूछा—"क्यो भई सुप्रिया! क्या आज इसी तरह बैठा रहने का इरादा है? लगता है कविता सुनने के बाद किसी दूसरी दुनिया मे खो गई हो।"

"क्या करूं, आपकी कविता थी ही कुछ ऐसी।"

"मेरी नही कहो—कवि की कहो। मेरे सुना देने से ही तो वह मेरी नही हो जाती।"

"इससे क्या अंतर पडता है। जो कुछ भी आप हृदयगम कर लेते है वही आपका हो जाता है। इसीलिए तो कला किसी एक की बनकर नहीं रह जाती—वह सार्वदेशिक—सार्वकालिक और सार्वजनीन हो उठती है। हा, यश की बात अलग है वह जिसे भी मिले।"

"तुमने पते की एक बड़ी बात कह दी—'जिसने सुना कहने लगा मेरी कहानी है।' वही रचना महान् है जो सार्वजनीन अनुभूति का रूप ग्रहण कर ले।"

"बडे कलाकार भीतर से बडे जटिल होते है पर उनकी अभिव्यक्ति बहुत सहज और सुग्राह्य होती है।" फिर उसने मेरी ओर आखे उठाकर देखा और मुक्त भाव से हंस पडी।"

"किस बात पर हसी आ गई?"

"कुछ नही।"

"नहीं, कुछ तो है जो तुम यो हठात् हंसने लगी।"

"क्या बिना बात हस भी नही सकते।"

"जरूर हस सकते है और तुम तो अभी उस उम्र के दौर में ही हो जब बिना बात हस या रो सकती हो।"

उसने अपनी बडी-बडी आंखों को मेरे चेहरे पर केन्द्रित करके पूछा—"सच्ची? क्या यह कोई खास उम्र ही होती है जब आदमी बे बात के भी हस या रो सकता है?"

"हा, मुझे तो ऐसा ही लगता है। जब आपके पास अपना ऐसा कोई अनुभव नहीं होता कि आपको रोना या हंसना आ जाए या रोने हसने का स्पष्ट कारण सामने हो। क्या तुमने ऐसे बच्चे नही देखे जो पैदा होने के चार-छह महीने बाद सोते-सोते हसते या मुस्कराते हैं अथवा उनके चेहरे पर सुबकी लेते हुए रोने का-सा भाव आता है।"

"हा, दादी को मैंने कई बार कहते तो सुना था कि छोटे बच्चो को बैमाता हसाती-रुलाती है। हो सकता है उन्हे अपने पूर्वजन्म की कोई बात याद आ जाती हो।"

मैंने एक ठहाका लगाकर कहा—"पूर्वजन्म! क्या तुम पूर्वजन्म भी मानती हो?"

हर कोई मानता ह

"मै तो नही मानता।"

"बस कहने की बाते है कि आप पूर्वजन्म नही मानते। सब मानते है—बीता हुआ काल ही हमारा पूर्वजन्म है। उसी को लेकर हम सब जीते है—हंसते-रोते है। हमारे सारे क्रिया-कलाप हमारे व्यतीत या अतीत से ही तो जुडे रहते है। जब आप हमारे नगर मे आए थे उससे पहले मै सिर्फ आपको आपकी रचनाओं के सहारे जानती थी। आपसे मिलने के बाद आपसे बातें करने और फिर भेंट करने की इच्छा हुई और उसका परिणाम यह आज या वर्तमान है कि नही? अब बताइए अतीत इस सारी प्रक्रिया मे पूरी तरह उजागर नही हो रहा है?"

"अतीत वर्तमान मै नहीं सोचता। बस प्रासगिकता ही सार्थक है।"

"अब आप यह प्रासगिकता और सार्थकता ले बैठे। लेखक जी आपसे मैं यह मर्म जानना चाहती हू कि यह जो आप उपन्यास-कहानी-कविता आदि लिखते है इसमे कितना आज होता है? सब किस्से-कहानिया बीते हुए कल मे से ही तो निकलकर आते है। जब आप कहेंगे 'आज मुझे यह अनुभव हुआ' या 'ऐसा लगा' तो जरा यह बतलाएंगे ये कौन-सा काल हुआ—'हुआ और लगा' को तो तीसरी कक्षा का अबोध बच्चा भी 'वर्तमान काल' नहीं कहेगा।"

जोर से हंसकर मैने अपने दोनों हाथो मे सिर थाम लिया—"हाय राम किस मास्टरनी से पाला पड गया! वाकई मेरा व्याकरण तो जीरो से भी नीचे निकला।"

"इसमे व्याकरण की तो कोई बात ही नही है और न मेरे मास्टरनी होने से कोई अंतर पड़ता है। लोग 'आज' 'आज' चिल्लाते भर हैं अगर 'आज' इतना ही महत्त्वपूर्ण होता तो आज का अखबार कल को रद्दी न बनता उसे आप बीतने न देते। दूर क्यों जाते हैं, क्या सारी पुरानी कहानिया जो आज भी पढ़ी जा रही है 'एक था राजा' या 'वस अपान ए टाइम' से शुरू नहीं होतीं?"

"अच्छा देवी जी मैं तो फेल कर गया। मै तो वही बात फिर पूछता हूं कि तुम हंसी किस बात पर थी?"

उर्मिला हसी—"'फेल कर गया नही फेल हो गया' ही शुद्ध है।"

" 'शुद्ध' को मारो गोली वह हंसने वाली बात बताओ।"

"अब मुझे याद नही कि मै क्यो हसी थी। फिर मैने कह तो दिया कि बिना बात ही हंसी आ गई थी।"

मैने कहा—"नही, वह तुम्हारी बहुत कूट हंसी थी। ऐसी हसी आत्म-विनोद से ही पैदा हो सकती है।"

"अरे! अच्छा वो हसी।"

"जी हा वही जिससे सारा हसी पुराण खगोला जा रहा है।"

"कोई खास बात नहीं थी। मुझे बस इस बात पर हसी आ गई थी कि आपके सामने एक-से-एक बडी दार्शनिक बात बोले जा रही थी बतज छोटा मुंह बड़ी बात और आप मुझ मूर्खा से सहमत होते चले जा रहे थे। बस यही सोचकर मै अनायास हंस पड़ी थी।"

सामने से जोखन को आते देखकर मै बोला— 'लो जोखन तुम्हारे लिए नीबू की शिकजी बनाकर ला रहा है। उसे पीकर तन-मन से शीतल हो जाओ और फिर सोचो कि आज शाम का क्या कार्यक्रम बनाया जाय।"

जोखन ने कमरे मे आकर ट्रे स्टूल पर रखते हुए पूछा—"भैया जी सजा कू का खाओगे आप लोग? सब्जी-दार खाओगे के पराठे बनाय दऊ।"

मैने उर्मिला की ओर देखते हुए कहा—"जो तुम्हारी मेहमान कहे वही खाना बनाओ।"

"मेरी बात छोडिए, जो आपको रुचे वही बनवाइए। मैं तो शाम को अब कुछ खाऊगी नही। हलवा पकौड़ी खाकर पेट इस कदर भर गया है कि रात को कुछ भी खाने की गुजाइश ही बाकी नहीं रह गई है।"

मैं बोला—"मुझे मालूम है कि तुम पडित जी के वियोग में भूखे रहना चाहती हो। लेकिन यह भी तो सोचो अगर रात को दिल्ली मे ठहरने का उनका मन ही न हुआ और वह लौट आए तो क्या अपने साथ उन्हें भी भूखा नही मारोगी?"

जोखन ट्रे रखकर वापस चला गया तो मैने शिकंजी का गिलास उठाकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"अभी तो शाम ढग से हुई भी नहीं है। अभी से यह तय मत करो कि खाना नहीं खाना है। हम लोग फिल्म देखने चल रहे है। वहा से लौटते-लौटते साढे नौ तो बज ही जाएगे, तब तक हो सकता है पडित जी भी लौट आए।"

"आप अंग्रेजी फिल्म देखने की बात कह रहे थे पर कहीं ऐसा न हो कि मै वहा जाकर बुद्धू ही बनूं।"

"छोड़ो तो अंग्रेजी फिल्म। बासु भट्टाचार्य की निर्देशित एक फिल्म 'आविष्कार' भी किसी पिक्चर हाउस में लगी है। वही देख लेगे। यह आदमी अपनी फिल्मो मे हमशा गंभीर विषय और समस्या उठाता है। जहीन डाइरेक्टर है।"

"पर गभीर फिल्म देखने से क्या लाभ? जिदगी मे न जाने कितना रोना बिसूरना फैला पड़ा है चारों ओर। यदि फिल्म में जाकर भी वही सब देखना-सुनना

हा तो तीन-चार घंटे गारत करने से क्या उपलब्ध होगा?"

"अव इस मुल्क मे कोई चार्ली चैप्लिन तो है नहीं जो गंभीर से गभीर वात को भी हास्य व्यग्य का जामा पहनाकर कोई बड़ी वात कह जाए।"

उसने भोलेपन से पूछा—"हमारे देश मे अच्छे हास्य व्यग्य की इतनी कमी क्यो है? आप लेखक लोग इस तरफ ध्यान क्यो नही देते। जवकि इस देश मे हर कदम पर इतनी विसगतियां और विद्रूप खडे मिलते है कि हास्यास्पद स्थितियो पर खूव जमकर लिखा जाना चाहिए।"

मैने उर्मिला की बात पर गभीरता से सोचते हुए कहा—"दरअसल हम भारतीय जबरदस्त पाखडों मे जीते है। व्यंग्य की स्थिति तो यह है कि यह सारा समाज ही कार्टून बना हुआ है और हास्य का मामला इस सीमा तक हास्यास्पद है कि उसकी दुनिया में कोई दूसरी मिसाल नही मिल सकती। जो समाज खुलकर एक चेहरे को नही अपना सकता—हर क्षण गिरगिट की तरह रंग बदलता है—उसको क्या कहा जाए। अब तुम यही देखो कि एक युवती प्यार किसी को करती है और विवाह किसी और से करती है। युवक प्यार की पींग किसी के साथ वढाता है और दुनियावी सुख-सुविधाओं तथा केरियर के लिए शादी किसी अन्य के साथ रचाता है। ऐसी स्थिति मे न कोई अपने प्रति ईमानदार रह पाता है न दूसरे के प्रति। यूरोप मे लाख बुराइया सही लेकिन कम से कम यह ढकोसला तो नही है।"

उर्मिला मुह बिचकाकर बोली—"बस यूरोप की बात तो आप रहने ही दो। वहा तो हर रोज लिबास बदलने की तरह तलाक हो रहे है। मिया वीमार होकर अस्पताल में पडा है और पत्नी किसी और की बाहो मे बेहोश पडी है। वह इसी आशका को लेकर पति को तलाक दे देती है कि उसे जो वीमारी है उसकी छूत से उसका स्वय का जीवन जोखिम मे पड सकता है। क्या इस तरह की जीवन शैली आप यहां लागू होते देखना चाहते है?"

"नही। मै उस तरह की जीवन पद्धति का तो हामी नही हू मगर साथ ही मै इस तरह के आचरण को भी स्पृहणीय नहीं मानता कि पति या पत्नी एक-दूसरे को एक क्षण के लिए भी सहन कर पाने की स्थिति मे न हो तव भी जीवन पर्यत एक दूसरे को ढोते चले जाए। इसमे मुझे कोई बडा मूल्य अथवा त्याग या साधना दिखलाइ नही पडती।"

उर्मिला दर्द से वोली—"इसमे फिर भी एक मूल्य तो है।"

मैंने व्यग्य से हसकर पूछा—"वह कौन-सा महान मूल्य है—जरा मै भी तो सुनू!"

"इसमे स्वय को मारते चले जाने का मूल्य निहित है। केवल भोग ही तो जीवन नही है—उसके लिए कुछ देना भी तो होना चाहिए। जो हमारा देय है उसे बचाकर रखना क्या बेइमानी नही है?"

"स्वयं को किसी अपदार्थ के लिए काट काटकर छोटा होते चला जाने से कौन-सी महानता है, मै समझ नही पाता।"

"आप इसे कैसे समझेगे? आपको कोई कभी किसी विवशता वश छोडकर चला गया, बस आप उसी को लेकर शहीद होने का गौरव ढोते चले जा रहे है और स्वय को निर्दोष होने की अहम्मन्यता में सर्वथा निर्दोष होने की अनुभूति में अपने कद को उठाते चले जा रहे हैं। कभी आपने सोचा है—जब आप स्वय को दोष-मुक्त समझकर सान्त्वना देते हैं और सुख की नीद सो जाते है तो कोई एक आपके प्रति स्वय को अपराधी समझते हुए जागते-जागते आंखो ही आंखो में पता नहीं कहा पूरी रात काट दती है। बिल्कुल उसी तरह जैसे कोई दुखिया मां अपने बीमार बच्चे को गोद मे थपकिया देते दुलराते रात काट देती है।"

मुझसे उर्मिला के दाहक और दारुण उद्‌गार सहे नही गए। मै एक विचित्र आवेश में कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया और अवश होकर कमरे मे इधर-उधर घूमने लगा। मुझे उस क्षण लगा मै एकदम मूर्ख-अनाड़ी और अबोध हूं। मै जो सोचता समझता और लिखता हूं उसका कोई भी अर्थ और आशय नहीं है। एक बहुत ही छोटी उम्र की लडकी मेरी सोच पर एक बहुत बड़ा और गभीर सवालिया निशान लगा रही है।

मैने अनजाने में ही उर्मिला के सामने खडे होकर उसकी गहरी आंखों मे कुछ पढने की कोशिश की और आगे बढकर आवेश में उसके दोनों हाथों को अपनी हथेलियां में कस लिया।

उर्मिला ने अत्यत शाति और उद्वेगहीन स्थिति में मेरी ओर देखा और अपनी हथेलियों को मेरे करपाश में कसे देखकर उसने कोई कसमसाहट व्यक्त नही की। कुछ क्षण यो ही बीत जाने पर वह बोली—"लगता है हम दोनों को अलग-अलग समय पर एक-दूसरे की बेहद जरूरत है।"

"क्योंकि हम दोनो जब बिखर उठते है तो स्वयं को संभालने मे असमर्थ होते है और शायद तब हम स्वय भी नही जान पाते कि हम सारी सामर्थ्य और संकल्प के बावजूद कुछ भी नही बचते। एक मिर्गी के मरीज की तरह धडाम से गिरकर कही भी और कभी भी, अप्रसन्न हो जाते हैं।"

मैंने अपने को निरस्त करते हुए उर्मिला से पूछा—"क्या इस दुनिया मे सभी

ऐसे नही होते है।

उसने मेरी कसी मुट्ठियो में से अपनी हथेलियो को मुक्त करने की कामना दर्शाते हुए कहा—"पता नही! मै जब अपने बारे मे ही कुछ नही जानती तो औरो के विषय मे क्या बता सकती हू?"

"अपने बारे मे तो कोई भी नहीं जानता। कुछ है जो निरंतर अपना आविष्कार करते चले जाते है और दुर्बलता को निर्ममता से निरस्त करते चलते है—अधिकाश को तो यह पता ही नही होता है वह क्यो है और क्या है।"

उर्मिला बोली—"दूसरे शब्दों में कहना चाहिए कि थोडे से ही ऐसे मनुष्य होते है जो 'ग्रो' करते है जिनका निरतर विकास होता चलता है बाकी तो एक बंधी-बंधाई लीक पर ढर्रे की जिदगी जीते चले जाते हैं।"

"इसीलिए तो यह दुनिया बहुत ठंडी ठहरी हुई और ऊबाऊ लगने लगती है अक्सर नई सोच, नया विचार और उससे सृजित होने वाला सौदर्य तथा काव्य कुछ क्षण मात्र के लिए ही यदा-कदा दीख पडता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हम लोगो से जब भी मिलते है या बातें करते है तो यह नहीं लगता कि उन्होंने कोई नया विचार या कल्पना अथवा सोच दिया है। बस यही लगता है, उन्होने वही सब कुछ कहा है जो बहुत बार इधर-उधर दोहराया जा चुका है। या वह जब पहले मिले थे तो लगभग वही कुछ कहा सुना था जो दूसरी-तीसरी या कई मुलाकातो मे कहते हे। प्रायः मुलाकातें मन को तृप्ति या सतोष नही देती—उनसे कोई ताजगी नही मिलती बस बातो के नाम पर सतही किस्म की सूचनाए मिलती हैं।"

उर्मिला बोली—"लोग तो सब कहीं एक जैसे ही है, थोडे-बहुत अंतर से। वही ढर्रे की जिदगी है उसमें नया क्या होगा। हम मनुष्य तो गंदगी ही उत्पन्न कर सकते हे। भोग का परिणाम कूडा-कचरा बनकर ही तो सामने आता है। जितना अधिक भोग उतनी ही अधिक मलिनता। इस अर्थ मे तो पशु-पक्षी मनुष्यों से अधिक स्वच्छ है—कम से कम प्रदूषण तो नही फैलाते। हम तो तन-मन सबसे ही कदर्य हैं।"

"तुम्हारी बात के पक्ष में कितनी ही बातें हैं। पहली तो यही कि हमारी भारतीय सस्कृति में उपभोग को उपयोगिता से अलग करके नहीं देखा जाता। जो उपयोगी न बन सके। उसका भोग व्यर्थता का सूचक है। लोग कम से कम वस्तुओ से काम चलाकर द्वद्वहीन जीवन जीने के आकाक्षी होते थे। हम कालांतर में इस बात को विस्मृत कर बैठे। यही कारण है कि आज हम तरह-तरह के सघर्षो और महाभारत मे फंसे हुए हैं। तन रोगी और मन अशांत है। वास्तविक कारण तो समझने का प्रयास नही करते। कभी धर्म की शरण मे जाते है तो कभी तरह-तरह के पाखंडियो

का पल्ला-पकड़ते हैं। इससे क्या होने वाला है। बढ़ते हुए भोग से यह व्याधियां अभी तो और बढ़ेंगी।"

मै कई मिनट तक उर्मिला की गहरी मनस्विता पर विचार करता रहा। उसके चेहरे मोहरे पर अभी तक कच्चापन शेष था पर उसके विचारों में गहरे मनोमंथन की लाक्षणिकता थी।

मै मुस्कराकर बोला—"तुम्हारे विचारो के अनुसार तो पंडित मुकुंद माधव भोग और उपयोगिता मे सामजस्य रखने वाले सर्वोपरि उदाहरण हैं।"

"भोग और निषेध में अतर है। निषेध कई बार कोई मूल्य बनने के बजाय पाखंड में भी बदल जाता है। हम कम खाते है, कम बोलते हैं, कम लेते हैं। यह एक सहज और स्पृहणीय बात है मगर हमे इस पर गर्व करके दूसरों को—जो ऐसा नहीं कर पाते—उन्हें तुच्छ मानने का तो कोई कारण नहीं बनता। यदि मै ईमानदार, निष्ठावान संकल्पशील हू तो यह किसी दूसरे का लाभ बाद में होगा—मेरा लाभ ही सर्वप्रथम है। अच्छा होना स्वय के लिए सर्वाधिक मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है। हम अपने अच्छे होने को दूसरो के सिर पर लादने लगते हैं तो वह कोई धनात्मक मूल्य नहीं रह जाता।"

भोग और उपयोगिता को लेकर संदर्भ चाहे उर्मिला के पति पडित मुकुंद माधव का ही था पर वह जो बातें कह रही थी उसमें व्यक्तिगत राग-द्वेष कितना था, इसका मै अनुमान उस समय नहीं लगा सकता था। पता नहीं वह एक सामान्य बात कह रही या कि केंद्र में मुकुंद माधव ही लक्ष्य थे।

दीवार घडी पर मेरी निगाह गई तो मै बोला—"तुम्हारे मुंह से इतनी सारगर्भित बातें निकल रही थीं कि मै तो देश-काल, समय सभी कुछ भूल गया। साढे पांच से ऊपर हो रहा है। चलो, जल्दी-जल्दी कपडे बदलो—फिल्म देखने चलना है। पंडित जी आ गए होते तो उन्हें भी साथ ले चलते।"

"क्या वाकई आपने पक्का इरादा बना लिया है कि आज फिल्म जरूर से देखनी है।"

"तुम्हारे साथ जाने का लोभ है, वैसे तो कहां फिल्म देखने का मौका मिलता है!"

"मेरे साथ की ही बात है तो फिर चली चलती हूं। वहा फिल्म देखने के लिए कोई साथ नहीं दे सकता इसलिए फिल्मे देखने का मन ही मर गया है एक तरह से।"

"मर मर गए शरीर' की बात तो मै सुनता आया हूं 'आशा-तृष्णा', तो मन की ही वृत्तियां है—इनके मरने की बात तो वैरागियों संन्यासियो ने भी नहीं कही।

कई बार हमें बस ऐसा लगता ही है कि मन मर गया है पर वास्तव मे मर जाने के बावजूद पूर्ण जीवित बना रहता है। कवि ने इस प्रसग मे एक बडी पते की बात कही है .

कभी न मिलने की कहकर
आया मेरी कायरता थी
फिर-फिर छलना ने ढूंढे
नये-नये सगी साथी

"आप कविता मे अपनी बात कहते है—स्वय को छिपाए रखने के लिए। किसी और के काज से अपनी बाते कहना कवियो लेखकों के लिए ही सभव है। हम साधारण लोग तो यह सब कुछ नहीं जानते। जब जो जैसा लगता है उसी को उल्टा-सीधा कह डालते है।" जरा देर ठहरकर उसने घडी पर नजर डालकर कहा—"अगर वास्तव में फिल्म देखने की बात है तो आप जल्दी से तैयार हो जाइए अन्यथा फिल्म नही मिल पाएगी।"

मुझे तो तीन मिनट लगते है, कुरता-पायजामा बदलने मे। हां, आपको साड़ी-वाडी बदलने में समय लग सकता है।"

उसने मेरी ओर निगाह डालकर पूछा—"जो साडी पहने हूं उसी को पहने चलू तो क्या हर्ज है? यहा मुझे कौन जानता है? आज सुबह ही तो पहनी है। बस हाथ-मुह धो लेती हू।"

"साड़ी तो आपकी अच्छी-भली है पर हाथ मुह धो लेने के बाद भी ऐसी ही बनी रहे तब बात है।"

"कौन सिंगार पटार करना है—बस नाम भर को दो चुल्लू पानी चेहरे पर छिड़कना है।"

"चलो तो फिर मुंह चुपड़कर क्रीम, पावडर-वावडर लगाओ मै कुरता बदलकर आता हूं।"

उर्मिला वाशबेसिन के सामने जाकर खडी हो गई तो मैं भी कपडे बदलने चला गया।

उर्मिला मुझसे पहले ही तैयार हो गई। मैंने देखा उसने क्रीम, पावडर होठो पर लाली वगैरह कुछ नही लगाया था बस कधे से अपने बालों को संवारकर उन्हें एक रिबन से बाध लिया था। उसके मुख पर सहजता का उल्लास था जो उसे विशेष आकर्षण प्रदान कर रहा था।

जब हम दोनो घर से बाहर निकलने लगे तो जोखन दौडता-सा आया और

पूछन लगा-- रात कू का खानो बनानो है

उर्मिला बोली—"जोखन भैया जो जी मे आवे बना लेना। ज्यादा चक्कर मे मत पडना। चाहो तो मूंग की दाल की खिचड़ी ही बना लेना। बहुत खटराग मत फैलाना।"

जोखन लौट गया तो हम दोनो आगे बढे। गली का मोड़ पार करते ही रिक्शा मिल गया तो मैंने पूछा—"बोलो कहा चलना है?"

"कहीं भी। जो भी हाल पास हो, उसी मे देख लेते है। मेरे लिए तो सारी पिक्चरें एक समान है। बाकी आपका मन है।"

मैने कहा—"तो फिर 'आविष्कार' ही देख लीजिए। हाल भी ज्यादा दूर नही है। सबसे अच्छी बात यह है कि अभी नया बना है—सीटें ज्यादा टूटी नही है और आवाज भी ठीक सुनाई पडती है। बाकी हालो का बुरा हाल है—किसी का फर्नीचर माशाअल्लाह है तो किसी की आवाज चौपट है। अब पात्रो के मुंह से निकला डायलाग ही पल्ले न पडे तो सिवाय चलती-फिरती तस्वीरों के मुह देखने के अलावा और क्या हासिल?"

"ठीक है, वहीं चलिए।" कहकर उसने मुझे रिक्शे मे बैठने का संकेत किया।

रिक्शे पर बैठते हुए मैं बोला—"अब इसमे 'पहले आप' कहने की क्या औपचारिकता निभाऊ।"

वह मेरी बगल मे बैठते हुए बोली—"यहां के रिक्शे बहुत छोटे हैं।"

"रिस्का तो बैसा छोटो ना हतै, न्यौई लग रयो है आपकू" कहते हुए रिक्शा चालक ने होठो में अटकी बीडी एक ओर फेंक दी और पैडिल पर पाव रखकर रिक्शा मोडने लगा।

6

'आविष्कार' फिल्म मे ज्यादा भीड-भाड नही थी। बालकोनी की अधिकाश सीटे तो खाली ही पडी थी। मै और उर्मिला पीछे की ओर बैठे। हमसे थोडा हटकर एक जोडा, मेरा खयाल है पति-पत्नी ही होगे बैठा था।

फिल्म का नायक और नायिका यों तो एक-दूसरे को भीतर ही भीतर बहुत चाहते हैं और परस्पर एक-दूसरे का खूब आदर भी करते है पर दोनो के बीच प्यार की ऊष्मा खुलकर उजागर नही होती और उनके सबधो मे दरार न सही पर ठडेपन का तो जैसे कोई अत ही नही है। किसी तीसरे की उपस्थिति ही उन्हें सवाद के स्तर पर जोड पाती है।

फिल्म बहुत बारीक और गहरी स्थितियो से भरपूर थी। उर्मिला बहुत ध्यान से फिल्म देख रही थी कि तभी हमसे थोडा दूर बैठे आदमी ने अपनी पत्नी से कहा—"ऐसी फिल्म देखनी हो तो साथ मे एक तकिया भी लेकर आना चाहिए, जिससे कि सिर के नीचे लगाकर मजे से दो घटे सो भी लिया जाय।"

उर्मिला ने उधर आंखें फेरकर उस भद्र दिखाई पडने वाले सज्जन को देखा और फिर मेरी ओर देखकर मुस्करा दी।

फिल्म देखकर हम हाल से बाहर निकले तो मैंने उर्मिला से कहा—"यहां पास मे बहुत अच्छी आइसक्रीम मिलती है। चलो आइसक्रीम खाने चलें।"

"आइस तो फिल्म में ही बहुत खा ली। क्या अब भी बर्फ की जरूरत बाकी रह गई है?"

मैंने कहा—"हा वो तो है।" फिर कुछ कदम चलकर मैने पूछा—"क्या तुम्हे फिल्म ने बोर किया?"

"बोर करने की तो उसमे गुंजाइश ही नही थी। मैंने तो पूरी फिल्म इस तरह

से दखी जैसे कोई उपन्यास पढ़ रही हाऊ।"

"तो चलो फिर मुझे संतोष है कि मैंने तुम्हारा इतना समय फालतू मे बर्बाद नहीं किया।"

"मेरा समय तो व्यर्थ नही हुआ पर हमारे पडोसी दर्शको को तो फिल्म ने बहुत निराश किया।"

"जाहिर है लोग फिल्म मनोरजन की दृष्टि से देखने आते है—सबंधो की बारीकी और उनके पीछे की गहरी उलझनो से उन्हे क्या हासिल? फिर खाते-पीते सद्गृहस्थो के जीवन मे इस तरह की दरारे कहा होती हैं? वह तो ढर्रेवाली एक स्थूल जिदगी ही जीते हैं। देह के स्तर पर जीनेवाले लाखों करोडों लोगों के सामने खाने, कमाने और घर-गृहस्थी चलाने की ही चिताए कम नहीं होतीं कि वह सूक्ष्म स्थितियो मे गहरे उतरने की सिरमारी करते रहे।"

उर्मिला बोली—"तब भी जो कुछ फिल्म मे प्रदर्शित किया गया था, एक बडा सच तो था ही।"

मैं हंसते हुए बोला—"बडे सच का आविष्कार करते हुए हम सिनेमा हाल से काफी आगे बढ आए हैं—क्या घर तक पैदल प्यादे ही चलना है?"

"क्या हर्ज है? अब तो वैसे भी रात हो गई है। थोडी दूर तो है ही, यो ही घूमते-घामते पंद्रह बीस मिनट में पहुंच जाएगे।"

"यही सही" कहकर हम सड़क के किनारे हो लिए।

उर्मिला ने चलते-चलते पूछा—"आपको इस तरह पैदल चलते हुए थकान तो नही होगी?"

उसके प्रश्न पर में ठठाकर हस पडा और बोला—"थकान और वह भी पैदल चलते हुए? मैं तो मीलों पांव प्यादे घूमता रहता हू। शहर के सारे रिक्शे वाले मेरे इस स्वभाव से परिचित हैं। उनमे से ही कभी कोई यह सोचकर कि शायद मै चलते-चलते घिस न जाऊं दया करके मेरे नजदीक आकर रिक्शा रोक लेता है और कह देता है—'आओ बाबू जी आपको पहुचा दूं।' बस उसकी अवमानना या इनकार मुझसे नहीं हो पाता। चुपचाप उसके रिक्शे पर बैठ जाता हूं।"

मेरी बात सुनकर उर्मिला भी हंस दी और बोली—"क्या रिक्शे वालों से भाडा तय नहीं करते?"

"नहीं तो—क्यों?"

"वैसे ही पूछ लिया। क्योकि मैंने अक्सर यही देखा है कि ज्यादातर लोग तो रिक्शा चालकों को अठन्नी कम किराया देने के लिए देर तक मगजमारी करते चले

जाते हैं। यह बात अलग है कि उस रिक्शेवाले की अठन्नी बचाकर उन्हे बचत का भारी सतोष मिलता है फिर चाहे डॉक्टर के क्लीनिक पर पहुचकर पता लगे कि उसने अपनी फीस बीस रुपया बढा दी है। वहा वह चूं तक नही कर सकते। डॉक्टर जो भी मागे बटुए से निकालकर चुपचाप दे देते है।''

''इसकी वजह बहुत साफ है। हमारे यहा श्रम की महत्ता नही है। श्रम करने वाले का हम आदर करना नही जानते। उसे छोटा और अत्यंत दीन-हीन मामूली आदमी खयाल करते हैं। हमारे यहां जो आदमी जितना कम काम करके अधिक धन कमाता है। वह हमारी श्रद्धा का पात्र है। यूनिवर्सिटी में जो प्रोफेसर सप्ताह में सिर्फ पाच दिन अध्यापन करता है उसे इतनी मोटी तनखा मिलती है कि वह कार रख सकता है—बंगला अफोर्ड कर सकता है, मगर प्राइमरी स्कूल का मास्टर जो सुबह से शाम तक बच्चों से मगजमारी करता है उसे इतनी भी पगार मयस्सर नहीं है कि वह अपने बच्चों को मामूली खाना और कपडा भी मुहैया कर सके।''

उर्मिला ने वडे भोलेपन से पूछा—''मगर यह शोषण कब खत्म होगा?''

''जब तक हम गुलाम रहेगे, तब तक यह अन्याय कैसे समाप्त हो सकता है?''

उसने अपना चेहरा मेरी ओर उठाकर हैरत से देखा और बोली—''गुलाम रहेगे? इतने वर्षो की आजादी के बाद भी अभी तक आप देश को गुलाम कहते हैं।''

''मै देश की नही देशवासियो की बात कह रहा हूं। देश तो एक भौगोलिक सीमाओं की सच्चाई होता है, उसे क्या करना है? पृथ्वी, आकाश वनस्पति नदिया-पहाड़ समुद्र पशु-पक्षी ही तो देश नही हो जाता। देश तो मनुष्यो से बनता है। विदेशी शासन समाप्त हो गया पर क्या आज भी सारा कारोबार उसी पुरानी शैली मे नहीं चल रहा है? वही कानून है, वही प्रशासन है, वही पद गरिमा, घमड और अलकरण है। खाना-लिबास भाषा भी हम नहीं बदल पाए। जब तक यह नही बदल जाता हमारा अपना मौलिक क्या प्रतिष्ठापित हो पाएगा। पहले की अपेक्षा हम विदेशी दासत्व को और भी अधिक मजबूत बनाते जा रहे हैं और दुःख तो इस बात का है कि हम उच्छिष्ट को लेकर फूले नही समाते वल्कि गौरवान्वित अनुभव करते है।''

बातें करते करते जब हम गली के मोड़ पर आ गए तो उर्मिला बोली—''बातो मे रास्ते का कुछ भी पता नहीं चला।''

मैं हसकर बोला—''अपने लिए नहीं तुम्हारे लिए ही कह रहा हू कि जब साथ चलने वाला तुम्हारे जैसा हो तो लबा रास्ता भी आसान हो जाता है।''

''धन्यवाद। कोई तो यह कहने वाला मिला। मैने तो यह सुनने की आशा

ही फ़िक्र को छोड़ दी थी।

"इतनी जल्दी आशा छोड़ने का स्वभाव अच्छा नहीं है। स्थितियों में परिवर्तन तो युग धर्म है। कभी भी कोई स्थिति यथावत् रह नहीं सकती। समय को यथास्थिति स्वीकार नहीं है—कदम आगे बढ़ेगा या पीछे हटेगा पर समय का पहिया निरंतर अग्रगामी ही होगा।"

उर्मिला बोली—"इतिहास स्वयं को दोहराता है—कहा तो यही जाता है।"

"इससे भी समय को क्या अंतर पड़ता है? भिन्न स्थितियों में इतिहास भले ही दोहराया जाए पर उसकी परिणति और परिणाम वही नहीं होगा। नायक और उनकी भूमिकाएं बदल जाएंगी। पूंजीवाद का क्या आज वही पुराना स्वरूप और स्वभाव है? आज साम्राज्यवादी पूंजीवाद का चरित्र देखो, अपने पुराने चरित्र से वह कितना अलग है। उनकी नृशंसता और क्रूरता काफी कुछ बदली हुई है। पुराना पूंजीवाद कला और संगीत को क्या उसी तरह बाजारू बना पाया था जैसा कि आज के पूंजीवाद ने बना डाला है। स्त्री की कोमलता और सुंदरता को क्या उसी तरह बाजार में नहीं बेचा जा रहा है जैसे साबुन, तेल और फिनायल को। आज सारी चेतनता को वस्तुओं में बदलकर उस पर ब्रांड का लेबिल लगा हुआ है। क्या कुछ ऐसा बाकी बच गया है जिसे बाजार न दे दिया गया हो या अगले दिनों में नहीं दे दिया जाएगा।"

"स्थिति काफी संकट पूर्ण है" कहते हुए उर्मिला ने दरवाजे पर दस्तक दी।

मैं यह देखकर चकित रह गया कि किवाड़ जोखन ने नहीं बल्कि पंडित मुकुंद माधव ने खोले। मेरे मुंह से निकला—"अरे पंडित जी आप? कितनी देर हो गई आए हुए?"

उर्मिला द्वार खुलते ही सहन पार करके कमरे में चली गई थी।

मैं मुकुंद माधव जी के साथ बातें करते हुए सहन में आ गया। जोखन ने वहां दो मूढ़े और कुर्सियां रख दी थीं। मैं और वह मूढ़ों पर बैठ गए तो उन्होंने कहना शुरू किया—"किताबों की दुकानों और अमेरिकन लाइब्रेरी का चक्कर तो लगा आया। यूनिवर्सिटी जाकर पता लगा कि सेमिनार तो अगस्त के लिए स्थगित हो गई है। उन्होंने मुझे जो सूचना भेजी थी हमारे चलने तक नहीं मिल पाई इसलिए अब तो दिल्ली जाना व्यर्थ ही है। कल यहीं से वापस लौट जाएंगे। इतने बुरे मौसम में घर से बाहर निकलकर मुझे तो पछतावा ही हो रहा है।"

मैंने उन्हें तसल्ली देने के खयाल से कहा—"अरे पंडित जी ऐसी भी क्या बात है कि जो आप इतने उखड़ गए। कल आप कैसे लौट जाएंगे? कल आए और कल

चल जाएंगे भला ऐसा भी कभी होता है। दो-चार रोज तो कम से कम यहा रहिए ही। अभी तो आपसे हमारी कोई बातचीत भी ढग से नही हो पाई। आप जैसे प्रकाड विद्वान् का हमको ससर्ग लाभ न मिले, यह कैसे हो सकता है। फिर अभी तो आप दोना के ही कॉलिज बद हैं—घर मे भी, आप लोगो की अनुपस्थिति मे कोई सकट अनुभव करने वाला वहां नही है।''

''हा यह तो ठीक है कि वहा कोई हमारी अनुपस्थिति अनुभव करने वाला नही है पर मै सोचता हू आप पर अनावश्यक भार क्यो डाला जाए। आप भी लिखने-पढने का काम करते है—वही आपकी आजीविका भी है। हम लोगो के यहां बने रहने पर आपके पठन-पाठन लेखन मे व्याघात ही होगा।''

मै बोला—''आप ऐसा क्यो सोचते है? क्या मैं हर समय लिखता-पढता हू! लिखने का काम कोई यान्त्रिक ढग का तो है नही। मन होता है तो कई-कई दिन लिखना जारी रहता है—नहीं तो हफ्तो निकल जाते हैं। मैं एक शब्द भी नही लिखता। मेरा अनुरोध है कि आप अभी कुछ दिनो तक यहां ठहरे। कल सुबह हम लोग दिल्ली चलेंगे। कुछ दर्शनीय स्थानो पर घूम-फिर कर सैर-सपाटा करेंगे और कल रात तक घर लौट आएंगे। आप उर्मिला जी को साथ लेकर आए है, क्या उन्हें दिल्ली घुमाना पसद नहीं करेंगे? वह तो हमेशा आपके साथ आ नही पाती होंगी। इतनी दूर की यात्रा का कष्ट झेलकर भी यों ही दिल्ली घूमे बगैर चले जाना चाहते है?''

पडित मुकुद माधव कुछ देर तक चुप्पी साधे बैठे रहे। शायद वह मेरे अनुरोध पर विचार कर रहे थे।

तभी जोखन बाहर से आया। उसके हाथ मे एक बडा कटोरा था। मैंने पूछा—''जोखन तुम कहा चले गए थे?''

''अजी कऊं खास ना गयो हतो। नेक दई (दही) लेन चले गयो थो। मैने आप लोगन के लैंया खिचरी बनाय दई हैं—सूखे आलू भून दये है—। पापर-अचार सबको इतजाम पैले ई कहुओ है। बस अब आप सब खावे कू बैठो—अबेर है रई हैगी।''

मैंने पडित मुकुंद माधव से कहा—''उठिए पंडित जी, आज तो आपको खाने के नाम पर खिचड़ी ही मिलेगी।''

जोखन अभो हम लोगों के पास ही खडा था। वह बोला—''पडित जी महाराज कू खिचरी ना भाती होय तो इनके लैया मैं परामठे सेक दऊं, का देर लगेगी?''

पडित जी मूढे से उठते हुए बोले—''नहीं भाई, जो तुमने बनाया है वही ठीक है। और ज्यादा कष्ट उठाने की आवश्यकता नही है।'' फिर वह जरा दूर चलकर थम गए और उन्होने मुझसे पूछा—''आपकी आज्ञा हो तो मैं सिर पर दो लोटे पानी

डाल लू। दिल्ली मे इधर-उधर टक्करे मारते हुए गर्मी और पसीने से बुरा हाल हो गया है।"

मै हस पडा—"दो लोटे ही क्यो, आप दो बाल्टी पानी से इत्मीनान से स्नान कीजिए।"

पडित जी कमरे से अपने कपडे लेने चले गए तो मै भी अपने कमरे की ओर बढ़ गया।

जब मै लौटा तो मैंने देखा, उर्मिला सहन मे चुपचाप बैठी थी।

मैं बोला—"अरे आप इतनी सुस्त क्यो बैठी है। लगता है पिक्चर देखकर थक गई है।"

"थकने वकने की तो कोई बात ही नही है।"

उर्मिला ने अपने पति के संबंध में कोई उत्सुकता व्यक्त नहीं की। उसने यह भी नहीं जानना चाहा कि उनकी आज रात जो दिल्ली मे ठहरने की संभावना थी उसका क्या हुआ। वह जिस काम से गए थे उसमें उन्हें क्या सफलता मिली।

मैंने ही बात शुरू की—"आपको पता है कि पडित जी बजाय कल के आज ही क्यों वापस आ गए?"

उसने कहा—"उनका काम निपट गया होगा तो वापस लौट आए इसमे मेरे जानने की क्या खास बात है!"

मैंने उसके शब्दो से असम्पृक्ति की जो ध्वनि निकलते अनुभव की उससे मुझे लगा, उसे अपने पति के किसी भी क्रिया-कलाप में कोई दिलचस्पी नही है। वह उसमे किसी प्रकार की रुचि नहीं रखती।

मैंने स्वयं ही उसे बतलाया कि सेमिनार स्थगित हो गई है और वह कल ही वापस लौटने की बात कह रहे है।

उर्मिला उदास स्वर में बोली—"तो फिर और करना भी क्या है? कल सुबह निकल जाएंगे।" एक क्षण ठहरकर उसने पूछा—"क्या हम लोगों को इधर से कोई ट्रेन मिल जाएगी?"

"दिल्ली से जो ट्रेने चलती है उनमें से कुछ इधर होकर भी जाती है—वैसे ज्यादा गाडिया मथुरा की तरफ से निकलती हैं।"

"तो फिर हम लोग दिल्ली से ही गाड़ी पकड़ लेंगे।"

"भई वाह, दिल्ली से गाडी क्यों पकड़ोगी? जब इधर से होकर गाडी जाती है तो उल्टे बास बरेली को क्यो?"

वह अनासक्त भाव से बोली—"यहां से जाओ, दिल्ली से जाओ, है तो एक

ही बात

"नहीं, एक बात नहीं है। फिर तुम कल कैसे जा सकती हो? अभी तो तुम दिल्ली तक पहुची भी नहीं हो। मैने पंडित जी से कहा है कि कल नहीं जाना हे। हम सव कल सुबह हल्का नाश्ता करके यहां से निकल चलेंगे और दिल्ली मे इधर-उधर थोड़ा घूमे-फिरेगे। एक दो जगह जहां बाहर से आने वाले सभी पर्यटक जाते हैं, वहा चलेंगे और रात तक वापस लौट आएगे।"

मैने देखा कि मेरी बात से उर्मिला की उदासी किसी कदर खडिन हुई और वह मेरी ओर देखकर बोली—"आपकी बात वह मान लेंगे?"

"न मानने का क्या सवाल है? वल्कि मै तो यह भी चाहता हू कि हम सब लोग हरिद्वार-ऋषिकेश होते हुए एक-दो दिन के लिए मसूरी भो चले। यही तो सीजन हे उधर जाने का।"

उर्मिला मुंह बिचकाकर वोली—"अजी राम का नाम लो। वह और मसूरी? कहोगे भी तो वह अपने सतपुड़ा विध्याचल से अच्छा किस पहाड को मानेंगे।"

"विंध्याचल-सतपुडा और नर्मदा नदी इनकी किसी से क्या तुलना मगर शिवालिक रैंज का भी अपना एक अनूठा आकर्षण है।" फिर मै हसकर बोला—"तुलसीदास ने तो 'विध्य के वासी उदासी महा बिन नारी दुखारे, कहकर विध्याचल को बहुत नीरस करार दे दिया है।"

"उनको विंध्याचल मे कोई नारी नही मिली होगी दिलजोई करने के लिए।"

मैं उर्मिला की बात पर कोई परिहास पूर्ण टिप्पणी करता इससे पहले ही पडित जी धोती और खद्दर की गजी पहने हम दोनों की ओर आते दिखाई पडे।

मैने कहा—"आपने स्नान करते हुए तो बहुत कष्ट झेला होगा। रेत से पानी तो उबलता हुआ निकला होगा।"

हां नल का पानी तो गरम ही था पर जो बाल्टिया और नादे भरी रखी थीं उनका पानी थोड़ा गनीमत था। नहाने मे तो उतना कष्ट नहीं हुआ जितना नहाने के बाद कपड़े पहनने में। बद गुसलखाना भट्ठी जैसा उबल रहा था।"

मै हंस पडा—"यही कारण है कि मैं शाम को गुसलखाने मे जाकर नहाने को टाल जाता हूं।"

"मगर बाहर भी कहा नहाया जा सकता था?"

"अरे हमारे घर मे क्या अदर क्या बाहर, बाथरूम के बाहर जो पटिया पडी हे मे तो उसी पर बैठकर नहा लेता हू।"

पडित मुकुद माधव पछतावा-सा व्यक्त करते हुए बोले—"अपने यहा तो हम

भी इसी तरह नहा लेते है पर यही हमे लगा कि यह कही अशालीनता न हो पता होता तो हम भी बाहर बैठकर ही दो लोटा पानी सिर पर डाल लेते।"

मुझे लगा कि 'दो लोटा' उनका तकिया कलाम है। मै बोला—"अजी छोडिए, जब नहा-धो चुके तो फिर काहे का कष्ट। चलिए अब खाना-पीना कर लिया जाए दस से ऊपर हो चुका है।"

हम दोनो के पीछे-पीछे उर्मिला भी डाइनिंग टेबिल पर चुपचाप आकर बैठ गई। जोखन ने प्लेटों में थोडा-थोडा खिचडी निकालकर रख दी थी।" मै जोखन से बोला—"यह क्या? तुम नही जानते कि पडित जी चीनी की प्लेट में खाना नहीं खाएगे। स्टील की या पीतल की थाली लेकर आओ।"

मेरी बात से उर्मिला के चेहरे पर घटा-सी उमडी और एक ऐसी ऐंठन का आभास मिला गोया वह विकल और अनुतप्त अनुभव कर रही हो। कोई पढा-लिखा प्रोफेसर आज के जमाने मे अपने आप को इतना-सा भी एडजस्ट न कर पाए कि खाने के लिए थाली गिलास वगैरह भी वही सब पुराने दिनो जैसे ही हो—यह एक विचित्र-सी बात लगती है और कोई भी आधुनिक पत्नी आतिथेय के सामने इस तरह की शर्त रखना उचित नहीं समझती।

मैने उसके मनोभाव को अनदेखा करते हुए कहा—"पता नही जोखन महाराज ने कैसी खिचडी बनाई होगी? हम लोग खिचड़ी तो खाते नही हैं—हां हारी बीमारी की बात अलग है।"

पडित जी बोले—"आप जैसे बुद्धिजीवियों को तो प्राय खिचडी खानी चाहिए।"

"बुद्धिजीवियो ने ऐसा क्या गुनाह कर डाला कि उनको खिचडी खाने की सजा मिलनी ही चाहिए।"

उर्मिला ने उनकी ओर आखें उठाए बिना ही तुर्शी से पूछा।

उन्होने उर्मिला का नोटिस लिये बिना मेरी ओर आंखे उठाते हुए कहा—"आप कवि लेखकगण अदना खयाल तो रख ही नहीं सकते। अपनी धुन मे रहते है कभी-कभी रात्रि जागरण भी करते ही है, ऐसी स्थिति में खाने-पीने में भी अव्यवस्थित रहने हैं। पेट खराब होते रहना स्वाभाविक है। बीच-बीच मे गरिष्ठ भोजन छोडकर खिचड़ी खाते रहने से पेट सभला रहता है।"

मैने हसते हुए अपनी सहमति व्यक्त की—"आपने यह तो एक पते की बात कही। मैं बराबर इस बात का खयाल रखूगा और जोखन को खिचडी बनाने के लिए बीच-बीच मे हडकाता रहूगा।"

पंडित जी मुझे अपनी राय से सहमत देखकर अत्यत पुलकित हुए और उन्होंने उर्मिला के चेहरे पर एक उडती-सी दृष्टि डालकर उत्साहपूर्वक कहा—"इसमे दाने खिचडी में चावल कम और दाल अधिक डलवाने चाहिए और कभी-कभी लौकी को कद्दूकस मे कसवाकर भी डलवा लेना अच्छा रहता है। उससे इसका जायका भी अच्छा हो जाता है।"

मैने ठठाकर हसते हुए कहा—"अरे पडित जी आप तो अच्छे-खासे पाक-शास्त्री निकले।"

"अजी पाक-शास्त्री तो क्या, हा जब सस्कृत का विद्यार्थी था तो चूल्हे-चोक से कभी-कभी साबका पड़ जाता था। ज्यादातर बटुक स्वयं पाकी होते थे।" फिर वह अपनी बात कहकर ठठाकर हस पड़े।

मैने पूछा—"क्या स्वय पाकी होने के दिनो की कोई ऐसी मनोरंजक घटना याद आ गई कि आपको बेसाख्ता हंसी आ गई।"

"हां उन दिनो की एक ऐसी ही बेढब-सी घटना याद आ गई जिसे याद करके स्वत: ही हास्य की धारा फूट उठती है।"

"फिर तो हमे भी सुनाइए। हम उस विनोद से वचित क्यो रह जाए।" मैने इसी क्षण उर्मिला का चेहरा देखा। वहां किसी प्रकार की उत्सुकता का भाव नही था। वह अपनी प्लेट मे खिचडी डाल रही थी और सिर झुकाए हुए इस तरह बैठी थी जैसे वहा उसके अतिरिक्त और कोई भी प्राणी न हो।

जोखन स्टील की थाली गिलास चम्मच और कटोरी वगैरह ले आया था। उन्हे पडित जी के सामने रखते हुए बोला—"मैने खिचडी के लैया हीग जीरा को छोका लगाय दयो है--कओ तो एक कटोरी मै आपके लैया औल (और) घी ले आऊ?"

"अरे भाई क्या आवश्यकता है। घी का छौंक तो तुमने लगा ही दिया खिचडी मे। बाकी दही, अचार, पापड, आलू का चोखा सभी कुछ तो है।"

मैने पडित जी को याद दिलाया कि वह कोई मनोरजक घटना सुनाने जा रहे थे।

"हा वह बात। मै मध्यमा की परीक्षा दे रहा था। हम बहुत से विद्यार्थी छात्रावास मे ठहरे थे। वहा एक लंबे चौडे-कक्ष में बहुत से चौके बने हुए थे। चार-चार फीट के अंतर से सीमेट की स्पीड ब्रेकर जैसी ऊंचाई उठाकर सब चौकों को अलग-अलग कर दिया गया था। प्रत्येक चौके मे एक मिट्टी का चूल्हा बना हुआ था। बर्तन भाडे, दाल, चावल, आटा सब कुछ हम परीक्षार्थी अपने घरो से ही सहेजकर ले जाते थे और स्नान-ध्यान के बाद प्रात काल अपना भोजन स्वय बना-खाकर परीक्षा देने चले जाते थे। परीक्षा का पहला ही दिन था। मन में धुकधुकी लगी हुई थी। मन

लब झंझट से बचने के लिए नमकीन पराठे सेंकने की तैयारी की। मैने देखा कि जितनी देर मे दूसरे परीक्षार्थी दाल-रोटी आदि बनाएंगे, मैं खा-पीकर निवृत्त हो लूगा ओर जो समय मिलेगा उसमें परीक्षा की तैयारी करता रहूगा।

"अभी मैंने पहला पराठा सेका भी नहीं था कि सहसा मैने पाया कि मेरे बर्तनो मे चिमटा नहीं है। साथ वाले चौके का घुर-मुंड यज्ञोपवीत से उलझता परीक्षार्थी अपनी खिचडी लगभग बना चुका था। चूल्हे मे कुछ लकडिया कम पड जाने से वह लकडिया धो रहा था कि मुझे उसका चिमटा दिखाई पड़ गया। मैंने हाथ बढाकर उसको उठा लिया। बस साहब गजब ही हो गया 'भ्रष्ट कर दिया—मेरा भोजन नष्ट कर दिया।' चिल्लाते-चीखते उसने पूरे भोजनालय में कोहराम मचा दिया। उसके भीषण आर्त्तनाद से वहा अपना-अपना भोजन बनाने वाले परीक्षार्थी एकत्रित हो गए।"

मैंने हंसकर कहा—"यह तो एक तरह से अघटित ही हुआ।"

"बस उसकी तो कोई सीमा ही नहीं रह गई थी।"

मैंने आश्चर्य व्यक्त किया—"पर लकड़ी धोने की बात मुझे विचित्र लगती है।"

"जी हा, आपको अवश्य अचंभा हो रहा होगा पर वहा अधिकांश अध्येता और परीक्षार्थी लकड़ी धोकर ही चूल्हे मे डालते थे।"

मैंने चकित होकर पूछा—"फिर वह लकड़िया जलती कैसे होंगी?"

"अजी बस किसी तरह धुआं देते-देते थोड़ी बहुत जल ही जाती थी। कभी-कभी नही भी सुलगती थीं तो वह लोग उनपर घी का छिडकाव कर जलाते थे।"

मैंने पूछा—"फिर अंत में क्या निर्णय हुआ?"

"निर्णय क्या होना था। मैंने अपना खाना बनाने का कार्य स्थगित कर दिया। उन महाराज की 'नष्ट भ्रष्ट' खिचडी लेकर उदर पूर्ति कर ली और दंड स्वरूप उन्हे एक रुपया थमा दिया।"

मैंने पूछा—"पर उनको दोबारा भोजन बनाने में तो काफी समय लग गया होगा।"

पंडित जी बोले—"परीक्षा मे सम्मिलित होने के लिए जाते-जाते तो उनकी खिचड़ी बन ही गई होगी।"

मैं बोला—"उनका जो भी हुआ हो पर आपको तो यह सुविधा वरदान सरीखी लगी होगी।"

मेरी टिप्पणी से पंडित मुकुंद माधव के चेहरे पर परिहास की भंगिमा दिखाई पडी और वह शरारती स्वर मे बोले—"मेरा वश चलता तो मैं खिचड़ी बन जाने पर उनकी रसोई इसी प्रकार प्रतिदिन 'भ्रष्ट' करता रहता पर अगले दिन से उन्होने मेरे

पडोस में खाना बनाना ही बद कर दिया।"

मैंने देखा, पडित मुकुद माधव के चेहरे पर अब किसी प्रकार की ऊब या जडता का भाव बाकी नही रह गया था और वह परम सहज दिखाई पड़ रहे थे। मुझे पहली बार पता चला कि उनके भीतर सहज उल्लास की कोई कमी नही थी। बस उर्मिला और उनके बीच मे ही कुछ ऐसा था जो तनाव उत्पन्न करने वाला और संवाद को खंडित करने वाला था।

मैंने पंडित जी के चेहरे से आखें हटाकर उर्मिला की ओर देखा। उसकी दाए हाथ की कुहनी मेज पर टिकी थी और हथेली पर ठोडी रख वह शून्य में कुछ ताक रही थी।

मै बोला—"उम्रिला जी, खिचडी ठंडी क्यो कर रही हैं?" फिर मैंने मुकुंद माधव से कहा—"पंडित जी शुरू कीजिए।"

खाना चलता रहा फिर बीच में कोई नहीं बोला। सभवत. मुकुंद माधव का तो खाने के दौरान कुछ भी न बोलने का नियम ही होगा। संस्कृत के पडित ऐसा सोचते है कि खाना खाते समय बोलने से खाने में पूरा मन नहीं रहता और उससे रस निष्पत्ति में बाधा पड़ती है। लेकिन उर्मिला शायद यह नियम नहीं मानती होगी पर वह बोलती भी तो क्या—क्योकि उसके पति भी उसकी ओर से वैसे ही उदासीन दिखाई पड़ते जैसी कि वह स्वयं उनके प्रति नजर आती थी।

खाना खत्म करने के बाद उर्मिला और पडित जी अपने कमरे में सोने चले गए। मेरा खयाल था कि शायद उर्मिला मुझसे बातें करने के लिए थोड़ी देर ठहरेगी। उसके पति न लौटे होते तो संभव था वह सहज और उल्लसित मन से साहित्य, कला अथवा सामान्य बाते ही करती पर मैने देखा कि उनके वापस लौट आने से उसका व्यवहार एक अपरिचिता जैसा हो गया था। मुझे थोडी देर पहले ही वह बातें स्मरण हो आई जो वह पैदल चलते हुए मुझसे रास्ते भर करती आई थी।

मुझे खाना खाते ही फौरन नींद नहीं आती। हालांकि खाने से फारिग होते-होते ग्यारह बज चुके थे पर अपनी आदत के कारण मैं एक पुस्तक लेकर बिस्तर पर लेट गया। मुझे पता नहीं, मेरी आखे कब नींद से बोझिल हो गई और मैं गहरी नींद सो गया।

7

अगली सुबह जब मै सोकर उठा तो मैंने देखा उर्मिला बाहर बराडे मे मोढे पर बैठी अखबार पढ रही थी और उसके सामने तिपाई पर चाय का प्याला रखा था।

लगता था चाय अभी बनी थी क्योंकि प्याले से भाप उठ रही थी और उर्मिला ने उसकी घूंट नही भरी थी।

मुझे सामने देखकर उसने अखबार से सिर उठाकर हाथ जोडते हुए नमस्कार की। उसके चेहरे पर उस समय कोई खिंचाव अथवा तनाव नहीं था—रात मे खाना खाते समय की ऊब भी नही थी। मैने उसकी नमस्कार का उत्तर देकर पूछा—"रात कैसी नींद आई? लगता है कल रात जो काफी पैदल चली थी उससे थकान हो गई होगी।"

"मै तो खूब बेफिकर होकर सोती हू। पैदल-वैदल से मुझे कोई थकान नही होती।"

मैं बोला—"यह तो बडी भारी खूबी की बात है। इस तरह से जिन्हे नीद आ जाती है—मुझे उनसे ईर्ष्या होती है।"

वह अखबार एक तरफ सरकाकर बोली—"वैसे तो हम कुछ नहीं हैं मगर चलिए कही तो हम भी ईर्ष्या के योग्य है ही—चाहे फिर वह पशु प्रवृत्ति सोना ही क्यों न हो।"

"आप सोने को इतनी हिकारत से क्यो देखती है? नींद से बड़ी उपलब्धि अभी तक दुनिया मे और कोई नही है जिसका उल्लेख किया जा सके।"

वह चाय का प्याला मेरी ओर बढाते हुए बोली—"अभी मैंने जूठी नही की है—आप पीजिए मैं नहाकर पी लूगी

चाय पीने की इच्छा नही है अभी?"

"इच्छा की बात नही है—मै सोचती हूं कि नहा-धोकर तैयार हो जाऊ तो चाय पीऊं।"

"इतनी जल्दी कहां जाने की सोचती हैं?"

उर्मिला ने तुरत कोई उत्तर न देकर मेरी ओर देखा और उसने मुझे इस बात का भी कोई संकेत नही दिया कि मैने ही कल रात उन लोगों को दिल्ली ले जाने की बात कही थी।

वह मोढे से उठते हुए बोली—"जाना कहीं नहीं है मगर तब भी सुबह को नहा-धो लेने में हर्ज ही क्या है।"

मेरी सामने आखे उठीं तो मैने देखा गुसलखाना बद था। मैंने पूछा—"क्या पडित जी बाथरूम में है?"

"वह तो बस अब निकलने वाले ही होंगे। देर से स्नानघर में हैं। सुबह नहाने मे उन्हें कुछ ज्यादा देर लगती है।"

मै बोला—"चलिए तब तक आप चाय पीए।"

सामने से जोखन, चाय का प्याला हाथ से पकडे चला आ रहा था। शायद उसने मुझे वहा बैठे देख लिया था और चटपट चाय तैयार कर दी थी।

जब जोखन ने प्याला तिपाई पर रख दिया और देखा कि उर्मिला के सामने रखा प्याला ज्यों का त्यों भरा रखा है तो उसने कहा—"जे का करो आपनने? चाह तो तिहारी न्यों (यों) की न्यों ई धरी है।"

"अभी ठंडी नहीं हुई है जोखन भैया। मै बस अब पी रही हू।"

तिपाई से मैंने चाय का प्याला उठाते हुए जोखन से कहा—"जोखन महाराज! घटे भर में नाश्ता बना दो, झटापट—हम लोगों को धूप चढने से पहले दिल्ली जाना है।"

"अच्छो जी अबई हाल लेओ। का खाओगे, जे बी मोय बताय देओ तो मै काम सरू कद्दऊं।"

मैने उर्मिला के चेहरे पर नजर डालते हुए पूछा—"कहिए, क्या खाना पसद करेगे आप लोग? रात तो खिचडी से ही टरका दिया जोखन महाराज ने।"

जोखन ने मेरा परिहास नहीं समझा। वह दोनो हाथ ऊपर उठाते हुए बोला—"नाय जी मोय दोस न द्देओ। आलू उबार (उबाल) के धर ई दये हतै हमन्ने तो तुम कैते (कहते) तो परामठे ई सेंक देते सबन के लैंया।"

मैं उसे शांत करने की गरज से बोला—"अरे जोखन मै तो मजाक कर रहा

था। मे क्या जानता नही हू कि तुम क्या चीज हो?" मेने फिर उर्मिला से ई पूछा—"बोलिए क्या बनवाया जाय?"

"मेरे लिए तो कुछ भी वनवाने की जरूरत नही है।"

"क्या आज के दिन उपवास रखती हो?"

"मै कभी उपवास नही रखती।"

"मैं भी कभी नहीं रखता। जब भी एक-दो बार उपवास रखने की कोशिश की है और दिनो की बनिस्बत उस रोज और भी जल्दी और भी ज्यादा भूख महसूस हुई है। इसीलिए मैने तो वह सब छोड ही दिया।"

पंडित जी गुसलखाने से निकलकर हम लोगों के पास आ खड़े हुए और पूछने लगे—"क्या छोड दिया आपने?"

"कुछ खास नहीं—बस यही व्रत उपवास का झमेला।"

"जन्माष्टमी का व्रत तो रखते ही होंगे?"

मैं हसकर बोला—"उस व्रत की तो कोई तुक ही समझ में नहीं आती मुझे।"

पडित जी चौंके—"ऐसी क्या बात हो गई? हजारों वर्षो से भारतीय हिंदू जनता ही नहीं बल्कि विदेशों में बसे हिंदू भी इस व्रत को रखते हैं। मैंने तो कहीं पढ़ा था कि अब्दुल रहीम खानखाना भी कृष्ण जी के परम भक्त थे और जन्माष्टमी का व्रत रखते थे। अपने महल मे बने कृष्णा मंदिर को सजाते थे।"

"जरूर सजाते होंगे लेकिन जो कृष्ण भगवान अर्धरात्रि को पैदा होते हैं उनके लिए भूखा मरने के लिए क्या तर्क हो सकता है।"

"यह तर्क नहीं श्रद्धा और भक्ति का प्रश्न है।" उन्होंने अपनी लंबी चोटी मे गाठ बांधते हुए कहा।

मैं बोला—"तब तो सारा किस्सा ही खतम है। जब बात श्रद्धा-भक्ति पर आ अटकती है तो उसे पूर्ण विराम लग जाता है।"

"आप चाहे कुछ कहें, श्रद्धा का उद्‌भव ही विश्वास की भूमि से होता है। अनास्था की भूमि में श्रद्धा भक्ति का अंकुर कभी नहीं पनप सकता।"

उर्मिला चाय खत्म करके उठी और अपने कमरे की ओर जाते हुए मुझसे बोली—"आप तो शायद अभी नहाने की नहीं सोचते?"

"मै एक घटे से पहले क्या नहा पाऊंगा? आप आराम से नहा-धोकर तैयार हो जाएं।"

पंडित मुकुंद माधव भी उर्मिला के पीछे जाते हुए बोले—"मै उपासना करने जा रहा हूं। आपके घर में कोई मूर्ति या भगवान् की तस्वीर नहीं है?"

मैं बोला—"नहीं वैसी कोई मूर्ति नही है। हां, कभी-कभी देवो-देवताओं के कलेंडर जरूर कोई दे जाता है जिसे जोखन महाराज गाव जाते वक्त साथ ले जाते है।"

पडित जी ने उदारता दिखाई—"चलिए कोई बात नही। न सही मूर्ति या तस्वीर, पूजा-उपासना तो मन से होती है वह तो निर्विकल्प है। तुलसीदास जी ने भी कहा है 'अगुणहीं सगुणही कछु नहीं भेदा।'

पंडित जी पूजा में बैठे तो उर्मिला नहाने चली गई। मै चाय पीते हुए अखबार देखने लगा।

उर्मिला नहाकर लौटी तब तक जोखन ने सब्जी बना ली थी। उसने उर्मिला से पूछा—"भैनजी काहे की दार बनाय दऊं? आप लोगन कू कौन सी दार भावै हतै?"

मैंने कहा—"दाल क्यो बनाते हो भाई? हम लोग इस समय दाल-चावल वगैरह नही खाएंगे। नाश्ता करके फौरन निकलना है। तुम दाल-वाल शाम को देखना, इस समय तो सब्जी परांठे बना डालो।"

"चलो तो ऐसेई सई—मोंकू का देर लगे है। अब हाल परामठे सेके देत हू।" फिर उसने हम दोनो की ओर बारी-बारी से देखकर पूछा—"आप लोग खावे कूं त्यार है गए का!"

"नहीं जी! अभी कुछ देर लगेगी। जब खाना होगा, हम बता देंगे।" कहकर मै बाथरूम की ओर चल पडा।

मैं नहाकर लौटा तो मैने पाया कि उर्मिला बरांडे में आदमकद आईने के सामने खडी बाल बना रही थी। उसने प्याजी रंग की रेशमी साडी पहन रखी थी।

मैने उसके पास से गुजरते हुए कहा—"हम दोनों पुरुष तो हार गए। आपने बाजी मार ली। आप तो अब तक लगभग तैयार ही हो चुकी हैं। इधर मै और पडित जी नहाने-धोने और पूजापाठ मे उलझे हुए हैं।"

वह अपनी प्रशसा सुनकर खुशी से मुस्कराई और बोली—"जब कि कहा यही जाता है कि औरतें नहाने-धोने सिंगार-पटार मे बहुत समय लगाती हैं।" फिर कुछ पल ठहरकर बोली—"है न यह आप लोगो की उल्टी बात?"

मै हंसकर बोला—"एकदम! उल्टी से भी उल्टी।"

"वाह जी वाह! यह क्या बात हुई? चित्त भी मेरी पट भी मेरी। उल्टी को उलट देने से तो वह फिर उल्टी कैसे रह जाएगी—सीधी नहीं हो जाएगी?"

"अरे हां!" मैंने आश्चर्य जतलाया। पूजा से निवृत्त होकर तभी पंडित जी हम लोगों के पास आ खडे हुए।

मै बोला— "चलिए अब आप कपडे-वपडे पहन डालिए। नाश्ता करते ही हम लोग दिल्ली के लिए निकल चलते हैं।"

"दिल्ली?" उन्होने इस अदाज पर कहा जैसे उन्हे कोई सजा दी जा रही हो।

"दिल्ली जाकर अब क्या करना है? दिल्ली में तो अब कोई काम ही बाकी नहीं है।"

मैंने कहा—"काम निकालने से निकलता है। दिल्ली जाकर कुछ सैर-सपाटा करना—एक दो स्थानो को मौज से देख लेना भी एक काम ही है।"

"अरे छोड़िए जी! उस अनियन्त्रित भीड में जाना तो ऐसा ही है जैसे कछुआ बाढ़ में फंस जाए।"

मैंने उन्हें सहज बनाने के उद्देश्य से कहा—"पंडित जी भीड़ से क्या परहेज? भीड-भाड़ से तो हम अब कहीं भी बचकर नहीं रह सकते!"

वह प्रतिवाद करते हुए बोले—"जो हो! हम तो भीड से बहुत घबराते हैं भाई।"

मैं हसकर बोला—"क्या हम भी कहीं जाकर भीड़ नही बन जाते? क्या भीड के डर से आप घर से निकलना छोड़ देगे?"

"एक तरह से छोड़ा ही हुआ सा है। जब बिल्कुल ही काम नहीं चलता तभी निकलता हू बस।"

"तो फिर यहां से निकल चलिए, फिर मैं आपको सारे दिन के लिए एक ऐसे स्थान पर छोड़ दूगा जहां आपको उर्मिला जी के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पडेगा।"

उर्मिला ने अपनी गर्दन को हल्का-सा खम देते हुए मुझे देखा और फिर तैयार होने में लग गई। पंडित ने अपनी निगाह उर्मिला की ओर नहीं फेरी। बस अखबार उठाकर उसमे सिर गड़ा लिया।

मैने पति-पत्नी को परस्पर यो अजनबी बनते कभी कहीं नही देखा था। मै निरंतर कोई ऐसा उपाय सोच रहा था जिससे कि उन दोनो के बीच पसरे बोझिलपन को काट फेंकूं। मै पिछले दिन से ही देखता चला आ रहा था कि पूरे घर मे मनहूसियत-सी भर गई है। उपन्यास-कहानियों में तो पति-पत्नी के बीच का तनाव खूब वर्णित मिलता है। पति-पत्नी के बीच की कलह का भी मुझे ज्ञान था ही मगर पुस्तको से बाहर निकलकर उसे यथार्थ रूप में अभी देख पा रहा था। मैं कुछ तय नही कर पाया तो मैने उठते हुए कहा—"मै जोखन से मेज पर नाश्ता लगाने को कहता हू, आप शीघ्रता से कपड़े-वपडे पहनिए। ऐसी सुदर सुबह हमें यही बैठे-बैठे बर्बाद नहीं कर देनी है।"

मेरे पुरजोर आग्रह पर पडित जी मोढे से उठे और अपने कमरे की ओर चल पडे पर उनके चेहरे का भाव कतई नही बदला। मुझे लगा कि शायद वह दिल्ली जाने के लिए तैयार नहीं होंगे।

जब मुझे पता चल गया कि मुकुद माधव कमरे मे दाखिल हो चुके हैं तो मेने उर्मिला की ओर मुंह करके धीमे स्वर मे कहा—"आप रात सिनेमा देखकर लौटने तक तो अच्छी भली थीं। उसके बाद यह आपको क्या हो गया है जो आप इस तरह तनी हुई हैं? जरा मुस्कराकर तो बताइए।"

उर्मिला ने आईने से नजरें हटाकर माथे पर बल डालते हुए कहा—"मुस्कराऊ क्या खाक? किसके लिए मुस्कराऊं, हंसू, बिहसू? उन्होंने उसकी कही रत्ती भर भी गुजाइश छोड़ रखी है? अपना काम था तो दिल्ली जाकर धक्के खा आए। अब मुझे साथ लेकर दिल्ली जाना भारी और फिजूल मालूम पड रहा है।"

मैने उसे समझाया—"जब दो जने एक ही नाव पर सवार हों और अलग हो सकने का कोई विकल्प ही सामने न हो तो क्या किया जा सकता है। सिवाय इसके कि जब तक साथ है, परस्पर सहज बनकर रहें।"

मेरी बात सुनकर उर्मिला का चेहरा पहले तो तमतमाकर सख्त हो उठा पर अगले ही क्षण उस पर कातरता उभर आई। वह यह तक भूल गई कि उसके पति पडित मुकुद माधव पास के कमरे मे ही कपडे बदल रहे हैं। वह लाग लपेट के उच्च स्वर से बोली—"मेरी किसी के भी साथ रहने की कोई विवशता नहीं है। जिस नाव के पेंदे में छेद हो उसमें कौन रहना चाहेगा?"

"अगर आप तैरने मे कुशल नही हैं तो आपको उस नाव के डूब जाने तक उसी में रहना होगा। दूसरा कोई उपाय नही है। या फिर आपको डूबने से बचाने को कोई तैराक सामने आ जाए।"

उर्मिला ने पलकें झपकाकर मेरी ओर देखा गोया, उसे किसी तैराक के कहीं से सामने आ निकलने की कोई आशा या भरोसा हो। वह धीरे-धीरे कहने लगी—"डूबने की स्थिति तो अंतिम है। वह तुरंत तो नही आ जाती। आ जाय तो फिर क्या गम? चलो छुट्टी हो मगर डूबने से पहले भी तो दस तरह की यंत्रणाएं होती हैं। मुझे डूब जाने से कोई डर नहीं है पर मै यह बीच की यातनाएं बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

"आप एकदम से डूब जाने की बात सोचती ही क्यों है? जब किसी भी संयोग से आप किसी से जुड़ जाएं तो फिर साथ निभाने के विकल्प ढूंढने चाहिए न कि उस साथ को निरंतर यातनामय बनाते चले जाने के। ऐसा कोई उपाय जरूर तलाशना चाहिए जिससे कि एक सहज सामान्य जीवन जीया जा सके।"

"जब एक भी बिंदु ऐसा न रह जाए जहा साथ-साथ खडा हुआ जा सके तो फिर आप ही बताइए, क्या किया जा सकता है? आप अपने विरुद्ध कहा तक जा सकते हैं?"

मैं बोला—"हम स्वयं को थोड़ा मुक्त छोड़ सकें तो फिर हमे अपने विरुद्ध नही जाना पड़ता। हम चीजो को अपने ढंग से चलने देते है—उनमे अपनी तरफ से कुछ नही घटाते जोडते तो स्थिति असहज होने से बच सकती है।"

"मैं मूर्खा हूं, मैं मनस्वी नहीं हूं।"

"कोई मनस्वी नहीं होता। मनस्विता भी एक लबा सफर तय करके मनस्विता बनती है। बडे ऊहापोहो की दुर्गम घाटियो से गुजरना पडता है उसके लिए।"

उर्मिला ने एक बार मेरा चेहरा गौर से देखकर सिर झुका लिया और वह कुछेक क्षण बाद आईने के सामने से हट गई।

मैं सोचने लगा—उर्मिला एक बार पहले मुझसे मिली थी और अब दो दिन से मेरे घर में है। उसमे सहज उल्लास की कोई कमी नही है बल्कि एक तरह से वह उच्छल तरगवती नदी ही है फिर यह अवरोध कहा से आ रहा है? क्या उसकी जीने के प्रति आसक्ति गलत है? वह अपने पति के साथ दिल्ली आई है पर अभी तक वह दिल्ली तक नही पहुची। क्या दिल्ली तक जाकर कुछ देख सुन-लेना कोई बडी भारी मांग है या कि वह वर्जित है? वह उस एकात और संवादहीन स्थान पर लौटने से पहले कुछ क्षण दूसरे ढंग से जी लेना चाहती है—थोड़ा बहुत घूम-फिर कर खरीद लेना चाहती है—क्या इसे एकदम नकार देना चाहिए? उसका पति उसकी इस भावना तक पहुंच ही नही पाता है या कि वह जानबूझकर उसकी अवहेलना करना चाहता है, यह समझना मेरे लिए बहुत कठिन था।

वह चाहती तो पंडित मुकुद माधव को एक ओर करके मेरे साथ दिल्ली उसी प्रकार निकल सकती थी जैसें कि वह मेरे साथ फिल्म देखने निकल गई थी पर शायद उसके संस्कार पति को पूरी तरह उपेक्षित करके एक ओर ढकेल देने वाले नहीं थे। वह पति से एक स्वीकृति और अपना पत्नी होने का गौरव प्राप्त करना चाहती थी जिसकी उपेक्षा कर सकने में वह असमर्थ थी।

मेरे समझाने-बुझाने से वह थोडी सभल गई पर मैंने देखा कि उसकी भाव विह्वल आंखों में नमी उभर आई थी। मैं उसे वहीं छोड़कर रसोई की ओर निकल गया और जोखन से मेज पर नाश्ता रखने की बात कहकर लौट आया।

जोखन सब्जी और पराठे मेज पर रख गया। जाते-जाते बोला—"चाह अबई बनी जात है—आप लोग खाना शुरू कइेओ।"

मैने आवाज़ लगाई—"पंडित जी, आप क्या कर रहे है। आपका भोजन ठडा हो रहा है।"

कमरे से ही उनकी आवाज आई—"अभी एक मिनट मे आया।"

जब वह आ गए तो मैंने पूछा—"आप चाय तो शायद ही पीए—आपके लिए एक गिलास दूध ठीक रहेगा।"

"छोडिए दूध ऊध। मैं तो पराठे सब्जी से ही तृप्त हो जाऊंगा।"

जोखन चाय लेकर आया तो मैंने एक गिलास दूध लाने को कहकर उर्मिला को बुलाया—"बस अब जो भी करना है बाद मे करे—पहले नाश्ता से निपट लो।"

उर्मिला आकर सामने की कुर्सी पर बैठ गई। हम लोगों ने खाना शुरू कर दिया तो मेने कहा—"क्यो पडित जी कैसा रहे कि हम लोग हरिद्वार-ऋषिकेश का भी एक चक्कर लगा आए।"

"इस बार?"

"और क्या? जब आप लोग इधर आ ही गए हैं तो लगे हाथो गंगा स्नान का पुण्य भी लेते जाइए। फिर न जाने आपका कब आना हो।"

पडित मुकुद माधव ने उडती-सी नजर सामने बैठी उर्मिला पर डालकर कहा—"इस तैयारी के साथ तो आना नहीं हुआ। हा, अगली दफा हरिद्वार आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा की जा सकती है।"

तभी जोखन दूध का गिलास लेकर आ गया। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि जोखन बिना कहे ही उनके लिए दूध ले आया था।

फिर मैने उनसे हरिद्वार चलने का आग्रह नहीं किया और हम लोग चुपचाप नाश्ता करते रहे।

जब हम लोग नाश्ता समाप्त करके उठ रहे थे तो जोखन मेज से बर्तन समेटते हुए पूछने लगा—"का आप लोगन को कहूं जावे को परोगराम बन रयो है?"

मैने कहा—"हां हम सब दिल्ली जा रहे है। रात तक लौट आवेंगे।"

वह सकुचाते हुए बोला—"आज मैं गाम जाने की सोच रयो थो।"

मै क्षणभर उसका मुंह देखता रहा और बोला—"आज ही क्यो? एक दो दिन बाद नही जा सकते?"

"गगा दसेरा के दिन मोय बालकन के सग गढ गगा जानो थो।"

मैने पूछा—"क्या जेठ का दशहरा जल्दी ही है?"

जोखन के कुछ कहने से पहले ही मुकुंद माधव बोल उठे—"जी हां, परसो जेठ का दशहरा है।"

मे कुछ दर तक सोचता रहा आर बोला   तो ठीक ह तुम चले जाओ   हम खाने-पीने की कुछ-न-कुछ जुगत कर ही लेगे।"

उर्मिला बोली—"मै हूं न' मेरे रहते आपको कोई और व्यवस्था करने की क्या जरूरत है?" फिर वह जोखन की ओर मुंह घुमाकर बोली—"जोखन भैया आप निश्चिंत होकर गंगा नहाने जाओ—यहा का काम मै देख लूगी।"

जोखन बर्तन उठाकर चला गया तो हम सब भी उठ गए। मैंने चलते हुए उर्मिला से कहा—"जिस तरह से आपने जोखन को मुक्त कर दिया है, उससे वह बडा प्रसन्न हो गया है मगर उसके जाने से आपको परेशानी होगी।"

"काहे की परेशानी? क्या मै वहा घर मे सभी कुछ नही करती जो यहा करने से मुझे परेशानी हो जाएगी।"

मैं बोला—"वहां की बात दूसरी है, यहा आप दिन दो दिन के लिए आई है—उसमे भी आपको घर-परिवार की तवालत उठानी पडे—यह तो कोई बात नही हुई।"

मुकुंद माधव वाश बेसिन पर खडे कुल्ला कर रहे थे। उर्मिला ने उधर देखते हुए कहा—"दो-तीन आदमियों का खाना बनाना भी कोई काम में काम है—मैंने तो इनके यहां आठ दस जनों का खाना बरसों तक बनाया है।"

"वो तो ठीक है पर यह बर्तन-भांडे मांजने-धोने का कष्ट खाना बनाने से कहीं ज्यादा है।"

"यहा कितने बर्तन होगे। कई-कई दिन महरी नागा कर जाती है तो क्या मै घर मे बर्तन साफ नही करती?"

मैंने उस प्रसग को समाप्त करते हुए कहा—"चलिए वह सब बाद में देखेंगे। आप जल्दी से तैयार हो ले। निकलते-निकलते खासी धूप हो जाएगी।"

"मैं एकदम तैयार हूं। बस आप दोनो जब भी चल पडेंगे मैं आपके पीछे चल दूगी।"

मैंने हंसकर कहा—"पीछे नही, आप साथ चलेंगी।"

"चलिए वही सही।" कहकर मैं कमरे से अपना झोला और पर्स उठाने चला गया।

8

जब मैं, पडित मुकुद माधव और उर्मिला घर से निकलने जा ही रहे थे तो उन्होंने उर्मिला का चेहरा गौर से देखा और उसके हाथ से उसका छोटा-सा बेग ले लिया।

मै या उर्मिला कुछ समझ पाते इससे पहले ही उन्होने बैग की चेन खींचकर उसमें से लिपस्टिक और छोटा-सा गोल आईना निकाला। वह औघड ढंग से मुस्कराए और लिपस्टिक तथा आईना उसकी ओर बढाते हुए व्यग्यपूर्वक बोले—"अपना शहर तो एक गया-गुजरा कस्बा ही है मगर तुम तो वहा भी होंठों पर लिपस्टिक लगाए बिना नही निकलती फिर दिल्ली जैसे महानगर और देश की राजधानी मे होठ बिना रगे कैसे जा रही हो? लगता है लिपस्टिक लगाते हुए यहां कुछ शरम आ रही है! महानगर में ऐसे ही चली जाओगी तो क्या वहां की जनता तुम्हे गंवार नहीं समझेगी?"

मै उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार से अवसन्न हो उठा। मुझे लगा मेरे आग्रह को न टाल पाने की स्थिति में ही वह मेरे और उर्मिला के साथ दिल्ली जा रहे थे! उन्हे उर्मिला का मुक्त भाव से साथ चलना पसद नहीं आ रहा था। पिछली रात वह मेरे साथ अकेली फिल्म देखने गई थी—तब तो उन्होंने उस बात पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी पर अब उनकी व्यंग्योक्ति सुनकर, मुझे लगा कि वह उनके मन की देर से स्थगित की हुई ऐठन व्यक्त हो रही थी।

एक क्षण के लिए उर्मिला का चेहरा उतर गया पर अगले ही क्षण उसकी आखों मे उद्धत भाव कौध गया। वह लिपस्टिक और आईना लेकर बराडे में गई और होंठों पर लिपस्टिक फेरकर लौट आई।

मै डर रहा था कि कहीं वह लिपस्टिक और आईने को गुस्से से पंडित जी के ऊपर फेक न मारे पर उसने वैसा नही किया। उसका होठों पर लिपस्टिक लगाना

एक तरह से उनकी अवमानना ही करना था। मुझे उसके इस काम से लगा कि वह अपने पति की कटूक्ति और विद्वेष को आवेश रहित आचरण से पूरी तरह काट गई।

मैंने वातावरण को तनाव से बचाने के लिए उर्मिला की ओर देखा और ताली बजाकर बोला—"यह आपने खूब किया। अच्छे-भले पतियों का यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि वह पत्नी के साथ कही बाहर जाते समय उन्हें सौंदर्य बोध के प्रति सचेत कर दे।" फिर मैंने उर्मिला के पति महोदय को लक्ष्य करके कहा—"पडित जी, मै आपको इस बात के लिए साधुवाद देना चाहता हूं कि आपने स्वयं अपने हाथो से पत्नी को प्रसाधन के उपकरण सौंप दिए।"

पडित मुकुद माधव खिसियानी-सी हंसी हंसते रहे। उनसे कोई बात कहते नहीं बनी।

मेरी ओर देखते हुए उर्मिला मारक ढक से बोली—"तब तो आपको भी इस पुनीत कर्म को करने के लिए कुछ कर डालना चाहिए। ऐसा अवसर हाथ से क्यो जाने दे रहे है जब कि आप भी किसी के हाथ में लिपस्टिक और शीशा थमा सकें।"

"मेरे यह करने से आफत खड़ी हो सकती है। यह प्रयोग बवाले जान भी बन सकता है। हो सकता है मेरे यह करने पर प्रतिक्रिया स्वरूप चप्पल या सैंडिलो का इस्तेमाल इस अवसर के लिए उभय पक्ष को अधिक उचित लगे।"

मुकुंद माधव बोले—"वह भी एक अनूठा अनुभव होगा। आप तो लेखक है और लेखको-कवियों को तो नित्य नवीन अनुभव करने ही चाहिए।"

उर्मिला ने अपना आईना और लिपस्टिक अपने बैग के अदर डालते हुए पूछा—"क्या अब इसी पर 'डिबेट' चलती रहेगी या हम लोग आगे बढ़क ः घर के बाहर भी निकलेंगे?"

मैने कहा—"हां-हां, चलिए-चलिए बहुत देर हो गई यह तो।"

घर से बाहर निकलते हुए मैने जोखन को बुलाकर कहा—"चाभी पनवाडी को देते जाना।"

उर्मिला ने पूछा—"पनवाडी को ही क्यों? क्या किसी पड़ोसी को कुजी नही सौपी जा सकती?"

"दरअसल रात को कभी-कभी लौटने में देर हो जाती है। वैसी स्थिति मे पड़ोसियों को सोते से जगाना मुझे अपराध लगता है। नुक्कड़ का पनवाड़ी रात को बहुत देर तक अपने खोखे पर बना रहता है। इसके अलावा उसका मकान भी खोखे के आस-पास ही है।"

घर से बाहर निकलकर गली में आए तो दूर तक कोई रिक्शा दिखाई नहीं

पडा। हम तीनों पैदल ही चलने लगे। पडित मुकुंद माधव अपने भीतर गुम होकर ही चल रहे थे।

मैंने पनवाड़ी के खोखे के पास रुककर कहा—"हम दिल्ली जा रहे है। जोखन तुम्हे घर की चाभिया दे जाएगा।"

जब हम आगे निकल गए तो उर्मिला ने साथ चलते-चलते कहा—"कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि आदमी आपकी तरह अकेला कैसे रह लेता है।"

"इतना ही अचभा मुझे इस बात को सोचकर भी होता है कि आदमी निरतर किसी के साथ कैसे रह लेता है।"

"हा यह तो आप एकदम ठीक कहते हैं। कम-से-कम आपके साथ कोई खिटखिटबाजी करने वाला तो नहीं है। जोखन आपका सब काम ठीक वक्त से कर देता है। घर की सही ढंग से देखभाल करता रहता है और वह आप पर किसी तरह का बोझ भी नही डालता।" फिर वह आत्मिक व्यथा से बोली—"अपने साथ जब तक यह जजाल नही था तो अपनी नींद सोती जागती थी। क्या रखा है ऐसी घरगिरस्ती में जिसमे आदमी अपने तरीके से कभी भी न जी सके।"

अपनी बात कहकर उर्मिला ने अपने पति की ओर कनखियों से देखा मगर उन्होंने अपनी कोई प्रतिक्रिया जाहिर नही की। या तो उन्होने उर्मिला का आरोप सुना ही नही था अथवा वह जानबूझकर उस बात को अनसुना कर देना चाहते थे।

मैंने उर्मिला को छेड़ा—"कभी-कभी मेरी बडी इच्छा होती है कि मेरी भी किसी से कलह हो। आपने मेहंदी हसन की गाई हुई वह गजल तो जरूर ही सुनी होगी जिसमें वह कहता है 'दिल को दुखाने के लिए ही आ'।"

उर्मिला ने मेरी ओर कटाक्ष करके कहा—"रहने दीजिए अपनी इस आत्मेच्छा को। इसमें क्या मुश्किल थी आपको? एक नही दस सताने वालियों को ला सकते थे।"

"एक सताने वाली से ही त्राहि-त्राहि करते देखे जाते हैं लोग बाग—आप दस की बातें करती हैं।"

मेरी बात को दर गुज़र करते हुए उर्मिला ने कहा—"पता नहीं इस दुनिया मे क्या अधेरगर्दी है कि जिनके पास जो चीजे बिना किसी कोशिश के स्वतः पहुंच जानी चाहिए, पता नही वह रास्ते मे कहा भटक जाती हैं जबकि एक से एक निकम्मे और अयोग्य उन पर अपनी इजारेदारी जमाकर बैठ जाते है।"

मुझे उसके शब्दो को सुनकर अटपटापन महसूस होने लगा। यह तो साफ ही था कि यह सब कुछ वह पडित मुकुंद माधव को सुनाकर उन्हे जलील करना चाहती

थी। पता नही उसका आक्रोश कहा जाकर रुकने वाला था। उर्मिला अपने मन म कोई कांटा, कोई कुटा बुरी तरह फसाए बैठी थी और उसे किसी भी तरह निकालने की कोशिश कर रही थी। वह और मुकुद माधव रेल की समानातर पटरियों की तरह साथ-साथ चल रहे थे मगर उनका मेल-मिलाप एक तरह से असंभव ही हो चला था। वह शायद बहुत अधिक कुछ नही चाहती थी पर छोटी-सी अनुपलब्धि ही उसे तग कर रही थी।

मैंने मल्लिका का रुख दूसरी ओर मोडने के लिए कहा—"अरे, यह तो पैदल चलते-चलते ही हम लोग स्टेशन के नजदीक आ पहुचे। इसी तरह पैदल चलते रहे तो हम लोग मज़े से दिल्ली तक ही जा पहुचते।

पडित मुकुद माधव कुछ बोलने के लिए काफी देर से बेचैन थे। वह बोले—"तो फिर मुश्किल क्या है! यो ही चलते रहिए और दिल्ली जा पहुंचिए।"

"अरे महाराज, इतनी दूर तक चलते-चलते ही आपके पांव थक गए होगे।"

"अजी हमारे पाव इतनी जल्दी दुखने वाले नहीं हैं। मैं तो गांव देहात का भुच्च देहाती ठहरा। हा कमसिन और मुलायम लोगो की और बात है जो चार कदम चलते ही थकने लगते हैं।" यह कहकर उन्होंने उर्मिला की तरफ देखा।

इसी समय एक रिक्शेवाला हमारी बगल से गुजरा तो मैंने उसे रोककर कहा—"क्या स्टेशन चलोगे?"

वह पडित जी की वात से भनभनाई हुई थी। वह रिक्शा चालक से बोली—"जाओ जी हमे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।" फिर मेरी ओर मुड़कर उसने पूछा—"प्रभाकर जी अभी स्टेशन क्या दूर है? हम लोग यों ही बातचीत करते हुए क्या थोड़ी-सी देर मे स्टेशन तक नहीं पहुंच जाएंगे?"

मैने रिक्शे वाले को रुकने के लिए कहा और बोला—"इसी तरह रेंगते हुए चले तो फिर नौ बजे वाली गाड़ी हमे नही मिल पाएगी। उसके बाद गाड़ी ग्यारह बजे मिलेगी। अब सोचने का वक्त बिल्कुल नहीं है। बस आप लोग रिक्शे पर बैठ ही जाइए।"

मेरे आग्रह पर उर्मिला क्शे पर बैठ गई। मैंने पंडित मुकुंद माधव से उसके साथ बैठने को कहकर एक और रिक्शा लिया और चालक से बोला—"तेजी से चलो। गाडी का वक्त हो रहा है। नौ बजे वाली गाडी छूटनी नहीं चाहिए।"

मेरा रिक्शा चल पडा तो मैंने पीछे मुडकर देखा। अभी तक उर्मिला के पति रिक्शे पर सवार नहीं हुए थे। शायद उनके भीतर उमड़ते आक्रोश की कोई सीमा नही थी और वह उर्मिला की बगल में एक ही रिक्शे पर बैठने को कतई तैयार नहीं थे

मेने चिल्लाकर कहा पडित जी जल्दी से रिक्शे पर बटिए वर्ना गाड़ी नही पकड पाएंगे।''

मेरे जल्दी मचाने से वह किसी तरह उर्मिला की बगल में बैठ तो गए पर वह पत्थर की तरह सख्त हो गये।

मै अजीब सी मुश्किल मे फंस गया था। मै उन दोनों के बीच उभरते तनाव को दूर करने की जुगत सोचता रहा। बाहर से दोनों नगी तलवारो की तरह खिचे हुए थे मगर उनका टकराना लोहे जैसा नहीं बल्कि काच का कांच से टकराने जेसा था—जिसका परिणाम किरच-किरच होकर बिखरना ही था। यह तो मैं पिछले दो दिनों मे देख ही चुका था कि वह परस्पर एक-दूसरे से सवाद करने की स्थिति मे कतई नहीं थे। उन दोनों के बीच किसी तीसरे व्यक्ति का रहना एक तरह से अपरिहार्य था। वह तीसरा व्यक्ति कौन हो सकता था और उनकी असहजता को किम सीमा तक बर्दाश्त कर सकता था?

यह कैसी विचित्र विडबना थी कि पत्नी एक उमग भरी जिंदगी जीने को लालायित थी और पति को उस तरग का कोई आभास ही नहीं था। इस विचित्र परिस्थिति का मै अनजान मे साक्षी बन गया था।

मै रिक्शे मे बैठकर सोचने लगा कि वह क्या परिस्थितिया रही होंगी जब उर्मिला का पंडित मुकुद माधव से विवाह हुआ होगा। हो सकता है उर्मिला के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न रही हो और अनेक विवशताओं के चलते यह विवाह हुआ हो। इस प्रकार के अनमेल विवाह हमारे देश मे आए दिन होते ही रहते है बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि यहा प्रायः ऐसे ही विवाह होते है। पति-पत्नी से कही मानसिक जुड़ाव और पारस्परिक समझ न बन पाए तो विपर्यय को टाला नही जा सकता और कदम-कदम पर विग्रह देखने को मिलता रहता है।

स्टेशन पर पहुचते ही मैं झपटकर उतरा और रिक्शा चालक को भाड़ा चुकाकर टिकट खिड़की पर जा पहुचा। मैने हडबडाते हुए किसी तरह टिकट खरीदे और मेरी प्रतीक्षा में पुल के पास खडे पति-पत्नी को साथ लेकर पुल की सीढ़िया चढने लगा।

हम लोगो ने अभी गाडी मे पाव रखे ही थे कि गाडी चल पडी। यह गाड़ी नई दिल्ली स्टेशन तक जाती थी और बीच मे भी दो-तीन स्टेशनों पर रुकती थी। यो हम तिलक ब्रिज पर भी उतर सकते थे और मिटो ब्रिज पर भी।

पडित जी सीट पर बैटते हुए बोले—"बड़ी आपा-धापी में गाड़ी पकड़ी। यहा महानगरों के जीवन मे व्यर्थ की भागदौड ही ज्यादा है। अपना वहा का जीवन क्रम बहुत शाति से तथा निर्विघ्न चलता है। यहा उसका एकदम उल्टा है।

मै बोला—"इस जीवन की भी अपनी एक शैली तो है ही। भले ही आपको यह न रुचे मगर लाखो मनुष्य तो इसी भागमभाग में जीते हैं।"

"यहा रहने वाले भी जीवन की उन्ही आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए काम करते हैं, जो हम छोटे नगरों के लोग बिना किसी हड़बोग के शाति से पूरी कर लेते है। फिर मेरी समझ में यह नही आता कि लोग बबई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास जैसे बड़े और जनसंकुल नगरों की ओर क्यो दौड़ लगाते है।"

मै बोला—"यहा कोई शौक से नही आता पडित जी! जब लोगों को कस्बो और गांवो में जीविका चलाने का न कोई साधन मिलता है न अवसर तभी तो उन्हे महानगरो की ओर दौड़ना पड़ता है। आपको मालूम होगा, कलकत्ता में लगभग एक लाख हथरिक्शा चलाने वाले रिक्शा चालक है। उनको मई जून के महीने में तारकोल से पिघलती सडकों पर नंगे पाव एक से एक भारी सवारी ढोते देखकर दिल दहल उठता है। यह सारे लोग बगाल और बिहार के देहात से ही आते हैं। यदि उनके लिए गांवों में पेट भरने का कोई साधन हो तो फिर उन्हें महानगरों में इस तरह नारकीय जीवन जीने की क्या आवश्यकता है!"

पंडित को कुछ सोचते हुए पाकर मैंने हंसकर कहा—"आप पति-पत्नी दोनो ही महाभाग है कि आप दोनों को छोटे नगर में ही सम्मानजनक पद और पदवी प्राप्त है।"

"हां, यह बात तो आपने ठीक कही। मुझे यदि इस नगर मे नौकरी मिलती तो मेरा दम घुट जाता और शायद छोडकर भागना ही पड जाता।"

मैं बोला—"दिल्ली तो देश-विभाजन के बाद ही बेपनाह फैली है। पहले यहा जितनी जनसख्या थी अब लगभग उससे तीस-पैंतीस गुना अधिक होगी।"

वह बोले—"राजधानी का आकर्षण जो ठहरा।"

मैंने कहा—"नहीं वह बात नहीं है। पजाब से उजड़ने वाले लोगों के लिए दिल्ली और उसके आस-पास के स्थान ही निकट पड़ते थे, इसलिए इधर-उधर फैलने के बजाय वह पहले यहीं आए। फिर यहां रोजगार के अवसर भी अन्य स्थानो की बनिस्बत कहीं अधिक थे।"

"पर अब तो सारे महानगर नर्क समान हैं। पता नहीं इनकी सुरसामुखी वृद्धि कहा जाकर रुकेगी।" पंडित जी ने अपनी घनी मूंछो पर उंगली फेरते हुए कहा।

"जनसंख्या का जिस तरह अकगणितीय विस्तार हो रहा है उससे तो यही लगता है कि महानगरों को जनसंख्या की महामारी से कोई निजात मिलने वाली नहीं है।

पंडित जी के चेहरे पर आत्मतुष्टि का भाव उभर आया। वह मुदित भाव से बोले—"हमें तो अपना एम.पी (मध्य प्रदेश) ही भला लगता है जहा न किसी किस्म

की भीड़-भाड़ है न अफग-नफरी।" इसके साथ ही उनकी नजर दूसरी ओर मुंह किए बेठी उर्मिला की ओर चली गई। वह उसको इगित करके बोले—"अब इनके नगर भोपाल को ही लीजिए, दिनोंदिन भीड बढती जा रही है। पंद्रह साल पहले वाली बात अब वहा भी नही है। भीड बढने से किसी भी नगर की अपनी सस्कृति और चरित्र सर्वप्रथम हताहत होते हैं। लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना और दिल्ली जेसे शहरों का जो खास मिजाज, आचार-व्यवहार और बोली बानी अलग से नज़र पड जाती थी अब कहां बाकी रह गई है।"

मैं बोला—"यह सब सीमाहीन बढ़ती जनसख्या का दबाव है।"

पंडित मुकुंद माधव आत्ममुग्धता से बोले—"कम से कम हम लोग तो इस भीड बढाने वाले दोष से बचे ही हुए हैं।"

मैंने पूछा—"वह कैसे?" दरअसल में यह भूल गया था कि अभी वह निस्संतान हैं।

मुकुंद माधव की बात का उर्मिला पर विचित्र प्रभाव हुआ। उसने पीठ घुमाकर उनकी ओर एक घृणापूर्ण दृष्टि डाली और धीमे स्वर मे बोली—"दोष से बचने का श्रेय लेना बड़ा सरल है।"

उर्मिला का आवेशजनित चेहरा देखकर मैं सन्न रह गया। क्या पंडित मुकुद माधव संतान उत्पन्न करने में अक्षम थे या वह उत्पन्न करना ही नही चाहते थे। मेरे लिए सही स्थिति का अनुमान लगाना मुश्किल था।

मैंने मुकुंद माधव से परिहास मे कहा—"हम भी आप जैसे ही हैं।"

उर्मिला बोली—"आप हम जैसे नहीं है। आपने किसी की जिंदगी खराब नही की।"

उर्मिला के प्रहार से पंडित मुकुंद माधव तिलमिला उठे पर उन्होंने मुह से कुछ नहीं कहा।

मै भी चुप होकर बैठ रहा क्योकि बातों मे से जो भी बातें निकलतीं उनकी ध्वनि अनर्थकारी ही होती।

इसी समय स्टेशन आ गया। मैंने जल्दी मचाते हुए कहा—"शीघ्रता कीजिए, यहां गाडी एक मिनट से ज्यादा नहीं ठहरती।"

9

मिटो ब्रिज स्टेशन से बाहर निकलकर हम तीनो शंकर मार्किट होते हुए सुपर बाजार के सामने जा निकले। मैंने सोचा इन लोगों के साथ दिल्ली की बदहवास दौडती बसो मे तो चढना आसान नहीं होगा इसलिए टैक्सी कर लेने से ही भीड-भम्मड़ से बचा जा सकता है।

इसी समय इंडिया गेट की ओर जाने वाली एक बस सुपर बाजार स्टैंड पर आकर ठहर गई।

मैने पडित मुकुंद माधव से कहा—"इस बस में कोई खास भीड नहीं है—बहुत-सी सीटे खाली पड़ी है। अगर आप ठीक समझें तो हम इसी बस पर सवार हो लें।"

पडित जी के जवाब देने से पहले ही उर्मिला ने जल्दी से कहा—"इसमें किसी से पूछने या राय लेने की क्या जरूरत है फौरन चढ लीजिए। टैक्सी मे पैसा फूकने का क्या मतलब?"

पंडित जी भी बस की ओर लपकते हुए बोले—"हा-हां चलिए चलिए। बडे नगरों में तो आमतौर से बसो में ही यात्रा की जाती है। फिर दूसरा चारा भी क्या है बस के अतिरिक्त?"

मैने बस मे चढते-चढते कहा—"चारे की तो यहां कोई कमी नही है। एक चारा तो यही है कि नज़दीक मे ही टैक्सी स्टैड है। इसके अलावा तिपहिए (आटो) तो सामने से ही धडाधड़ गुजर रहे हैं।"

उर्मिला सबसे पहले बस में चढ़ी थी—वह गलियारे में आगे बढ़ते हुए बोली—"मुझे तो यह बस ही सबसे ठीक लगती है—रुपये दो रुपये मे कितना ही घूम लो। टैक्सी में अच्छी खासी रकम टूट जाती होगी।"

आगे की सीटों पर एक 'महिला सीट' पर कोई अधेड़-सी औरत बैठी थी। मैंने उर्मिला से कहा—"मैं और पंडित जी पीछे बैठे जाते हैं, आप उधर आगे जाकर बैठ जाओ।"

उर्मिला हम लोगों से कई सीट आगे बैठी थी। पंडित जी ने अपनी जगह से जरा-सा उचकते हुए उधर देखा और मुझसे बोले—"यहां भी अमेरिका फ्रांस की तर्ज पर बहुमंजिला इमारतों का जाल फैल गया है।"

"क्या किया जा सकता है? भारत सरकार आए दिन न जाने कितने नए-नए दफ्तर खोलती चली जाती है आखिर उनको बरकरार रखने के लिए जगह की दरकार तो होगी ही।"

पंडित मुकुंद माधव बाहर की ओर आंखें किए इमारतों को देख रहे थे और बीच-बीच में हाथ उठाकर उनके नाम भी पूछते जाते थे।

वह अनजाने ही अपने स्थान से थोड़ा ऊपर उठते थे और यह देख लेते थे कि उर्मिला अपनी सीट पर सही सलामत बैठी है या नहीं।

मैंने परिहास किया—"उर्मिला जी एकदम ठीक बैठी हैं—उन्हें आप पूर्ण सुरक्षित समझिए।"

वह झेंपते हुए बोले—"नहीं-नहीं वह बात नहीं है।"

"फिर क्या बात है?" मैंने कहा।

"मैं सोचता था कि अगर वह भी हम लोगों के निकट बैठी होती तो आप उसे भी खास-खास इमारतों के बारे में बताते चलते। वहां तो वह अनजानी ही बैठी रहेगी।"

मुझे मुकुंद माधव की यह बात अच्छी लगी। मुझे महसूस हुआ कि चाहे बाहर से वह उर्मिला से कितने ही खिंचे हुए लगते हों मगर वह निरंतर सोचते उसी के बारे में हैं। बिल्कुल उसी तरह जैसे एक नास्तिक ईश्वर को लेकर हर वक्त सोचता रहता है फिर भले ही चाहे वह उसके अस्तित्व से इनकार करता हो।

मैंने देखा, उर्मिला भी बार-बार पीछे मुड़कर हमें देख लेती थी। हालांकि यह तय था कि हम उसे छोड़कर जाने वाले नहीं थे और बस से उतरने का दरवाजा भी आगे की ओर ही था पर छोटी जगह से, यहां महानगर में आने पर उसे खोए जाने का डर बराबर बना हुआ था। उसका यह डर अस्वाभाविक भी नहीं था क्योंकि अनजाने शहरों में आने पर किसी भी महिला को असुरक्षा का भय सताता रहता है। संकोच के कारण वह किसी से ज्यादा बातें अथवा पूछताछ भी नहीं कर सकती।

बस खिड़की से लगे बैठे पंडित मुकुद माधव बातचीत करते और बाहरी दृश्यो के प्रति उत्सुकता जाहिर करते बहुत सहज लग रहे थे। उनकी आंखों में एक सैलानी का उल्लास उमड़ता दिखलाई पड़ रहा था। उन्हें देखकर उस समय कोई यह सोच भी नही सकता था कि यह अपनी पत्नी के साथ व्यवहार करते समय एकदम असहज और ठस्स हो उठते हैं।

आदमी को वातावरण और विसंगतियो भरे प्रसंग कभी-कभी इतना दूसरा बना देते है कि उसके भीतर छिपी मानवीय संवेदनाओ का पता ही नही चल पाता। थोड़ी सहजता और वातावरण की जीवतता सबको मुक्त करती है और जिंदगी जीने योग्य दिखलाई पडने लगती है।

इसी समय हम लोगो से अगली सीट पर बैठी दो महिलाओं में से एक उठी तो मैंने उर्मिला को—जो बीच-बीच में बराबर मुड-मुड़कर पीछे देख लेती थी—आवाज देकर कहा—"उर्मिला जी यहां सीट खाली है—आप यहीं आ जाइए।"

उर्मिला ने वहां से उठने में झिझक अनुभव की। शायद उसे अपनी सीट से उठकर दूसरी सीट पर आ बैठने मे कुछ सकोच हो रहा था कि पता नही बस मैं बैठी ओर सवारिया उसके बारे मे क्या सोचेंगी। पर दोबारा कहने पर वह उस सीट से उठकर हम लोगो से अगली वाली सीट पर आकर बैठ गई।

उर्मिला के चेहरे पर भीड़ में फस गए बच्चे का-सा एक बेचारगी भरा भाव देखकर मुझे दया आई। मैंने कहा—"क्या बोटिंग करने का मन है। वहा नर्मदा मे तो कभी-कभी आप लोग नौका विहार करते ही होंगे।"

पंडित मुकुद माधव चौकते हुए बोले—"नौका विहार? यहां कोई नदी तो दूर-दूर तक नजर नही आती। यमुना तो हम लोग पहले ही बहुत पीछे छोड आए हैं।"

मैंने हंसकर कहा—"अभी आप देखेंगे कि यहां इस महानगरी मे लोग बिना नदी के भी नौका विहार करते हैं।"

वह विस्मय प्रकट करते हुए बोले—"बिना सर-सरिता झील आदि के कैसे नौका विहार होता होगा प्रभाकर जी?"

"होता है साहब-खूब होता है।" कहकर मैं अपनी सीट से उठा और उन दोनो से बोला—"उठ जाइए, हमे यहीं उतरना है।"

बस इंडिया गेट से थोड़ा इधर ही ठहर गई। उर्मिला और मुकुंद माधव हड़बडाते हुए से अपनी सीट से उठे और पिछली ओर जाने लगे। मैंने उन्हें रोकते हुए कहा—"उधर से नहीं हमें आगे के दरवाजे से उतरना होगा—पीछे की तरफ से

सवारिया आ रही है .

सीटो की पुश्तो को रेलिंग की तरह पकडते हुए वह उतरने वाली सवारिया के पीछे-पीछे आगे बढने लगे। जब वह दोनो बस से बाहर निकल गए तो मैं भी उतर पड़ा।

मुकुंद माधव बोले—"यहा तो दूर-दूर तक कोई नाव नज़र नही आती। हा, भव्य भवनो का विस्तार तो खूब दीख पडता है।"

मै मुस्कराते हुए बोला—"तसल्ली रखिए, भवनो के विस्तार के साथ जल विस्तार भी अभी दिखलाई पडेगा।"

वह बोले—"चलिए, देखते है यह चमत्कार भी। वैसे राजधानी मे तो कागज पर भी नावे चलती हैं।"

उर्मिला ने बिना उनकी ओर आंखें उठाए कहा—"कागज पर ही क्यो—कागज की नावें भी चलती है।"

"वैल सैड" कहते हुए मै उनके साथ-साथ चलने लगा। थोडी दूर चलते ही मैने एक-भव्य और विस्तार मे फैली इमारत की ओर संकेत करके कहा—"यह देखते हे--यह 'कृषि भवन' है।"

पंडित जी बोले—"कृषि कर्म करने वालों को तो झोपडियां भी मयस्सर नहीं है यहां कृषि भवन की स्थापना हो रही है। यही इस देश की विसंगति है जिसके कारण किसी दिशा में भी विकास होता नहीं दीख पड़ता।"

मै बोला—"यह आपका यानी दर्शन का विषय है। नाव मे बैठकर इस पर गहराई से सोचा जा सकता है।" फिर मैंने 'इडिया गेट' से सड़क तक आती वह नहरे दिखलाई जहां नावें तैर रही थी और कितने ही तरुण-तरुणियां, बच्चे, बुजुर्ग नावों में बैठे चप्पू चला रहे थे।

पंडित जी ने उधर आंखे उठाकर देखा और उपेक्षा से बोले—"हे भगवान्! कैसे बेचारे लोग है यहां के जो छटकी भर की नाव लेकर उथले पानी मे चप्पू चला रहे है।"

मैं बोला—"असली चीज भूख है, उसे शात करने के लिए जहां जो भी सबल प्राप्त हो जाए। यहां के निवासी जिदगी की व्यस्तताओ में इस कदर घिरे रहते हैं कि नदी नाव संयोग देखना उन्हें लबे वक्त तक नसीब ही नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में मन को भरमाने के लिए यह उथली जलधारा और यही हल्की-फुल्की नावे उन्हें एक बदली हुई—शायद खुश-गवार भी—जिंदगी दे जाती हैं।"

"यह इन बड़े-बड़े महानगरो की जीवन पद्धति का अभिशाप है।" पंडित जी

ने नाक-सिकोड़कर उपेक्षा से कहा।

मैं आगे बढ़ा तो पंडित जी और उर्मिला दोनों मेरे साथ घनी घास के लान पर चलने लगे।

उर्मिला ने पूछा—"क्या इतनी हरी और सघन घास यहा स्वय उग आती है?"

मेरे उत्तर देने से पहले ही पडित जी ने व्यग्य बाण छोडा—"यह भी सरकारी उपक्रम है। नैसर्गिक घास न इस तरह उगती है न उसका यह रग रूप ही होता है।"

मैंने पानी के किनारे पडी एक डोंगी ली और उसे पानी मे उतार दिया। उन दोनो के हाथो मे चप्पू देकर कहा—"अब आप नाव खेते हुए दिव्य दाम्पत्य का आनद ग्रहण करे।"

उर्मिला बोली—"अच्छा तो आप किनारे खडे आशीर्वाद ही देते रहेगे। यह नहीं होगा। चप्पू उठाइए और नाव में उतरिये।"

पडित जी ने कहा—"नाव मे नहीं 'नाव पर' उपयुक्त वाक्य है।"

उर्मिला ने माथे पर बल डालते हुए पति की ओर देखा और बोली—"नौका विहार के आनद में वाक्य की शुद्धि से कोई बढोतरी नहीं होने जा रही है।"

मैंने और उर्मिला ने अपने हाथो में पकडे हुए चप्पू चलाने शुरू कर दिए। पडित मुकुद माधव ने कौतुक भाव से चप्पू को हवा मे लहराया और बोले—"यह तो एक छडी जितना भी वजनी नहीं लगता। हमने जो लिलिपुटियनों के बारे मे कहानी पढी थी— सम्भवत आज पुनः उसकी पुनरावृत्ति हो रही है।"

मैं बोला—"इसका क्या रोना महाराज! हमारा युग ही बौनों का है। फिर यह चप्पू भी तो बरमान घाट (नर्मदा नदी का एक प्रसिद्ध घाट) की नावो के लिए नही बने हैं। जैसी नदी-वैसी ही नाव और उन्ही के अनुरूप चप्पू।"

मुकुद माधव बोले—"हां जी आपका कहना सही है। इन चप्पुओं को चलाने वाले हाथ भी कलम पकड़ने वाले बाबुओं और उनकी नाजुक बीवियो के हैं। वह बेचारे मन-मन भर के चप्पू चला भी कैसे सकते है।" यह कहते-कहते सहज ही उनका हाथ मूछो की तरफ चला गया और वह अपनी घनी मूछो पर उगलिया फिराने लगे।

वह नाव को किनारे ही डगमगाते देखकर बोले—"लगता है यह बेचारी मेरा भार सहन नहीं कर पा रही है।" और फिर विरक्ति दिखाते हुए उन्होंने हाथ में पकडा हुआ चप्पू किनारे पर फेंक दिया। वह उठते हुए बोले—"हमसे तो यह खिलवाड नही होगा—नौका विहार आप दोनो को ही मुबारक।"

वह किनारे पर उतरकर बोले—"ऐसा ही नौका विहार का शौक है तो कभी

मध्य प्रदेश में आइए। हम कराएंगे आपको जी भर नौका विहार। हमारे क्षेत्र में नदियों और जलप्रपातों का जाल बिछा हुआ है। भेड़ा घाट देखेंगे तो चमत्कृत हो उठेंगे आप। यह तो आप लोगों का खिलवाड़ ही है एक तरह का। जैसे दीवारों पर हरियाली उगाने का हास्यास्पद प्रयास।''

मैंने हसते हुए कहा—''ये क्या? आप संकट के समय हमें छोड़कर जा रहे है? इस समय तो हमें आपके जैसे एक सबल सिद्धहस्त नाविक की बेहद दरकार है। फिर यह भी तो सोचिए जरा कि जिंदगी के नाव के चप्पू तो बारी-बारी से पति-पत्नी दोनों को ही चलाने पड़ते है।''

लेकिन पंडित मुकुंद माधव की आंखों में वही सुबह वाली विरक्ति का भाव फिर उभर आया। वह बनावटी सभ्यता और छिछले मनोरंजनों पर लानतें भेजने लगे तथा उनका उपदेशक रूप खूब मुखर हो उठा।

मैंने और उर्मिला ने उस पर कोई ध्यान न देकर अपने-अपने हाथों में पकड़े चप्पू चलाने शुरू कर दिए तो वह पेड़ों की ओर जाते हुए बोले—''मैं उधर लान में बैठता हूं। आप इस पोखरी में मनोरंजन करें।''

उन्हें लंबे-लंबे डग भरते देखकर मैंने जोर से कहा—''अरे महाराज! आप उधर कहां भागे जा रहे है। इधर हमारी नाव डगमगाकर टेढ़ी हुई जा रही है। कम से कम तूफान में तो साथ छोड़कर न जाइए।''

पर उन्होंने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं, बराबर आगे बढ़ते चले गए। लान खूब दूर-दूर तक फैले थे और हर ओर कितने ही छतनार पेड़ उगे थे।

जाहिर था कि पंडित मुकुंद माधव उतनी देर तक तो लौटने वाले थे नहीं, जब तक मैं और उर्मिला नाव पर सवार थे।

मैंने उर्मिला से कहा—''लगता है पंडित जी इस नौका प्रसंग से खिन्न हो उठे हैं। हम भी छोड़ें यह खिलवाड़ और दूसरे दर्शनीय स्थल देखने चलें। उस स्थिति में तो वह हमारे साथ खुशी से चल ही देंगे।''

उर्मिला ने अपने पति की अप्रसन्नता पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह नाव में बैठकर चप्पू चलाते हुए पानी से खिलवाड़ करती रही। इस क्षण वह एक खिलन्दरी किशोरी के समान पुलकित और जीवंत दिखलाई पड़ रही थी। उसके अंगों में ऊभ-चूभ होते उल्लास को देखकर मैं विस्मित रह गया। मैंने पिछले दो दिनों में उसका इतना मनभावन स्वरूप एक बार भी नहीं देखा था—तब भी नहीं जब वह सिनेमा में मेरी बगल में बैठी थी और हम दोनों के कंधे और हाथ अनायास टकरा जाते थे।

मैंने कहा—"लगता है पंडित जी को इस जगह आना अच्छा नही लगा।"

उसने बेपरवाही से कहा—"उन्हे क्या अच्छा लगता होगा—यह मै और आप क्या स्वय भगवान् भी शायद ही जानता हो।"

उर्मिला ने कौतुक से पानी मे चप्पू पटका तो पानी उछलकर दूर तक जा गिरा। मेरी आंखे उसके मनमाने क्रिया-कलापों में उलझ गई। मैंने उस क्षण अनुभव किया कि यौवन जब सारी जकड़बंदियों को तोडकर उद्दाम हो उठता है तो उसका स्वरूप कुछ और ही होता है। वह एक गुनगुनाती हुई नदी का रूप धारण कर लेता है जिसकी अतल गहराइयो मे डूबा जा सकता है—उसके उच्छल प्रवाह में खुलकर तैरा भी जा सकता है। ऐसे क्षण किसी भी प्रकार की वर्जना उसे बाढ पर आई स्वच्छन्द सरिता का रूप दे देती है।

उर्मिला अपनी अनभ्यस्त गोल कलाइयो को घुमा-घुमाकर पानी मे इधर-उधर चप्पू मार रही थी। पानी उछल-उछल कर उसकी साडी भिगो रहा था। उसके गोरे निखरे चेहरे पर भी पानी की बौछार गिर रही थी। मुझे लग रहा था जैसे वह दीवानगी की हद तक इन थोडे से क्षणों पर आसक्त हो उठी हो। मारक दबावों से शायद वह सारा हिसाब चुकता कर लेने को तत्पर थी।

मेरी आंखें जैसे उसकी उन कलाइयो पर बंधकर रह गई थी जिन्हें हरे काच की चूडिया काफी ऊपर तक घेरे हुए थी और चप्पू चलाते रहने से वह निरतर ऊपर-नीचे हो रही थीं। नाव जब टेढी होने लगती तो उर्मिला भयभीत होने का भ्रम पैदा करने लगती थी।

सहसा मेरी आंखें उसकी ओर से हटकर दूर सघन वृक्षो की छाया मे लेटे पडित मुकुंद माधव की ओर चली गई। मैं उन दोनो को एक-दूसरे से बहुत दूर और भिन्न मनोभावों मे जीते देखकर सिहर उठा। क्या वास्तव मे उर्मिला अपने पति को पूरी तरह विस्मृत करके आत्म विनोद मे लीन थी या फिर वह उसे भूल जाने का भ्रम पैदा कर रही थी।

नाव आगे बढकर अतिम छोर तक जा पहुंची तो मैंने पूछा—"क्या अब चले? और भी कई जगह घूमना है।"

उसने जैसे मेरी बात सुनी ही नही। ताबड तोड चप्पू पटकते हुए उसने इतना पानी उलीच दिया कि मेरे कपडे पूरी तरह भींग गए। इस पर वह खिलखिलाकर हंसने लगी तो मैं बोला—"अरे यह क्या? तुमने तो बिना मौसम ही होली खेल डाली।"

अपनी खिलवाड जारी रखते हुए उसने कहा—"होली का कोई मौसम नहीं

होता लेखक जी। जो जव चाहे होली, दीवाली मना सकता है और जब चाहे अपने ऊपर पतझर और वसंत ला सकता है। डूबकर जीने की लालसा का न कोई खास मोसम होता है न उम्र। क्या सारी प्रकृति मे भी वसत सिर्फ एक ही समय आता हे? सारी दुनिया घूम जाइए, अलग-अलग स्थानो पर ऋतुभेद दिखलाई पडेगा फिर हम एक ही जगह के होकर क्यो रह जाएं?"

मैने चकित होकर उसकी बात सुनी। कई क्षणो तक मै उसके वाक्यो की भुल-भुलैया मे खोया रहा और फिर बोला—"हां जिस तरह दर्शनशास्त्र समझने ओर उसकी व्याख्या करने की कोई निश्चित आयु नहीं होती।"

"समझ और व्याख्या की उम्र तो होती है मगर अनुभव और अनुभूति शायद आयु की मोहताज नही है।"

"जो हो, तुमने जो बसंत और उत्सव अनुभव करने की बात कही है वह बहुत गहराई तक अटकाती है। क्या कोई दार्शनिक भी कह पाता वह जो तुमने इतने अनायास ढग से कह दिया।"

वह जैसे मेरे कथन से एकाएक सजग हो उठी। एकटक मुझे देखकर बोली—"बना रहे है न मुझे?"

"अरे भाई इतने अनुपम ढग से निर्मित को कोई और क्या बना सकता है?"

"अच्छा यह तो अव रहने ही दीजिए—कृपया एक अच्छे मल्लाह की तरह नाव किनारे से लगाइए। मै तो दिल्ली आते हुए इसीलिए सकुचा रही थी कि जहा पानी भी पेसो मे बिकता है वहां पानी, पेड-पौधों के दर्शन कैसे होंगे। मुझे बहुत अच्छा लगा यहा आकर। हरियाली तो चारों ओर फैली ही पड़ी है—नावों मे सैलानी भी दीख रहे हैं।"

मैंने यो ही पूछा—"क्या तुम दिल्ली शहर में रहना पसंद करोगी?"

"क्यो नहीं? क्या यहां आदमी नहीं रहते? आदमी जहां भी कुछ दिन रह लेता है—वही जगह अपनी लगने लगती है। स्थानो के साथ भी हमारी बाते होती है।"

"स्थानो के साथ कभी तुमने बाते की है?"

"बहुत बार! अपना घर छोड़कर जब आप कहीं बाहर जा रहे हों तो फिर थोडे दिनो बाद ही उस घर मे, उसी वातावरण में लौटने को क्यों उतावले होने लगते है?"

"अपनी पहचान अपने ही लोगों में तलाश करने के लिए लौटना स्वाभाविक है। बाहर जाकर हम अपनी पहचान जो खो बैठते हैं?"

उर्मिला बोली—"नही यह पूरा कारण नही है। कुछ दिन आप अपने नगर-परिवेश और लोगो से कटकर कही और जाएं तब फिर एक नई पहचान बन ही जाती है लेकिन वह घर, वह वातावरण आपको बाहर नही मिल पाता इसीलिए आप अपने घर और उसकी दीवारो-द्वारो से मिलने की उत्कट इच्छा लेकर फिर फिर लोटकर आते है। इसका निश्चित उदाहरण यह है कि विदेशो में जा बसने वाले—चाहे अपने गाव या कस्बे मे उनका कैसा भी गया गुजरा मकान हो—वहां बडी हाम से लोटकर आते है। उस घर की दीवारो से उनके दुःख-सुख की न जाने कितनी स्मृतिया जुडी हुई होती हैं।"

मैने कहा—"यह तो तुम ठीक ही सोचती हो मगर पंडित जी तो शायद इस तरह नहीं सोचते। उन्हे तो बडे शहरो की भागम-भाग और भीड-भाड़ से सख्त नफरत है।"

मैंने पंडित मुकुंद माधव का उल्लेख किया तो उसकी आखें दूर घास पर लेटे पडित जी की ओर चली गई। वह विनोदी स्वर मे बोली—"देख रहे है मेरे पति कितने समझदार है। हम और आप जो बच्चों वाली यह निरर्थक उछल-कूद कर रहे हैं उसे वह कितने दया भाव से ले रहे है। लंबे-चौड़े लॉन की हरी घास पर लेटकर अनत नीले आकाश को निरखना कितना आह्लादकारी है—यह तो वही जानते है। मेरे जैसी अभद्र अनाडी उसकी महिमा को कैसे जान समझ सकती है?"

अपनी बात खत्म करके वह इस तरह-मुक्त भाव से हंसी कि मैं समझ नही पाया कि वह परिहास मे कह रही थी अथवा व्यंग्य मे।

"चलो चप्पू चलाने से तुम्हारा मन तो बदला।"

"मेरा मन तो वास्तव में अभी कहीं जाने को नहीं करता। मै तो यही चाहती हू कि सब जगह जाना स्थगित करके यही नाव मे इधर-उधर हिलती डुलती रहूं।"

मैने पाया कि उर्मिला मे एक विशिष्ट प्रकार की तल्लीनता का भाव था। वह जिस ओर भी झुक जाती थी उसी में परम एकाग्रता और रसमग्नता की स्थिति बना लेती थी।

मैने पूछा—"अभी तक भी इस खिलवाड से तुम्हारा मन नही भरा। दोपहर हो रही है। मै सोचता हू कि अब आप दोनों को खूब भूख लग आई होगी। कही पडित जी यह न सोचते हों कि मैने उन्हे भूखा मार डाला। सुबह भी उन्होंने कुछ अधिक तो खाया नही था।"

"प्लीज अभी किसी भूख का हवाला देकर इतना अच्छा और सहज सुलभ आनद छिन्न-भिन्न मत कीजिए। गर्मी का दिन तो बहुत वडा और खूब लंबा होता है। सारा दिन और सारी शाम पड़ी है, बहुत कुछ घूमना-फिरना हो सकता है। पेडो की शीतल छाया मे यह छोटी-सी नौका हिलाते-डुलाते मुझे खूब अच्छा लग रहा है।"

मैंने फिर उसे नहीं छेडा। वह पानी की सतह पर चप्पू पटक-पटककर खूब पानी उछाल रही थी। मै उसके पास किनारे पर ही खडा उसका खिलवाड़ देख रहा था। यह उर्मिला मुझे पिछले दिन की उर्मिला से एकदम अलग लग रही थी। उसने अपनी साडी और मेरे कपडे काफी भिगो डाले थे।

छोटे शहरो मे रहने वाली महिलाएं प्राय पतियों की अनुगामिनी होती है। उनकी पसंद और रुचिया भी अक्सर अपने पतियो जैसी ही हो जाती है। अपना स्वतत्र मिजाज और तेवर भी नही रह पाता। उनके निर्णय भी वहुत कुछ वही होते हैं जो उनके पतियों द्वारा लिये जाते हैं। जहा जिदगी बहुत धीमी गति से चलती है वहा जोखिम से बचते हुए एक अलग ही तरह की जीवन शैली निर्मित हो जाती है।

जब मैं कई मिनट तक किनारे पर चुपचाप खडा उसका क्रिया-कलाप देखता रहा तो वह मेरी ओर मुखातिब होकर बोली—"आपको यह सब अच्छा नही लग रहा है न?"

"जो तुम कर रही हो अगर यह भी मुझे अच्छा नही लगेगा तो फिर अच्छा लगने को रह ही क्या जाएगा? मेरे पास मूवी कैमरा होता तो मै तुम्हारी इन सब मनभावन अठखेलियों पर एक फिल्म ही बना डालता।"

"सच्ची?" उसने इतने भोलेपन से पूछा कि मैं उसे देखता रह गया।

"सच्ची नहीं एकदम सच्ची। जो कुछ दोबारा देखने का लोभ हो और उसको देख सकने की बाद मे कोई संभावना शेष न रह जाए उसको कहीं कैद करके सुरक्षित कर लेने को किसका जी नही चाहेगा।"

वह गहरे सतोष से मुस्कराई पर अगले क्षण ही उसने एक लबी सांस खींचकर कहा—"पता नहीं आदमी को कहां क्या मिल जाए।" फिर वह एकाएक गंभीर हो आई और वोली—"हम कभी तय नही कर पाते कि वास्तव में हम क्या चाहते हैं।"

मै बोला—"क्यो तय करे? जब जो मिल जाए उसी का स्वागत करना ठीक है शायद।"

"पर यह नहीं हो पाता। हम भीतर से स्वीकार करके ही सतुष्ट हो सकते हे।" फिर एक क्षण ठहरकर बोली—"बहस लंबी हो जाने के डर से अब मै यह बचकानापन छोड देती हू। चलिए चले, पता नहीं वह क्या सोचते होग।"

मैंने घडी देखी डेढ बजने वाला था। उर्मिला डगमगाती नाव से बाहर निकलने को हुई तो नाव किनारे की तरफ से पूरी झुककर टेढी हो गई। मैंने आगे बढकर उसका हाथ पकडा और किनारे की ओर खीच लिया इस हड़बडी में वह मेरी ओर खिचकर मेरे कधे से आ लगी।

तुरत अलग हटते हुए बोली—"मैंने आपको भी पानी मे गिरा दिया होता।"

मैं हंसकर बोला—"कोई बात नही, डूबने लगता तो तुम्ही पर इल्जाम आता।"

उसने शरारत से मेरी ओर देखकर कहा—"यह अखबार में एक बड़ी सनसनी खेज खबर बन जाती और हत्यारिन का फोटो भी छप जाता।"

हमे अपनी ओर आते देखकर पंडित मुकुद माधव भी घास के बिछौने से उठकर खडे हो गए।

10

वहा से चलकर हम लोग एक खुले रेस्त्रां मे गए और मैंने पंडित मुकुद माधव से कहा—"पडितजी चाय तो आप पीएंगे नहीं। गर्मी बहुत ज्यादा है—इतनी तेज धूप में कोई ठडा पेय ही ले लीजिए।"

वह बोले—"मेरे लिए तो ठडा पानी ही सर्वोपरि शीतल पेय है पर वह भी यहां क्या मिलेगा। घर से निकलते समय मैंने जो कुछ खा-पी लिया मेरे लिए तो वही यथेष्ट है। हां, आप दोनो जो चाहे खाएं पीएं।"

मैने उर्मिला का चेहरा देखा। उस पर फिर से खीझ और तनाव के भाव उभरने शुरू हो गए थे। दस मिनट पहले की चुहलभरी मस्ती पूरी तरह गायब हो चुकी थी।

मैने बैरा से दो प्याले चाय और अच्छे बिस्कुट लाने के लिए कहा और पंडित मुकुंद माधव की अनमनी सूरत देखकर बोला—"आपने अच्छा किया जो नौका विहार नहीं किया। आराम से घटे भर की नीद निकाल ली।"

"हां, मैंने तो एक झपकी ले ली। पर उन लोगो को क्या कहा जाए, जिन्हें झख मारने मे ही आनंद मिलता है।"

निश्चय ही यह कहकर वह अपने मन की भड़ास निकाल रहे थे और उर्मिला को संतप्त करना चाहते थे। उर्मिला नाव में बैठकर जो अठखेलियां करती रही थी और मुक्तभाव से हसती बोलती रही थी, वह पडित जी से झेला नहीं जा रहा था।

मैने हसते हुए कहा   अर पडित जी यहा उथले पानी में झख मछली थी

उन्होंने तडपकर उर्मिला का चेहरा देखा और आवेश में बोले—"आपसे इस ठहरे हुए जल मे भी एक मछली नही फसाई जा सकी, यह मैं कैसे मान लू?"

मैंने सहमते हुए उनकी ओर देखा। वह और भी उत्साहित हो उठे। उनका यह आरोप प्रकारांतर से उर्मिला को गहरी पीडा पहुंचाने के लिए ही था। वह उर्मिला की नमतमाई मुद्रा देखकर और भी अधिक आक्रामक स्वर मे बोले—"ताज्जुब है कि आप जैसा कुशल खिलाडी इस दिशा में कुछ भी नही कर पाया।"

मैंने उनकी बात का उत्तर न देकर उर्मिला के सामने रखा चाय का प्याला उठाकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"पानी पीने से प्यास बढेगी। पानी न पीकर अगर गरम चाय पीयोगी तो फिर काफी देर तक प्यास नही लगेगी।"

"वह तो पुरानी कहावत है—गरमी ही गरमी को मारती है। आग बुझाने के लिए कुछ गरम तो होना ही चाहिए।"

मैंने उनके द्विअर्थी शब्दों की भीतरी टीस को और बढ़ाना उचित नहीं समझा। वह किसी पर पुरुष के साथ दो घंटे तक अपनी पत्नी का मुक्त भाव से रहना पसद नहीं कर पाए थे। उर्मिला की स्वच्छन्दता उनके लिए बडी भारी चुनौती भरी पराजय बन गई थी।

जल्दी से चाय खत्म करके मैं उठा और काउटर पर जाकर चाय के पैसे चुका आया। तब तक उर्मिला भी अपनी चाय समाप्त कर चुकी थी। मैंने उन दोनो को सबोधित करते हुए कहा—"अब आप लोग उठिए।"

पंडित मुकुंद माधव और उर्मिला दोनो मेरे पीछे चल पड़े। रेस्त्रां से बाहर निकलकर मैंने कुछ क्षण सोचा कि अब इन लोगो को लेकर कहां जाया जाए।

सडक पर पहुचते ही पडित जी ने पूछा—"क्या अभी आप लोगों का घर लौटने का इरादा नही बना?"

मैंने उनकी बात का उत्तर देने के बजाय सडक से गुजरती एक खाली टैक्सी को हाथ उठाकर रोका।

ड्राइवर ने टैक्सी रोककर दरवाजा खोला तो मैंने उर्मिला और उसके पति को पिछली सीट पर बैठने को कहा और स्वयं अगली सीट पर ड्राइवर की बगल में बैठते हुए कहा—"महरौली चलो।"

टैक्सी मे उर्मिला और पडित मुकुंद माधव परस्पर रूठे और ऐंठे हुए एक-दूसरे से अलग हटकर बैठे हुए थे। न चाहते हुए भी मै हठात् उन दोनों के बारे में सोचने को विवश था। दैहिक सामीप्य के बावजूद उन दोनों के बीच अनुल्लघनीय दूरी फैली हुई थी। एक बार मेरा मन हुआ कि मैं पीछे की ओर मुह घुमाकर कुछ बात चलाऊ

पर उस दुर्निवार टंडेपन के माहौल में मुझे कोई ऐसी बात ही नहीं सूझी जो मैं उन लोगों से कर सकता। जब स्थिति सहज सामान्य नहीं होती तो कोई बात भी नहीं सूझती।

मुझे सबसे ज्यादा आशंका यह थी कि वह बिफरे हुए पति-पत्नी कहीं टैक्सी में अगल-बगल बैठे हुए एक दूसरे से जूझने न लगें।

पर चलो खैरियत हुई। जब तक टैक्सी कुतुबमीनार के करीब पहुंची वह दोनों मुंह सिले बैठे रहे।

उर्मिला ने टैक्सी से बाहर आकर अपना पर्स मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—"आप किराए के रुपये निकालकर भाड़ा चुका दें। फालतू लोगों का बोझ आपके सिर पर क्यों पड़े।"

मैंने उसका पर्स अपनी बाजू में लटका लिया और जेब से रुपये निकालकर टैक्सी का किराया चुका दिया। बाद में उर्मिला को पर्स लौटाते हुए मैं बोला—"बहुत मौके आएंगे बहुत से रुपये देने को। आपका भारी-भरकम बटुआ तब तक के लिए अपना मुंह बंद रखे तो अच्छा है।"

"हां, बेचारे बटुए की क्या बिसात है कि जगह बेजगह अपना मुंह खोलता घूमे। ये तो आदमी ही बहुत है इस खोटे काम के लिए।" फिर एक उचटती-सी नजर पंडित माधव के चेहरे पर डालकर कहने लगी—"यह आपकी सरासर ज्यादती है कि हर जगह आप ही बिल का पेमेंट करते हैं। मुझे तो यह सोचकर ही शर्म महसूस होती है कि आप पर फालतू में कितना बोझ डाल दिया।"

उर्मिला ने 'हमें शर्म आती है' न कहकर 'मुझे' का प्रयोग करके अपने पति को जैसे स्वयं से काटकर एकदम अलग कर दिया और बोली—"कुछ भी हो, आगे से मैं आपको पैसे नहीं देने दूंगी।"

मैं हंस पड़ा—"अच्छा-अच्छा मत देने देना भई। यह कोई झगड़ने का मुद्दा नहीं है।"

वह बोली—"मैं आपको कसम दे दूंगी।"

मैंने जोर का ठहाका लगाया और बोला—"आय! अभी तक दुनिया में यह कसम जैसी चीज भी बाकी बची हुई है। मैं तो सोचता था, कसम-वसम जैसी चीजें कब की लद चुकी होंगी इस दुनिया जहान से।"

मैंने कुतुब की लाट की ओर बढ़ते हुए गाइड के अंदाज पर कहा—"तो मेहरबान-साहेबान जरा गौर से सुनिए। यह जो आसमान के सीने में आगोश बनाने को बेचैन, अजी मुश्शान इमारत आप देख रहे हैं—यह काफी कुछ देख चुकी है। जैसा

कि इसके नाम से जाहिर है यह कुतुबद्दीन एबक बादशाह की तामीर कराई हुई हिस्टोरिकल बिल्डिंग है।"

उर्मिला मेरी फिकरेबाजी वाली भाषा सुनकर हंसने लगी—"आप तो एकदम पेशेवर गाइड की तरह बोल रहे हैं।"

"क्या करे साहब, रोजी-रोटी का मुआमला जो ठहरा।" मैंने अपने चेहरे पर बेचारगी का भाव लाकर कहा।

पंडित मुकुंद माधव की आंखें कुतुबमीनार पर लगी हुई थी। उन्होने उधर से आखे हटाते हुए कहा—"मगर यह भी तो कहा जाता है कि यह मीनार पृथ्वीराज चौहान की बनवाई हुई है। उसकी प्रेयसी और पत्नी महारानी संयोगिता यमुना के दर्शन किए बिना पानी भी नही पीती थीं सो पृथ्वीराज चौहान ने अपनी प्राणेश्वरी के लिए यमुना दर्शन का यही उपाय खोजा और इसका निर्माण करवा दिया।"

उनकी शका पर मै हस पडा और बोला—"तो पडित जी एक बात तो बतलाइए कि जब तक सयोगिता पृथ्वीराज की प्राणेश्वरी नही बनी थी और कन्नौज मे रहती थी तो यमुना के दर्शन कहा से किया करती थी?"

पंडित जी इस बात का कोई उत्तर नहीं खोज पाए तो मैं बोला—"असल बात यह है कि कठमुल्ला हिंदू मानसिकता यह मानने को तैयार नहीं है कि इतनी शानदार मीनार का नाम किसी मुसलमान बादशाह के नाम से जाना जाए पर क्या किया जाए आम जनता आज भी इसे कुतुबमीनार ही कहती है। और यह इमारत सारी दुनिया मे इसी नाम से जानी-पहचानी जाती है।"

उर्मिला बोली—"अच्छा गाइड महोदय अब कुछ और भी तो बताइए। प्रियतम और प्राणेश्वरी का स्वस्ति वाचन खूब हो चुका।"

मैंने आगे बढ़ते हुए कहा—"जी हा और भी बहुत कुछ बतलाया जाएगा। पहले मार्गदर्शक का पर्स खोलकर मेहनताना तो चुकाइए। मैं कोई शौकिया गाइड का काम नहीं कर रहा हूं।"

पंडित मुकुद माधव मेरी और उर्मिला की बाते जैसे सुन ही नही रहे थे। वह हम दोनो को एक जगह ठहरा हुआ देखकर चौके और पूछने लगे—"क्यो जी यहा इतनी भीड-भाड़ क्यों इकट्ठी हो गई है—क्या इस जगह कोई मेला भी लगता है?"

कुतुबमीनार देखने के लिए रविवार को सैलानियों की बेपनाह भीड़ उमड़ पड़ती है। आज भी वैसी ही भीड थी। सैकडो लोग मीनार की सीढियों से ऊपर चढ रहे

थे और उतरकर आने वालो की संख्या भी कुछ नहीं थी मैने पंडित जी को बतलाया कि जो लोग बाहर से आते हैं उनके संबंधी उन्हे कुतुब की लाट दिखलाने के लिए जरूर लाते है। इसके अलावा पर्यटन के शौकीन—जिनमें देशी-विदेशी दोनो ही होते है—वह सब भी यहा जरूर आते है। वैसे तो रोज ही भीड़ होती है मगर आज रविवार होने की वजह से मेले जैसा दृश्य है।

कुतुबमीनार से थोडा हटकर अष्ट धातु के स्तभ के पास भी लोगो की खासी भीड जुटी हुई थी। कितने ही लोग बारी-बारी से धातु के स्तंभ को अपनी बांहो मे भरने की कोशिश कर रहे थे।

मैने पडित मुकुद माधव को कुतुबमीनार पर चढने के लिए उत्साहित करते हुए कहा—"पडित जी मीनार के ऊपर जाकर दिल्ली शहर का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलेगा। आपको यह बहुमंजिला महानगर एक तरह से बच्चों के घरौंदों सरीखा नजर आएगा।"

पर पंडित जी ने मीनार पर चढने के लिए कोई उत्साह नही दिखलाया। वह बोले—"व्यर्थ में इतनी सीढ़ियां चढ़ने का क्या लाभ? मुझे दिल्ली शहर का फैलाव देखने से क्या मिलेगा? अब तो आगे-आगे सारे शहर ही दिल्ली की तरह फैलते चले जाएगे। जब हम पशुओं की तरह जनसख्या बढाते चले जाएगे तो क्या होगा! चारो तरफ पशुओं के बाडों जैसी भीड ही भीड दिखलाई पडेगी। यहां आकर भीड़ का हिस्सा बनने के प्रति मेरी कोई रुचि नहीं है। लगता है दिल्ली में निठल्ले लोगों की कोई कमी नही है।"

मैने उर्मिला का चेहरा देखा। वह अपने पति के शब्दो के प्रति पूर्णतया उदासीन थी। वह बोली—"हमीं कौन से बडे कामकाजी और सार्थक लोग हैं जो हमे भीड का हिस्सा बनने में एतराज या परेशानी हो।" परोक्ष रूप से उसने अपने पति की बातों पर ही यह प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। पर उसने उनकी ओर आखे नहीं उठाई और मुझसे बोली—"चलिए प्रभाकर जी हम लोग तो ऊपर चढ़कर देखे ही। जब इतने जने ऊपर तक जा-आ रहे हैं तो कोई विशेषता देखने को मिलती ही होगी। सब लोग तो फालतू और पागल नहीं है।" कुछ क्षण ठहरकर कहने लगी—"मैं कौन सा यहा रोज-रोज आऊंगी। मुझे यहा लावेगा भी कौन। जनम जिदंगी मे एक बार आना हुआ है, जहां जो देखने को मिले मै वह देख ही लेना चाहती हूं।"

पंडित जी बोले—"अच्छा, आप लोग जो देखना सुनना है वह देखिए-सुनिए, तब तक मैं आस-पास घूमकर इस प्राचीन इमारत के खडहरो में घूम लेता हूं। आपको शायद मालूम नही कि मैं विद्यार्थी जीवन में एक बार सबके साथ पर्यटन के उद्देश्य

स भारत भ्रमण के लिए निकला था तो यहां भी आया था और कुतब की लाट ऊप तक देख आया था। तब इसकी सात मंजिलें हुआ करती थी।''

उर्मिला ने व्यंग्य से कहा—''आप भरे जग प्रलय। जब यह सब कुछ देख हं चुके है तो फिर सिवाय व्यर्थता के अब और क्या बाकी रह गया है? हा, खडहरे में घूम लेना शायद अधिक सार्थक हो। शायद वहा संयोगिता या दूसरी कोई मन भावन वस्तु हस्तगत हो जाए।'' अपनी बात कहकर उसने अपने पति पर एक कडी नजर डाली और निष्ठुरतापूर्वक हस पड़ी।

विद्रूप को मै जितना ही कम करना चाहता था वह उसी अनुपात मे बढ़ता चला जा रहा था। मैंने उर्मिला के व्यंग्य को काटते हुए कहा—''पंडित जी के पास स्वय इतनी अनमोल मणि है कि उसके रहते और कुछ अनमोल नही रह जाता। उसे छोडकर वह और कुछ हस्तगत करने की सोचे, इतने विवेकहीन वह नहीं है।''

पर उर्मिला को जैसे अपना आवेश और आक्रोश प्रकट करने का एक अचूक अवसर मिल गया। वह उसी पहले वाले अदाज पर बोली—''भले ही कोई मणि हो या रत्न पर जब वह हाथ लग जाता है तो उसके साथ भी काच सरीखा व्यवहार होने लगता है। उसे देखने वाली आखे तो सबको नही मिल सकतीं।''

अनजाने मे मेरी कलाई छूते हुए उसने आगे कदम रखा और बोली—''चलिए-चलिए, किसी के पीछे क्यो पडते हैं। कुतुबमीनार-ताजमहल और न जाने क्या-क्या तो विद्यार्थी काल मे देखा ही जा चुका है। जैसे उनके प्रति आकर्षण मर चुका है, वैसे ही बाकी सारी चीजों के प्रति निःशेष हो चुका होगा।''

तभी खंडहरों की ओर विदेशी जोडों को जाते देखकर उर्मिला ने संकेत किया—''देखिए कितनी विदेशी तितलिया और चटपटी चीज़े उधर जा रही है। इन्हे भी उन्हीं के पीछे जाने दीजिए। उधर अभी नवीनता की काफी गुंजाइश बाकी है।''

पडित मुकुद माधव उर्मिला के घातक प्रहारों से तिलमिला उठे लेकिन बलपूर्वक मुस्कराते हुए बोले—''देखता हू इधर-उधर वाले माल के प्रति इनका आकर्षण भी कुछ कम नही है। व्यर्थ ही कुतुबमीनार पर चढ़कर पैर तुडाई करेंगी—यह भी किसी नायाब माल की खोज मे इधर खंडहरों मे क्यो नहीं निकल जातीं?''

मुझे हर पल विस्फोटक स्थितियों का साक्षी होना पड़ रहा था। उन दोनों के बीच बात-बे-बात द्रोह की दरार बढ़ती ही जा रही थी। मैंने पडित मुकुंद माधव का

हाथ खींचकर कहा—"पडित जी उर्मिला जी के शब्द समस्त पुरुष जाति के प्रति मारक चुनौती जैसे हैं। मैं और आप दोनो मिलकर इन्हें दिखला देंगे कि इधर-उधर वाली चीजे हमारे लिए क्या बेचती है।"

मैंने पडित जी को सहज होने का एक अवसर दिया था पर वह तो जैसे बदला लेने की आग में जल रहे थे। भन्नाते हुए बोले—"प्रभाकर जी, मैं गलत चुनौतियां स्वीकार नहीं कर सकता, न झूठे सच्चे निराधार आरोप। यह मेरा स्वभाव नहीं है। यदि दूसरे गिरने लगे, पतित होने लगें, मार्गच्युत हो जाए तो मै वैसा नही हो सकता। भद्रता अथवा शील छोडकर कोई क्या बन जाता है—आप इस तमाशे के दो दिनों से साक्षी है।"

मैंने उनके चेहरे पर दुःख की परछाई उभरते हुए देखी। मुझे भीतर-ही-भीतर उसके बेचारेपन के प्रति गहरी कचोट-सी अनुभव हुई पर मैं उन्हे निर्दोष कैसे मान पाता? वह क्या उर्मिला को अपनी व्यग्यपूर्ण भाषा से उकसा नहीं रहे थे? अपनी सहजता खोकर वह अपनी पत्नी को सामान्य बने हुए देखना चाहते थे, जो एक असंभव बात थी। क्रिया की प्रतिक्रिया न हो यह कैसे सभव होता?

मैंने उन्हे समझाने की चेष्टा की—"देखिए पडित जी जब से आप यहां दिल्ली मे दाखिल हुए है बराबर पलायन की मनःस्थिति मे हैं। हम लोगो से दूर जा बैठते है या छोडकर भागने की कोशिश करते हैं। मैं मानता हूं कि इस बेहूदा और भीड भरे शहर मे आप बुरी तरह ऊब उठे हैं लेकिन निरतर असहयोग करते चले जाने से तो आपको शायद शिवमंगल सिंह 'सुमन' की वह कविता याद हो जिसमें उन्होने कहा है 'ससार है संसार है—रुकना यहां अच्छा नहीं।"

क्षण भर पहले जो विवशता—दैन्य और पराजय उनके मुंह पर दिखाई दी थी जैसे उन्होने उसे काट फेंकने की जिद ही पकड ली—"नहीं-नहीं, मैं ठीक हूं। मुझे कोई थकान-वकान नहीं है। आप इन्हे वह सब दिखलाइएगा जो यह देखना चाहती है। हम ही यहा कौन अकेले है—इस जन समुदाय में न जाने कितने लोग हमारी तरह उपेक्षित और अवांछित होंगे। अकेले आदमी का जीवन क्या ठहर जाता है—वह भी किसी-न-किसी तरह व्यतीत हो ही जाता है।" अपनी बात खत्म करके पंडित जी तैश में आगे बढ गए।

उसी समय उर्मिला को न जाने क्या चुहल सूझी उसने अपने कंधे पर पड़ा बैग उतारकर उनकी ओर बढाते हुए मुझसे कहा—"जब यह ऊपर जाने की तवालत नही उठा रहे हैं तो इस बोझ को यहीं सभालें। मैं इसे अकेली ही क्यो ढोती फिरू?"

हालांकि वह बैग जरा भी भारी नहीं था और न उर्मिला को उससे कोई परेशानी थी पर शायद उसे अपने पति को सौंपकर वह उनसे ईर्सा बहाने संधि करना चाहती थी।

उर्मिला के कटुता कम करने के इस प्रयास की मैंने मन-ही-मन सराहना की ओर हसते हुए बोला—"उर्मिला आप हैं बहुत होशियार।"

उसने मेरी ओर देखा और भोलेपन से पूछा—"इसमे आपको मेरी कौन-सी होशियारी नजर आई?"

"यही कि आपने पंडित जी के हाथ मे अपना बेग सौपकर स्वय को तो घूमने-फिरने के लिए स्वतत्र कर लिया और उन्हे बधन मे डाल दिया। अब वह जिधर भी जाएगे, सब यही सोचेगे कि बेचारे अपनी बिछुडी हुई पत्नी को ढूढते फिर रहे हैं।"

पडित मुकुद माधव ने मेरे परिहास को भी सहजता से ग्रहण नहीं किया। वह उसे दरगुजर करते हुए बोले—"ठीक है जी हम तो सामान ढोने वाले हम्माल की हैसियत से ही इनके साथ आए हैं। दिलजोई करने वालो की तो इन्हे कही कमी नही है। कुली की भी कोई कद्र होती होगी—हमारी तो उतनी भी नही हे इनकी नजर मे।"

सहसा वह आगे बढ़ते-बढते थम गए और मल्लिका के पर्स की ओर संकेत करके बोले—"पर्स भी तो कम वजनी नहीं है। इसे ढोने वाला भी तो कोई चाहिए ही होगा। यदि इसको मैं लेकर भाग जाने वाला नहीं हू तो फिर इसे देने मे ही क्या आपत्ति है?"

यह एक विषम परिस्थिति थी। उर्मिला के चेहरे पर एक क्षण के लिए उलझन दिखाई दी पर अगले ही क्षण उसने अपना छोटा-सा पर्स उनकी ओर बढा दिया।

उन्होंने पर्स पकड लिया तो उर्मिला ने उधर से मुह फेरकर कहा—"आइए चलें, देखे आपकी यह कुतुबमीनार क्या है—चढकर देखे तो सही। इन्हें तो मै गले पडा जंजाल लगती हूं। मेरे साथ रहते हुए तो इन्हें कुछ भी देखना-सुनना भला नहीं लगता।"

मै बोला—"आप भी तो हद करती हैं। मेरा खयाल हे कि आपने अगर उनका हाथ पकडकर कुतुबमीनार पर चढ़ने का अनुरोध किया होता तो वह यों मुंह फेरकर न चले जाते। जरूर ही हमारे साथ ऊपर तक चलते।"

"छोड़िए अब अनुरोध और आग्रह की बाते। यह जबरदस्ती की चोचलेबाजी

अव मुझसे नही होती। वहुत बार करके देख चुकी हू। जब कोई आदमी पत्थर की तरह सख्त, ठडा और बेहिस हो जाए तो उसे कहा तक खींचा घसीटा जा सकता है? फिर उस तरह की एकतरफा मन स्थिति हर वक्त कौन वनाकर रह पाता है? अब ये इकलखोर इधर-उधर टक्करें मारते घूमेंगे। इनका तो यह स्वभाव ही बन गया है।''

मैने कुतुवमीनार की सीढियो की ओर बढते हुए देखा कि पडित मुकुंद माधव खडहरों की दिशा मे वढते चले जा रहे थे और उर्मिला का बैग उन्होंने अपने कधे पर लटका लिया था।

शायद उर्मिला की आग्रहहीनता ने उन्हे और भी सख्त बना दिया था। मैने फिर उनका कोई उल्लेख नही किया। मै उर्मिला को और अधिक आहत नहीं करना चाहता था।

हम दोनो मीनार मे दाखिल हो गए और कम चौडाई वाली सकरी तथा ऊबड़-खाबड़ सीढियों पर चढ़ने लगे। कुछ लोग हमारे आगे चल रहे थे तो भीड का रेला हमारे पीछे से बढता चला आ रहा था।

उर्मिला के चेहरे पर कुछ क्षण पहले की कटुता-निराशा और विद्रूप का कोई चिह्न शेष नही था वह सहज होकर बोली—''यहां तो हजारो आदमी रोज आते होगे। इन सीढियो का भाग्य देखिए कि कैसे-कैसे लोगो के पाव इन पर पड़ते है। यह बोल सकतीं तो कितनी विचित्र-विचित्र बातें सुनातीं।''

''जरूर सुनातीं। क्या पता अब भी सुना रही हो—हम सबकी भाषा कहा समझ पाते है?''

''आप एकदम ठीक कहते है। अब आदमी ही हरदम अपने साथ रहने वालो की भाषा नही समझता तो मूक पत्थरों की व्यथा कौन समझ सकता है?''

साथ-साथ चलने वालो पर नजर डालकर उर्मिला बोली—''देखिए, लोगो मे ऐतिहासिक स्थलो को देखने की कितनी उत्कंठा है।''

''नही शायद उत्कठा उतनी नहीं है।''

''फिर?'' उसने मेरी ओर देखकर पूछा।

''असल मे उत्सुकता उतनी नही होती है। लोगो की एक खास मानसिकता होती है। वह जहा भी घूमने-फिरने जाते है, सारे महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध स्थानो को इसलिए भी देख लेते है कि अपने गाव या शहर लौटकर डीग हांक सकें कि उन्होने अमुक स्थान पर क्या-क्या देखा। दुनिया की यही मानसिकता सब कही होती है। बहुत थोडे-से लोग ऐसे होते है जो इतिहास के मर्म में गहरे उतरकर ऐतिहासिक

स्थला को देखते है।

उर्मिला ने आखे टेढी करके पूछा—"आपका खयाल है कि मै भी इसी दृष्टि से कुतुबमीनार पर चढ़कर अपनी पैर तुडाई कर रही हू?"

"नही, नही। भला मै आपके बारे मे ऐसा कैसे सोच सकता हूं।" और साथ ही मै हस पड़ा।

"आप हस क्यो रहे हैं? मेरा मजाक बना रहे हैं न?"

"अरे नहीं उर्मिला जी! मै वैसी जुर्रत कैसे कर सकता हू? और आपने तो यो भी यहां आने का कोई आग्रह नही किया था। वह तो मैं अपने मन से ही आपको यहा लेकर आया हूं।" फिर कुछ क्षण ठहरकर बोला—"जो हो उर्मिला जी, आप भी कम टची नही है—बात-बात पर रूठ जाती है।"

"आप जानते हैं कि कोई क्यों रूठता है—क्यों किसी पर रुष्ट होता है?"

"क्यों नहीं जानता? हालांकि मुझे जानने का अधिकार भले ही हो पर अवसर या पात्र कोई नही है।"

"बताइए न? क्या जानते हैं आप?"

"यही कि होता है क्रोध उसी पर जिससे कुछ अपना नाता है।"

"क्रोध कर सकने का रिश्ता बनाने से पीछे क्यों हट जाते हैं आप?"

"हटता नहीं हूं—डरता हूं कि कही गलत न समझ लिया जाऊ।"

"वाकई आप बहुत डरपोक हैं।"

मैने सीढी पर ठहरकर गौर से उसकी आंखो मे देखा तो वह जोर से हसकर बोली—"सीढियो पर पाव जमाकर चलिए अन्यथा डगमगा जाने का डर है।"

"नहीं मैं डगमगाऊंगा नहीं। मैं रहीम की यह बात मानता हू 'जो रहीम उत्तम प्रकृति का कर सकत कुसग!"

वह बोली—"रहीम जी ने आगे कहा है 'चंदन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजग।"

"आप ठीक कहती हैं, बिल्कुल यही कहा है उन्होंने।"

वह सीढियां लांघते हुए हांफकर बोली—"चंदन को ही तो विष नहीं व्यापता पर हमारी स्थिति तो अलग है।"

"वह कैसे?"

उर्मिला बोली—"प्रभु जी तुम चदन हम पानी वाली। हम ठहरे कडवा पानी। चंदन मे मिलकर उसे भी कड़वा कर डालेंगे।"

मैं बोला—"पानी कड़वा हो या मीठा—प्यासा तो पानी की ओर ही भागता है।"

"लेकिन उस पानी को पीकर पछताता ही होगा।"

मैने उसे शाबाशी-सी देते हुए कहा—"आपके संवाद तो किसी को भी निरुत्तर कर सकते है।"

"क्या करे? पता ही नही चलता कि कब मुंह से क्या निकल जाता है। उसका मतलब तो शायद मै भी नही जानती।"

"मिर्जा गालिब ने इसी स्थिति को लक्ष्य करके तो कहा है 'बक रहा हूं जुनू मे जाने क्या-क्या खुदा करे न समझा करे कोई।"

उसने अपनी लबी सास खीचकर कहा—"काश मै पागल ही होती।"

"पैदा करके देखिए वह भी हो सकता है मगर उसके लिए फिर न जाने क्या-क्या छोडना पड़ जाता है।"

"छोडना कुछ बुरा नही यदि कुछ छोडने से ही कुछ मिल जाए।" उर्मिला ने अपनी बात कहकर एक क्षण अपलक मुझे देखा। उस क्षणांश मे मुझे लगा कि मै अपने होश-हवाश गवांकर हवाओं में ऊचा उड़ता चला जा रहा हूं।

मैने दीवार पर अपनी हथेली टिका दी और जरा देर के लिए वही स्थिर होकर ठहर गया।

उर्मिला मुझसे दो सीढ़ियां आगे जाकर ठहर गई और पीछे घूमकर हंसी। उसके चेहरे पर भरपूर उल्लास उमड़ आया था। वह खूब हल्की और पुलकित लग रही थी। वह बोली—"देखिए मैं कितनी तेजी से ऊपर चढ़ती जा रही हूं।"

"ठीक है, मै उतना ऊपर नहीं जा सकता। आपका अनुगामी बने रहने मे ही सुखी और संतुष्ट हू।"

"अब लगे मुझे बनाने।"

मैंने उसकी बात का कोई उत्तर नही दिया और धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए उसके पास जा पहुंचा।

सबसे ऊपर जाकर हम दोनो एक साथ खड़े होकर नीचे का दृश्य देखने लगे। वह चिहुककर बोली—"ओफ्फो क्या चित्रलिखित-सा दृश्य है।"

मै बोला—"आख भर देख लीजिए। यही तो इस दृश्य का जादू है जो बस्तर तक से किसी को यहा खीच लाता है।

उर्मिला बच्चों की तरह किलकारी भरकर मेरे और नजदीक आ गई। बिल्कुल सटकर खडे होते हुए बोली—"मगर यहा से नीचे देखने पर यकायक डर भी तो लगता है कि कही नीचे न गिर पडूं? इतनी ऊचाई पर खडे होकर नीचे झांकने मे दहशत नहीं होती क्या?" यह कहते-कहते उर्मिला का सिर मेरे कंधे से आ

लगा—जेस वह बेहाश होने लगी हो।

मैंने कध पर उसका सिर सभालते हुए उसे सांत्वना दी—"नही गिरोगी नही। इस ऊंचाई तो हमेशा खतरनाक होती ही है। जो शिखर पर खडा होता है, नीचे देखना उसके लिए भयानक होता है। नीचे की चीजें उसे उनके सही आकार मे दिखलाई नही पडती।"

वह आखे झपकाकर बोली—"सही आकार? उसकी आप क्या बातें करते है। सही आकार मे बिल्कुल नजदीक और सामने की चीजे भी हमे कहा दिखाई पडती है? हम दूसरो का आकार अपने मन में ही तो तैयार करते हैं। यही कारण है कि हमारा मापदंड अलग-अलग वक्त पर भिन्न होता है।"

"यह तो तुम एकदम सही कहती हो। हम अपने साथ वाले आदमी के बारे म कुछ नही जानते। साथ वाले ही की क्या बात, हम अपने विषय मे ही कितना जानते हैं। बस जितना भर सामने दीख पड़ता है हमें वही संपूर्ण लगता है। किसके भीतर क्या कुछ छिपा है—इसे कौन जान पाता है। कितने ही दशकों तक साथ-साथ रहने पर भी हम एक-दूसरे से निपट अनजान बने रहते हैं।"

वह बोली—"मुसीबत तो यह है कि हम इस बात को बहुत देर तक महसूस भी नहीं कर पाते।"

मैं उसकी बात सुनकर हंस पडा और बोला—"मगर इससे भी बड़ी मुश्किल यह है कि जो हम जानते हैं, उसके अक्सर विरुद्ध चले जाते है।" मैंने तुरत अपनी बात का रुख मोड़ते हुए कहा—"यह मैंने एक सामान्य बात कही है। इसे व्यक्तिगत आक्षेप के रूप में मत लेना क्योकि वह हम सब पर एक समान लागू होती है। सोच और व्यवहार में अंतर अस्वाभाविक बिल्कुल नही है। मुंह से निकलने वाली बाते अक्सर बडी हो सकती हैं पर उन पर आचरण एक व्यावहारिकता का मुद्दा बन जाता है जो शब्द की शक्ति से हमेशा कमजोर साबित होता है।"

हमसे थोडा हटकर एक विदेशी टूरिस्ट नीचे के दृश्यों की दनादन तस्वीरें खीच रहा था। उर्मिला उसके क्रिया-कलाप को बड़ी तन्मयता से देख रही थी पर बाते मुझसे ही करती जा रही थी। वह बोली—"आचरण पर जो नही आ पाता वह मात्र एक जानकारी बनकर रह जाता है। प्राय: जानकारी को लेकर संतुष्ट हो जाने वाले ही इस दुनिया मे अधिक होगे यह तो आप भी मानेंगे।"

मैं बोला—"यही तो इस दुनिया में होता रहा है। ईसा के उपदेश यूरोप के सभी देशों में रात दिन गूंज-गूजकर धूम मचाए रहते हैं मगर वही यूरोप सारी दुनिया को मारक शस्त्र बनाकर बेचता है। उसके भयावह अस्त्र-शस्त्र ही दुनिया की सबसे बडी

मडी का निर्माण करते ह।

"ऊची-ऊची बाते बोलने मे किसी का क्या लगता है।" एक क्षण ठहरकर उसने नीचे निगाह डाली और बोली—"मालूम है अगर हमारे 'वह' इस समय यहा होते तो क्या कहते?"

मैंने पूछा—"क्या कहते?"

"यही कि आह! ऊंचाई ही चरम (या परम) सत्य है क्योकि यहा से वस्तुए अपनी संपूर्ण क्षुद्रता में दृष्टिगोचर होती है।"

उर्मिला ने चेहरा गंभीर बनाकर भौहो मे बल डालते हुए जिस अदाज मे यह बात कही, उसे देख सुनकर मै बेसाख्ता हस पड़ा। मैंने कहा—"लगता है पडित जी की अनुपस्थिति आपको गहराई से महसूस हो रही है। यही होता है जब आदमी सामने नही होता तो उसकी याद कुछ ज्यादा ही सताती है।"

"ये ल्लो इसमें याद सताने कहां से आ पहुची! मैने तो एक बात कही थी।"

"मै भी तो एक बात ही कह रहा हू। तुम्हारे पडित जी को पकड़कर सामने तो नही कर रहा हू।"

"मैने प्रसंगवश एक बात कही थी—आप उसे पकडकर ही बैठ गए। कई बार कुछ परिस्थितिया ऐसी दिखाई पड जाती है कि हम किसी का जिक्र कर बैठते है। इसमे लगाव या दराव वाली तो कोई खास बात होती नही है।"

"नही, मै ऐसा नही मानता। हमारे अवचेतन में वही स्थितियां और लोग होते है जिन्हें अपनी समझ से हम बहुत गौण या साधारण खयाल करते हैं पर असल मे वह हमारे मन में कहीं बहुत गहरे पैठे हुए होते हैं।"

"प्रभाकर जी! आप ठहरे लेखक। लेखकों का क्या है, वह हर बात मे मनोविज्ञान लगाने बैठ जाते है।"

"क्या करे, लगाना ही पडता है। मन के विज्ञान या मन मे ऊभ-चूभ होने वाली बातों से हम कैसे बच सकते हैं? हमारे जीवन का समस्त कार्य व्यापार तो मन की परिधि में ही आता है और मन द्वारा सचालित होता है। कहा जाता है कि किसी की हत्या करने का काम पहले हम मन मे ही करते है और बाद मे उसे वास्तविकता मे अजाम देते हैं।"

"हो सकता है। ऐसा ही होता होगा।" उर्मिला भौहो में बल डालकर बोली।

"निश्चय ही ऐसा होता है। इसमें होता होगा के लिए कोई गुंजाइश ही बाकी नहीं है। हम मुंह से कहते चले जाते है कि हमे किसी की परवाह नही है पर जिसके प्रति यह लापरवाही का भाव शब्दो मे व्यक्त होता है, हम निरंतर उसी के

विषय में सोचते चले जाते है। जब हमे देखकर कोई प्रशंसा या प्रसन्नता व्यक्त करता है तो हम भीतर ही भीतर खूब प्रसन्न और उत्साहित अनुभव करते है। उसकी श्रेष्ठता की कोई शिनाख्त हम नही कर पाते। उसकी साधारणता या असाधारणता से भी कोई फर्क नही पड़ता। आपकी साडी, जूडे में टके फूल या गले मे पडी नकली मोतियों की माला को अगर कोई दिलचस्पी की नजर से देख भर लेता है तो आपको अपने होने की गरिमा महसूस होने लगती है। इसके विपरीत यदि कोई आपको देखकर उपेक्षा से मुह फेर लेता है तो आप उपेक्षित और अपमानित अनुभव करने लगती है। फिर इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कौन है या उसका स्तर क्या है। किसी के इस प्रकार के व्यवहार से आपकी क्या कोई वास्तविक क्षति होती है?"

उर्मिला बोली—"मैंने इस पर कभी गहराई से कुछ सोचा नही है।"

"यह अलग बात है मगर व्यवहार मे बहुत कुछ वह होता रहता है जो हम नहीं सोचते। स्थितियो को इस बात से कुछ लेना-देना नही है कि आप क्या सोचते है। मैंने तो वह बात कही है जो लोक-व्यवहार से सबंध रखती है। यदि हम दूसरो की कतई परवाह नही करते तो फिर इतना बनते-सवरते किसके लिए है? मै घर मे जो कपडे पहनकर स्वस्ति अनुभव करता हूं उन्हे घर के बाहर निकलने से पहले क्यो बदल डालता हूं? क्या आप घर से बाहर जाते समय चार साड़ियो मे से उस एक खास साड़ी का चुनाव नही करती जो आपको बाहर जाते समय सर्वाधिक उपयुक्त लगती है—ग्लैमरस होने का भाव या भ्रम पैदा करती है। क्या आपका कभी मन नहीं होता कि आप अपने पति से यह पूछे कि मै बाहर जाने के लिए आज कौन-सी साडी पहनू? अगर आपके पूछने पर वह यही उत्तर दे दें। 'कोई सी पहन लो इससे क्या फर्क पड़ने वाला है।' तो क्या आपका मन बुझ नहीं जाता। इस उत्तर से आप उपेक्षित अनुभव नहीं करतीं?" मै जरा ठहरकर बोला—"कोई एक बात है इस छलिया मन की, हजार-हजार दास्ताने है देवी जी!"

उर्मिला ने मेरी ओर कटाक्ष करके कहा—"आपको तो नारी मन की राई रत्ती एक-एक खबर है। बता सकेंगे यह अनुभव आपको कहा-कहां से और कैसे-कैसे प्राप्त हुए है।"

"मैने तो कभी यह दावा नहीं किया कि मैने नारियो का कुछ भी नही जाना समझा। मैं कोई जगत् गुरु शंकराचार्य भी नही हूं। आपके साथ हूं तो आपके दाम्पत्य जीवन के भेद आपसे सीख रहा हू। इसी प्रकार सत्सग मे मै तुच्छ बुद्धि भी थोडा बहुत कुछ न कुछ जान ही लेता हूं।"

"लेखक और कवि तो कल्पना से ही बहुत कुछ सीख जाते हैं। उन्हे जीवन के वास्तविक अनुभव करने की जरूरत ही क्या है?"

"ऐसा नहीं है। कोई बडे से बड़ा रचनाकार भी अशरीरी नही हो सकता। देह प्रमुख है उसी से आत्मा चेतना-अवचेतना, स्वप्न और कल्पनाएं जुड़ी रहती है। हवा मे कोई नहीं रह सकता।"

"आप शरीर को कितना महत्त्व देते है?"

"पूरा महत्त्व देता हूं। बल्कि यो कहा जाना चाहिए कि महत्त्व देना ही पडता है।"

"तो फिर देह को देह चाहिए ही यह भी आप मानते ही होंगे।"

"बिल्कुल मानता हूं पर साथ ही यह भी मानता हू कि मुझे मन की स्निग्धता के साथ देह अभीष्ट है--केवल देह का उपभोग नही किया जा सकता। वह तो सब कहीं उपलब्ध है और बहुत आसानी से प्राप्त की जा सकती है।"

उर्मिला कुछ क्षण ठहरकर सोचती रही और लंबी सांस खींचकर उदासी से बोली—"काश! लोग यही समझ पाते। हमारे समाज में तो औरत को केवल मास पिंड का दर्जा हासिल है। मन के साथ उसे लेने-भोगने की किसे सुध है।"

मैं बोला—"सहवास निःसंग नही हो सकता।"

"लेकिन वस्तु जगत् में तो मैं यही देखती हू कि उसे बस एक दैहिक जरूरत भर माना जाता है।"

"वह तो पशु भाव ही हो सकता है। यदि हम दैहिक भोग को लेकर निःसंग हे तो यह बहुत चित्य है। हम उन्नयन से मुंह मोडकर पशु भाव की ओर वापस लौट रहे हैं।"

"यह जो हर छोटे-बड़े नगर में वेश्यालयों की संख्या निरतर बढती ही जाती हे—इसके लिए आप क्या कहेंगे?"

मै बोला—"छोटे-बडे नगरों मे ही क्यों, अब तो प्रच्छन्न रूप में गली-मोहल्लो तक में देह व्यापार हो रहा है।"

"फिर? आपका यह सोच क्या महत्त्व रखता है कि मन की तरंग ओर संगति से ही देह मिलन की सार्थकता है?"

मैने उर्मिला के इस चुनौती भरे प्रश्न को कई क्षणो तक मन में गुना और मुझे लगा कि वह समाज शास्त्रीय मुद्दो पर गहरी नजर रखती है। उसके खुलेपन से मुझे रचनात्मक प्रेरणा मिली। मैने कहा—"मन के सगीत से ही देह व्यापार जुड़े तो सार्थक है पर मनुष्य के जीवन में निरर्थकता और जड़ता का भी कम दखल नहीं है। हम

सब समाजचर्या से जुडे हुए प्राणी है। जब तक हमारा सामाजिक परिवेश उदात्त मूल्यो से मडित नहीं होगा—हम बहुत कुछ निरर्थक करते रहेगे और इसके साथ ही व्यर्थ भी होते चले जाएंगे।"

"आप व्यर्थ किसे समझते है? मेरे लिए जो कुछ व्यर्थ है क्या वही आपके लिए भी व्यर्थ है। सार्थकता और निरर्थकता भी तो अलग-अलग ढग से परिभाषित की जा सकती है।"

"व्यर्थ वह द्वद्व है जिसे लेकर हम निरंतर जूझते रहते है और कही कोई किनारा नही पाते।"

उर्मिला मेरे तर्क पर हसने लगी—"यह तो कोई बात ही न हुई। द्वद्व से ऊपर कोन उठ सकता है? प्राय: हम वही करते है जिसको लेकर बाद मे पछताते हैं मगर करते समय कभी बाद की नही सोचते।"

"पाशविक आनंद अपने आप मे पछतावे की भूमिका छिपाए रखता है। जो मन चाहता है वही तो आनद नही है—मन को भी संस्कारित करना होता है। मन तो बहुत कुछ और बहुत बार ऐसी आसक्तियों मे डूबा रहता है कि उनकी अभिव्यक्ति घोर गर्हित रूप धारण कर लेती है।" मैने अपनी बात को स्थूल रूप देते हुए हसकर कहा—"यह तो आपने सुना ही होगा—जिम्या ऐसी बाबरी बक गई सरग पतार, आप गई भज भीतरे जूता खाय कपार।"

मेरे कथन पर उर्मिला बच्चों की तरह ताली बजाकर हसने लगी। जब उसकी हसी थमी तो उसने पूछा—"यह तो आपने कमाल की बात कही—किसने कही हे यह दुर्लभ बात?"

"किसी ने तो कही ही होगी। पर जिसने भी कही है सार्वलौकिक, सार्वदैहिक और सार्वजनिक बात कही है। हमारा मन कैसे-कैसे बेढंगे खेल खेलता रहता है, इसको चरितार्थ करने के लिए इससे आसान शब्द नहीं मिल सकते।"

हम लोगों को कुतुबमीनार पर खडे-खडे काफी वक्त निकल गया था। सच तो यह है कि हम दोनों बातों में इतने खो गए थे कि आस-पास के विषय में सब कुछ विस्मृत कर बैठे थे।

सहसा उर्मिला ने अपनी कलाई घडी पर नज़र डालकर कहा—"अय यह क्या? अब तो चार से भी ऊपर का समय हो गया। बातों-बातों में हम देशकाल के बारे मे सभी कुछ भूल-भाल गए। अब हम लोग इस लाट से नीचे तो उतरे।"

मैं बोला—"चलिए! चढने मे ही देर लगती है। उतरने में क्या है—चुटकी बजाते उत्तर जाएगे।"

उर्मिला हस पड़ी—"हा उतरने मे क्या है। यही से छलांग लगा दे तो कुछ भी समय नहीं लगेगा।"

चेहरे पर बनावटी डर लाकर मै बोला—"भगवान के लिए कहीं सचमुच ऐसा न कर बैठना। पंडित जी मुझे सूली पर लटका देगे।"

"मेरे जाने से उन्हे क्या अतर पड़ने वाला है और बहुतेरी अभागी पडी है इस दुनिया मे।"

मैने उसके कधे पर हाथ रखकर कहा—"नही-नहीं, ऐसा नही कहते। हम नहीं जान पाते कि हमारे न रहने से किस किसको कितना फर्क पडता है। अपनी अवमानना और आत्म-भर्त्सना कभी नहीं करनी चाहिए—इससे आत्मबल क्षीण होता है।"

मेरी बात सुनकर उसने अपने कधे इस तरह सिकोड़े जैसे उसे सुबकी आई हो या कि एकाएक ठंड महसूस होने लगी हो।

मै और उर्मिला ऊपर आते लोगों की भीड से रास्ता बनाते हुए नीचे उतरने लगे।

11

मै और उर्मिला ने कुतुबमीनार से बाहर आने पर पडित मुकुंद माधव को खोजने की कोशिश की पर वह आस-पास कहीं दिखलाई नही पड़े।

मैंने कहा—"उन्होने खडहरो मे विचरने की वात कही थी। देखें, कहीं उधर ही होंगे। वह कैफेटेरिया में तो बैठने वाले है नही। हो सकता है किसी चबूतरे या फसील पर बैठ सुस्ता रहे हों।"

हम दोनों बाते करते हुए आगे बढ़ते चले गए। कुतुबमीनार के चारों तरफ फैली भीड़ भी अब तक काफी कम हो चली थी इसलिए उनके भीड में गुम हो जाने की आशंका भी नही थी।

बहुत सिरमारी करने पर भी वह कहीं नजर नही आए तो मै बोला—"लगता है पंडित जी इस जन-प्रवाह में कहीं खो गए हैं। उन्हें किस प्रकार खोजा जाए?"

इसी समय मेरी आखें उर्मिला के चेहरे पर चली गई। मैंने लक्ष्य किया कि उसकी आखो मे परेशानी उभर रही थी। मुझे लगा जैसे वह उनके खो जाने की बात से घबरा रही थी। मैने उसे तसल्ली देते हुए कहा—"वह कोई छोटा सा बच्चा तो हैं नही कि कही खो जाएगे। होगे इधर-उधर ही, आ जाएगे थोड़ी देर मे।"

मेरी बात से उर्मिला की परेशानी कम नही हुई। वह यहा वहा देखते हुए बोली—" पर उन्हे होना तो यही चाहिए था। क्या उन्हें पता नही था कि हम मीनार से निकलकर आएगे तो उन्हें कहां ढूढ़ेगे?"

मैंने उर्मिला को घबराहट से उबारने के लिए हसी मे कहा—"लगता है पडित मुकुद माधव आपकी ज्यादतियों से घबराकर पलायन कर गए हैं। मुझे तो यहा कुछ नल-दमयती वाला मामला नज़र आ रहा है। बस इतना ही अंतर है कि नल अपनी

प्राण प्रिया का घोर अरण्य मे सोते छोड़कर भाग गया था और हमारे पडित जी दिन-दहाड़े हजारों की भीड़ मे धता बताकर गुम हो गए हैं।"

मेरी चुहलबाजी का उस पर कोई असर नही पडा। वह पूर्ववत् उदास और उखड़े मूड में ही नजर आई। उर्मिला एक समझदार पढी-लिखी आधुनिक महिला थी। मेरी कुछ समझ मे नही आया कि वह उनको लेकर उतनी बेचैन क्यो हो रही थी। ज्यादा-से-ज्यादा वह घर लौटकर जा सकते थे। घर की चाभियों का उन्हे पता था ही कि जोखन जाते समय चाभिया किसको दे गया होगा। पर उसमे मुश्किल यही थी कि पनवाड़ी ने उन्हें घर की कुजिया नही सौपी तो उन्हे बाहर ही रहना पडेगा।

मैंने उर्मिला को घबराहट की मनःस्थिति से उबारने की कोशिश की—"अभी थोडी देर पहले हम लोग मीनार के ऊपर खड़े थे तो आप अच्छी-भली खुश खुर्रम थीं। मै समझ नहीं पा रहा हू कि आपका मूड एकाएक कैसे उखड़ गया?"

वह इधर-उधर की टोह लेते हुए बोली—"नहीं नहीं, मैं परेशान उस वजह से नही हूं कि वह खो गए हैं—या लौट गए हैं।"

"पर आपके चिंतायुक्त चेहरे से तो यही पता चल रहा है कि आप घबरा भी रही हैं और परेशान भी हैं।"

उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया और बोली—"क्या हम एक बार पूरी घेराबदी का चक्कर न लगा लें?"

"उससे कोई लाभ नही होगा। हम उधर दूर जाकर भटकते रहेगे और वह इधर से फिर कहीं खिसक लेगे। हम जिस जगह खडे है, लोग इधर से ही बाहर जा रहे हैं। बाहर निकलने वाले रास्ते पर रहकर ही उनपर निगाह रखना ठीक होगा।"

"पर हम यहां भी कब तक खडे रह सकते है। चलते-चलते वैसे भी काफी थकान हो रही है।"

"तो फिर सामने इस खुले रेस्त्रा मे बैठकर कुछ चाय-वाय या ठडा पीते है। आखें इधर रास्ते पर ही लगाए रहेगे।"

मेरे समझाने पर उसके चेहरे पर छाई हुई उदासी और परेशानी कुछ कम हुई और हम दोनों खुले हुए रेस्त्रां में जाकर कुर्सियों पर टिक गए।

पानी के गिलास रखने एक लडका हमारी तरफ आया तो मैंने उससे दो प्याले काफी लाने को कह दिया। उर्मिला की आंखें उधर रास्ते पर ही लगी हुई थी। मै बोला—"आप खुश होती है तो बहुत अच्छी लगती हैं। इस तरह मुह लबा करके बैठ

जान म आपका सारा आकर्षण फीका पड जाता है . अगर आप विद्रूपो को काट सकने में समर्थ न हो तब भी उन्हे अपने ऊपर हावी तो न होने दे। आपके पति दाशनिक है—पता नही किस रौ मे किधर निकल गए हो। घूम फिर आखिर लौटेंगे तो आपके पास ही जैसे 'उड़ि जहाज का पछी पुनि जहाज पै आवे' वाली नियति को तो वह काट नही पाएगे।"

उसने उदासी से मुस्कराकर मेरी ओर देखा तो मैने परिहास मे कहा—"मुझे जरा भी आश्चर्य नही होगा यदि मुझे यह पता चले कि पंडित मुकुद माधव महरौली के जंगल में किसी चट्टान के पीछे खरगोश वगैरह के बिल में चिंतनशील बैठे हो।"

रेस्त्रां मे हमारे आस-पास की कुर्सियों पर कितने ही विदेशी स्त्री-पुरुष बैठे चाय कॉफी और शीतल पेय पी रहे थे। उनमें से कोई भी उदास या चिंतित दिखाई नही पड़ रहा था। मैं उनकी ओर सकेत करके बोला—"उर्मिला जी, देखती है आप इन विदेशी सैलानियों को?"

"देखती तो हू पर उनमे देखने को ऐसा विशेष क्या है?"

"विशेष यह है कि वह इस देश के कोने-कोने मे फैले हुए है। सात समुदर पार करके आए है मगर उनमें से किसी के चेहरे पर उदासी और मलिनता नही है। इतनी दूर आकर भी उन्हें बेगानापन नही सताता। जहा जगह मिल जाती है वही वह रह और खा-पी लेते है। इसके विपरीत आप अपनी ही भूमि पर अपने ही देश मे इस बुरी तरह उखड़ी हुई हैं जैसे आपको निष्कासित कर दिया गया हो। असल मे हमारा दर्शन तो बात-बात में आनंद की दुहाई देता है और हम गमगीन और मनहूस बने रहने के लिए अभिशप्त है। यह कभी नहीं सोचते कि रोने के बजाय थोड से हसने और जीने के क्षण तलाश कर लें।"

बिना कहे ही वेटर काफी के प्यालों के साथ अच्छे बिस्कुटों की एक प्लेट भी ले आया तो मैने उर्मिला से कहा—"देखा, वेटर कितना समझदार है कि काफी के साथ अपने आप ही बिस्कुट भी रख गया! उसने अपनी अंत चेतना से समझ लिया कि आपको इतना घूमने-फिरने पर खूब भूख लग आई होगी।"

"खाक समझ लिया उसने मेरी भूख के बारे में। मालिक को यह दिखलाने के लिए वह ग्राहको से कितना अधिक पैसा वसूल करवाकर मुनाफा दिला सकता हे—इसी मारे महगे बिस्कुट रख गया है।"

उसकी बात पर मै हस पडा—"भई वाह! उस बेचारे की भलमनसाहत की प्रशसा करने से तो गई, उल्टा उसे तासने लग पडी। कितनी भी सुदर सुशिक्षित हो

जाए, आप लोग किसी के सुकर्म की तारीफ नहीं कर सकती।"

"आप तो है सबके सुकर्मो की तारीफ करने के लिए हम औरते कुछ भी हो—हम किसी को भरमाने की कोशिश नही करती—यह तो पुरुषो का ही जन्मजात स्वभाव होता है।

"लो भई, फिर हो गई पुरुष-पुराण शुरू। चलो काफी पीयो और बिस्कुट खाओ। फिर चाहे पुरुषो को गाली ही दो पर पेट मे कुछ डालो तो सही।"

"यह सब आप ही खाएगे। मेरा तो पेट दोपहर से ही इतना भरा हुआ है कि कुछ खाने का मन ही नही है।"

"खाने का मन नही है—इतना घूमने-फिरने और सैकडो सीढिया चढने उतरने के बाद भी?"

काफी खत्म करके मैं उठते हुए बोला—"अभी आप थोडी देर यही बैठे—मे कुतुबमीनार के आस-पास एक चक्कर लगाकर लौटता हू। शायद पडित जी कही दिखाई पड ही जाए। आप निश्चित रहें। मै पंडित जी की तरह आपको यहां छोड़कर जाने वाला नहीं हूं। थोडा देर बाद घूम फिरकर लौट जरूर आऊगा।"

उर्मिला बोली—"आपका मन है तो जरूर चले जाइए। पर वह अब आपको यहां कही मिलनेवाले नहीं हैं। वह यहां से काफी देर पहले ही चले गए होगे।"

मैने हैरत से उर्मिला का चेहरा देखा। मैने पूछा—"यह आप कैसे कह सकती हे कि वह यहां से चले गए होंगे? मै नहीं समझता कि वह हमे यो छोड़कर चले जाएंगे और वह भी उस स्थिति मे जबकि उन्हें पूरा पता है कि हम उनके बिना यहां से जाएगे नही।"

"पर उन्हें तो हमारी कोई प्रतीक्षा नहीं थी।"

"अजीब बात कह रही है आप भी। भला उन्हे हमारी प्रतीक्षा क्यों न होगी? क्या उन्हे यह उम्मीद नहीं थी कि हम दोनो कुतुबमीनार देखकर बाहर आएगे? वह ऐसा कभी नहीं कर सकते।"

"कभी कर सकते है या नहीं—यह मै नहीं जानती। पर मैं अब निश्चयपूर्वक कह सकती हूं कि वह यहा थोड़ी देर रुककर ही चले गए होंगे।"

मै अनिश्चय में पडकर उर्मिला का चेहरा देखता रह गया। यह बात किसी भी कोण से मेरी समझ में नहीं आई कि बाहर से पत्नी के साथ आने वाला पति उसे किसी दूसरे आदमी के साथ यो छोडकर चला जाए। वैसी दशा में तो यह और भी मुश्किल लगता है जब वह उसी आदमी के घर मे मेहमान भी हो। इस तरह की

अभद्रता कोई कैसे कर सकता है?

हालाकि विश्वास तो मुझे अब भी नही था कि पडित मुकुद माधव इतना घटिया आचरण कर सकते है तथापि मैने कहा—"हा यह हो सकता है कि वह बुरी तरह थक और ऊब गए हो। उन्हे तो सुबह से ही दिल्ली का वातावरण रास नहीं आ रहा था।"

उर्मिला बोली—"पर बिल्कुल यही बात नही है। वैसे यह तो ठीक है कि वह घर से निकलना ही नही चाहते थे। आप उन्हे एक तरह से जबरदस्ती ही यहा तक खींचकर लाए थे। फिर भी सिर्फ ऊब इस पलायन का कारण नही है।"

मैंने फिर कोई खास कारण जानने पर जोर नहीं दिया। हो सकता है उसे उर्मिला न भी बताना चाहे।

अब मेरी आशा भी क्षीण पड गई थी इसलिए काफी के पैसे चुकाकर मै और मल्लिका रेस्त्रा से निकले और सडक पर आ खड़े हुए।

12

मैने एक ऑटो रोककर उर्मिला से कहा—"चलो बैठो। हालाकि अब तीसरा पहर भी खत्म हो चला पर गर्मी का बुरा हाल है। हम लोग कनाट प्लेस में बैठकर कही कुछ ठंडा पीएगे।"

उर्मिला बैठ गई तो मै भी उसकी बगल में जाकर बैठ गया। उर्मिला के चेहरे पर चिता छिपी हुई थी और वह एकदम चुपचाप बैठी थी।

कनाट प्लेस पहुंचकर हमने ऑटो छोड दिया। मैंने उर्मिला से कहा—"मन हो तो कनाट प्लेस के बराडों में घूमे। आप यहा से अपने काम की कोई चीज़ खरीदना चाहें तो वह भी ले सकती हैं।"

उर्मिला ने एक लबी सास खीचकर कहा—"आपका जहा भी मन हो चलिए। मै तो अब एकदम खाली हो चुकी हू।"

मैंने चकित होकर उसे देखा। मेरी समझ मे उसके खाली होने की बात नही आई। मै बोला—"खाली होना तो कुछ बुरा नहीं है। क्या अब तक आप खाली नहीं थीं? क्या आपका संकेत भीतर के खालीपन से है?"

"मेरा तात्पर्य बाहर भीतर से ही क्या सब तरह से खाली होने का है। मै तो अब एक पिन तक खरीद पाने की स्थिति मे नही हूं।"

"क्यों नहीं हैं कुछ भी—यानी एक पिन तक खरीदने की स्थिति मे। आपका जो भी मन हो शौक से खरीद लीजिए।"

वह कनाट प्लेस के बरांडों मे घूमती रही। मैंने देखा कि उसकी नजर बराबर कुछ तलाश कर रही थी।

"अब आप पंडित जी की खोज मे हल्कान मत होइए। वैसे तो अब छोटी से छोटी जगह मे भी सारी देशी-विदेशी चीजें पहुच जाती है पर यहा आई है तो याद

भर के लिए ही कुछ ले लीजिए।"

"मेरे पास खरीदने को उन्होंने छोड़ा ही क्या है। मेरा बैग और पर्स तो वह लेकर चले ही गए हैं।" फिर जरा ठहरकर उसने दुखी मन से कहा—"बल्कि अब तो मुझे यही लग रहा है कि मैं कुछ खरीद न लूं, इसलिए मेरा पर्स भी ले गए हैं।"

उर्मिला की इस बात को सुनकर मैं सन्न रह गया। कोई पत्नी अपने पति पर इतनी सख्त टिप्पणी किसी बाहर के आदमी के सामने नहीं करती है। अब तो मुझे भी उसकी सोच सही मालूम पड़ रही थी। उर्मिला ने जब उन्हें अपना बैग दिया था तो उन्होंने उससे उसका पर्स भी ले लिया था। हो न हो वह पर्स पा जाने के बाद तुरत ही कुतुबमीनार के परिसर से निकल गए थे।

उर्मिला के इतनी देर से दुखी और तनाव ग्रस्त होने का कारण मेरी समझ मे आ गया। पर्स के कारण ही वह महरौली से लौटने मे इतनी देर लगाती रही थी। मै इस बात को सोच-सोचकर हैरान हो गया कि उसके पति महाशय इतनी घटिया हरकत पर उतर आए।

यह एक बहुत बीहड़ और जटिल परिस्थिति थी। उर्मिला क्या कोई भी महिला ऐसी दशा मे संतुलित नहीं रह सकती थी। उर्मिला का स्वयं को निरीह और अपमानित महसूस करना स्वाभाविक ही था। कोई पति बाहर के आदमी के सामने सरे आम यह आचरण करे और अपनी पत्नी का पर्स लेकर गायब हो जाए—तो वह बेचारी शर्म से गड नही जाएगी?

उर्मिला रुआसी हो रही थी और शर्म से उसका चेहरा लाल हो उठा था। अगर मैंने उससे कुछ खरीदने की बात न कही होती तो शायद वह आखिर तक पंडित जी की इस निकृष्ट हरकत को मुझसे छिपाए रहती।

मैंने उसकी सहजता लौटाने का प्रयास किया—"यह शहर उनके लिए नया है, कही गड़बड़ाकर भटक भी तो सकते हैं। बहरहाल अब जो भी परिस्थिति है उसे लेकर चिंतित होने का कोई कारण नही है। मेरे पास काफी रुपये हैं। आपको कुछ भी खरीदने मे असुविधा नहीं होगी। बल्कि कुछ-न-कुछ अवश्य खरीद लीजिए। मेरे लिए भी यह एक सुखद अनुभव होगा। मेरे साथ कोई महिला बाजार से कुछ खरीदारी करने जाए यह मेरे लिए एक गौरव की बात होगी।"

मेरे अनुरोध से उर्मिला के चेहरे पर हंसी की एक क्षीण-सी रेखा उभरी। वह मेरी आंखो में देखते हुए बोली—"बड़ी हौस है किसी महिला के साथ बाजार करने की?"

"बिल्कुल। यह भी एक अनूठी वासना है जो शायद सभी पुरुषों के मन मे

होती होगी।''

''यह आपका भ्रम है। सभी पुरुषो के मन मे नही होती यह वासना। हमारे श्रीमान् जी को ही देख लीजिए। ऐन मौके पर कन्नी काट गए कि नहीं?''

''जब कोई युवती किसी की प्रेमिका होती है तो शायद उससे भाव-ताव करना नहीं आता। दुकानदार जो भी पैसे मागते है वह बिना किसी ऊहापोह के दे देती ह पर क्या यही बात पत्नी बन जाने के बाद भी बाकी रह जाती है? मै देखना चाहता हू कि भाव-ताव करने का कौशल आपमें अभी आ पाया या नही।''

''खरीदारी करते समय आपको मेरा भाव-ताव करना क्या पसद आएगा? फिर मै प्रेमिका की स्थिति में तो हू भी नहीं।''

मैंने पूछा—''कई बार हम क्या वह नही हो जाना चाहते जो हम वास्तव मे नही होते?''

उसने मेरी बात का उत्तर न देकर पूछा—''अगर कोई युवती प्रेमिका बनने का सोभाग्य ही प्राप्त न कर पाए और इस सुखद सयोग से पहले ही उसका विवाह सपन्न हो ले तो उसके सबंध मे आपका क्या विचार बनेगा?''

''मेरी दृष्टि मे तो ऐसा कोई वर्गीकरण है नहीं। प्रेमिका और पत्नी दोनो अलग-अलग ध्रुवो की वासी मुझे नही लगती। जो एक बार प्रेमिका है वह पत्नी बने या न बने प्रेमिका तो बनी ही रह सकती है।''

''पर हर आदमी आपकी तरह कब सोचता है। अगर सोचे तो इतना निष्ठुर केसे हो सकता है? आप भी पुरुष हैं। आप चाहे मेरी बात का बुरा माने पर मै यह कहे बिना नही रह सकती कि पुरुष स्त्री से वैरभाव रखता है। वह कोई भी ऐसा अवसर नहीं गंवाना चाहता जहां स्त्री से बदला लेना सभव हो। स्त्री का समग्र निर्माण ही ऐसा है कि उसे आसानी से ठगा जा सकता है। कोई उसे आदर्श पुरुष बनकर ठगता है तो कोई डाकू, लुटेरा बनकर। मेरी समझ मे तो स्त्री के सदर्भ में राम ओर रावण की मानसिकता मे भी कोई खास फर्क नहीं है।''

''अब आपने तो कोई ऐसा विकल्प ही नही छोडा कि बचकर निकला जा सके। जब डाकू और साधु-रावण और राम एक ही धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिए गए हों तो मै अब स्वयं के बारे मे क्या सफाई दे सकता हूं। इस समय तो यही विकल्प शेष हे कि एक रावण हृदयपटल से हट गया है—चाहे तो उसे डाकू ही कह ले और उसके एक स्थानापन्न से ही काम चलाइए। अब यह मानकर चलिए कि वह आपका पर्स मेरे पास छोड गए हैं।''

''सवाल सिर्फ पर्स का नही है। वह तो एक प्रतीकात्मक वस्तु है। असल बात

तो उस मानसिकता की है जो निकृष्टता की ओर सकेत करती है।"

"नायक मे भी बहुत बार खलनायक छिपा होता है।" कुछ आगे बढकर एक रस्त्रा दिखा। मैंने कहा—"बाकी बातें बाद मे होती रहेंगी। कुछ खा पी लिया जाए।"

"अरे अभी-अभी तो वहा कुतुबमीनार पर काफी और बिस्कुटे ली थी। इतनी जल्दी पेट में कहा से जगह बन जाएगी।"

"आपको संतोष धन की जरूरत है और मुझे कुछ खाने की। मै दिन मे कई बार कुछ-न-कुछ खाता रहता हू—बिल्कुल बच्चों की तरह।"

उसे जैसे कुछ याद आया तो वह बोली—"अरे हां आपने तो सुबह घर से निकलते समय भी कुछ अधिक नही लिया था। मैंने उस तरफ ध्यान ही नही दिया। चलिए-चलिए कुछ जरूर खा लीजिए। कभी-कभी आदमी अपनी छोटी-सी चोट को लेकर इतना व्यस्त हो उठता है कि बडे-बड़े घावो से बेखबर हो जाता है। पर्स गया तो गया उसकी कोई बात नहीं है। वह तो मिल ही जाएगा।"

"उस बात को भूल जाइए। उससे कटुता ही बढेगी।"

बातें करते-करते हम रीगल सिनेमा के सामने जा निकले। मैने कहा—"अब हम गेलार्ड तक आ पहुंचे है। यही कुछ देर बैठ लेगे। थोडी देर सुस्ता लेगें और गर्मी से भी थोड़ी देर के लिए निजात मिल जाएगी।"

गेलार्ड में दाखिल हुए तो वहां उस समय भीड बिल्कुल नही थी। डिनर लेने वाले अभी देर में पहुचने वाले थे। वहा अच्छा खुशगवार वातावरण था और हल्के-हल्के एक धुन बज रही थी। मेजों पर सफेद बुर्राक बिछे हुए मेजपोश चमचमाती हुई कुर्सियां और बावर्द, मुस्तैद बैरे सभी वहा की शालीनता के सूचक थे।

मै और उर्मिला कोने की एक मेज घेरकर बैठ गए। मैंने मीनू उठाकर उस पर एक सरसरी नजर डाली और उसे उर्मिला की तरफ बढाते हुए बोला—"आप ही देखिए और बताइए इस सूची मे हम लोगो के लिए क्या सर्वोत्तम है।"

"इन बडे-बडे और भारी भरकम खाने-पीने की वस्तुओ के नाम और गुण भला मै कैसे पहचानूंगी? आपका जो मन हो मगा लें। मेरे लिए तो इस जगह बैठ जाने का सुख ही पर्याप्त है।" कहते हुए उसने मीनू मेज पर ही रख दिया।

"मैं ही कौन यहा रोज-रोज आता हू जो सारी चीजो के नामो और गुणो का विशेषज्ञ होने का दावा करू! कभी-कभार यों ही किसी के साथ आना हो जाता है और जो दूसरे खाते-पीते है वही मै भी ले लेता हू।"

"वस्तुओं का गुण दोष पहचानने की किसे सुध है, बस बहुत-सा रुपया होना चाहिए—ग्लैमर खरीदने के लिए। मोटा पैसा अपने आप मे एक अलग-तरह से

रेखांकित होने वाली कल्चर है।" उर्मिला ने दीवारों पर इधर-उधर नजर डालते हुए कहा।

मैं हसकर बोला—"आपने सूत्र रूप में बहुत बड़ा सत्य कह दिया। दरअसल यह युग एक तरह से वल्चर-कल्चर का ही है।"

उसने कुछ न समझने का भाव दिखाते हुए पूछा—"वह कौन-सी नई कल्चर पैदा हो गई?"

"इसे आप एकदम से नई न समझे—वही पुरानी भोग-लिप्सा है। गिद्ध जैसे मृत-पशु के शव पर टूट पड़ते हैं उसी प्रकार भोगवादी किसी तरह का प्रतिकार न कर सकने वाली जड़ वस्तुओं पर टूट पड़ते हैं। उसे अपनाते समय उन्हें इस बात का भी खयाल नहीं रहता कि वह उनके लिए कितनी उपयोगी है। व्यर्थ हो तब भी उसे अपने पास सजाकर रखेंगे। मसलन उन्हें एक कार की जरूरत है मगर वह एक दर्जन खरीद डालेंगे।"

"फिर तो वह गिद्धों से भी गए बीते है। बल्कि कहना होगा, गिद्धो से उनकी तुलना करना बेचारे गिद्धो का भारी अपमान है। वह तो मृत लाश को ही खा-पीकर निपटा देते है और इस तरह वातावरण को दूषित होने से भी बचा ले जाते हैं। यह आपके नव-धनाढ्य तो मलिनता के अतिरिक्त कुछ पैदा ही नहीं कर सकते। आप कहीं तीर्थ स्थलों पर जाकर देखिए नदी-झरने-झील तक शराब की बोतलों-बकरो, मुर्गियो की हड्डियों और तरह-तरह के रैपरो से पटे पडे मिलेंगे। यही हाल हिल-स्टेशनों का हो चला है। जहा देखो, गंदगी-गंदगी और दुर्गंध।"

मैं बोला—"जिस पैसे को अर्जित करने के पीछे कोई कठिन श्रम नहीं होता वह निकृष्ट श्रेणी के भोगो मे ही उड़ जाता है।"

"यह विचित्र गोरखधंधा है जिसे मैं तो कभी नही समझ पाती कि कुछ लोगो पर इतना अकूत रुपया आता कहां से है।"

"इसे समझने के लिए कोई सिर खपाने की जरूरत नही है। जितनी देर मे तुम पैसा कमाने का एक तरीका समझ पाओगी उतने समय में दस और नए तरीके ईजाद हो जाएंगे। कुछ वर्षों पहले तक जायज पैसे के अलावा गलत तरीके से अर्जित रुपये को 'नबर दो का पैसा' कहा जाता था मगर अब तो हर रोज एक नया चक्कर पैदा हो रहा है। हम लोग उतने तरीकों को जिंदगी भर नहीं समझ सकेंगे जिनका धन पशु रोज नया नया आविष्कार करते हैं।"

वह मुस्कराकर बोली—"एक-दो के बारे में तो आप भी जरूर जानते होगे।"

"वह कैसे?"

"क्योंकि आप एक औद्योगिक नगर मे रहते हैं—और दिल्ली के इतने पास है।"

"हमारे नगर में तो पिछले कुछ वर्षों से एक ही धधा सबसे अधिक पनपा है। कल-कारखाने वाले उद्योग भी उसके सामने फीके पड जाते हैं।"

"ऐसा कौन-सा नया उद्योग पैदा हो गया आपके शहर मे?" उसने उत्सुकता से पूछा।

"अरे वही तो एक नया धधा है जिसे फिरौती कहते हैं। किसी मोटे पैसे वाले को कार मे डालकर कही ले गए और घरवालों को धमकी देकर मनचाही रकम वसूल कर ली। अब यह फिरौती करोड़ों तक जा पहुंची है। किसी उद्योगपति का बेटा या भाई उठा लिया जाता है या कभी उसी को उठा ले जाते हैं। साथ ही सावधान कर देते है कि पुलिस के कानों तक इस घटना की खबर तक नही पहुंचनी चाहिए अन्यथा उठाए हुए व्यक्ति की हत्या निश्चित है। इस धंधे को शिखर पर पहुचने मे समय भी कुछ ज्यादा नहीं लगा। यही पांच-सात साल। इसमे नए-नए आविष्कार और धाराएं उपधाराए रोज जुडती चली जाती हैं। एक नयापन तो यह आया है कि उठाया हुआ व्यक्ति उनसे सुलह सफाई करके उन्हें अपने घर ले जाता है। अपने पोश ड्राइंगरूम मे बिठाकर उन्हे भरपेट खिलाता-पिलाता है और वांछित दक्षिणा देकर विदा कर देता है।"

उर्मिला ने टिप्पणी की—"इस तरह से भी तो समाजवाद आ रहा है। मजदूर हडताल करते हैं तो मिल मालिक उन्हे भूखा मारते हैं। पुलिस उन पर गोली डडे बरसाती है। उनके मुकाबिले यह धंधा ज्यादा आसान है कि सेठ जी को उठाओ और बदले मे करोडो ऐंठ लो। मेरा खयाल है आने वाले वर्षों में यही उद्योग सबसे ज्यादा पसद किया जाएगा और इसका खूब विकास भी होगा।"

"बेयरा पानी के गिलास रखकर जा चुका था। मैंने उर्मिला से कहा—"अब अगर जल्दी से आर्डर नहीं दिया गया तो बेयरा भी शायद 'किडनैपिंग' (अगवा) पर उतर आएगा।"

इस बार बेयरा आर्डर लेने आया तो मैने मीनू पर सरसरी नजर डालते हुए आर्डर दे दिया और बोला—"ज्यादा न सही, इस जमाने से सुविधाएं जुटाने के लिए कुछ धन तो जरूर ही चाहिए।"

"यही जमाना क्यों, कौन-सा युग ऐसा था जब सुविधाएं प्राप्त करने के लिए कुछ अतिरिक्त धन की जरूरत पड़ती थी।"

"आप ठीक कहती है। सभी युगों मे रुपया बडी शक्ति रहा है। सभी गुणों

का काचन (सोना) मे निवास बतलाया गया है। बस फर्क इतना ही है—पहले दिनो मे धन की सम्पन्नता के साथ श्रेष्ठ सस्कारो की भी कद्र थी। आज की तरह धन तब संस्कृति का पर्याय नहीं था। आज धन अर्जित करने की सस्कृति बदल गई है। कोई यह नही जानना चाहता कि आपने दौलत किस ढग से कमाई है या कि इकट्ठी की है। रुपया-पैसा अब साधन नहीं साध्य का दर्जा पा गया है।''

''इसीलिए नव कुबेरों का हमारे समाज मे एक अलग वर्ग तैयार हो गया है। महाजनों येनो गत. सपथा का अर्थ अब यही है कि धनपति जिस मार्ग पर चले हम भी अनुकरण करे। सब छोटे बडे अधाधुध येन-केन प्रकारेण रुपया ही रुपया चाहते हे।''

उर्मिला बोली—''अपने संस्कारों और परम्पराओं से कटते चले जाने पर तो यही होगा।''

इसी समय बेयरा खाद्य वस्तुओं से भरी ट्रे लाया और एक-एक प्लेट निकालकर मेज पर सजाने लगा।

मै बोला—''अब हम बहस करते चलें और कुछ खाते भी रहे।''

''आप परम्पराओ पर कुछ कह रही थी।'' 'कहकर मैंने एक स्लाइस उठाई।

''परम्पराओं की बातें करना एकदम बेमानी है। उसकी जरूरत किसे है? हम लोग तो धीरे-धीरे अमर बेल जैसे होते जा रहे है। जिस तरह वह हरे-भरे वृक्षो पर फेलकर उनका रस चूस जाती है और उसकी जड कही नही होती उसी तरह हमारी अपनी जडे भी अब कही नहीं रह गई है। भोग और केवल भोग यही तो हमारी एक मात्र दृष्टि रह गई है इन दिनों।''

''इसीलिए शायद मनीप्लाट सबसे आकर्षक हरीतिमा का प्रतीक बन गया है। उसे भी अपनी जडों को कही जमाना नही पड़ता-वह हवा पानी से ही लहलहा उठता है।''

''आप बौद्धिकों को इस दिशा मे कुछ करना चाहिए। अतत· समाज को सही दृष्टि तो आप लोग ही देते है।'' शीतल पेय की एक घूट भरकर उर्मिला ने गिलास मेज पर टिकाते हुए कहा।

''बौद्धिकों की आज कौन सुनता है? उनका स्वर इस नक्कार खाने मे किसी के कानों तक नही पहुंचता? सारा देश जिस मारक नशे के प्रभाव मे डूबा हुआ है वह नशा कोई नहीं तोड़ सकता। अब तो सब कुछ समय के ऊपर है कि वह क्या करवट बदलता है।''

उर्मिला बोली—''ऐसी बात नहीं है। आपको अपनी शक्ति को पहचानकर

हस्तक्षेप करना चाहिए। गहरे नशे में डूबे हुए लोगों को झिंझोड़कर जगाना पड़ता है। निर्माण की दिशा में सतत अग्रसर रहते ही कुछ हो सकता है। थककर बैठ जाने से तो कुछ भी नहीं होगा। आज सत्ता पर जो लोग हावी है क्या उन्हें इसी तरह बरदाश्त किया जाता रहेगा?''

मैंने देखा, उर्मिला थोड़ी देर में ही एक अलग तरह का व्यक्तित्व धारण कर चुकी थी। अपने पति की नीचता भुलाकर वह गहरे सामाजिक प्रश्नो से जूझ रही थी।

नाश्ता खत्म हुआ तो उर्मिला के चेहरे पर फिर वही पहले जैसा मलाल उभरने लगा। अपनी आदत के वशीभूत उसने अपना पर्स तलाशना शुरू कर दिया मगर सभवत: वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाने पर बोली--''अब तो सब जगह आपको ही पेमेंट करने होगे।''

मैंने उसकी बात को अनसुना करते हुए बेयरा के लाए हुए बिल का भुगतान कर दिया और बोला--''चलिए चलते हैं। हमे मिटो ब्रिज से कोई गाडी मिल जाएगी।''

हम दोनो गेलार्ड से बाहर निकले और कनाट प्लेस के बराडों मे होते हुए मिटों ब्रिज की ओर बढ़ लिए।

13

सुपर बाजार के सामने से निकलते हुए मुझे सहसा याद आया कि उर्मिला ने पर्स पास में न होने की वजह से दिल्ली में कोई खरीदारी ही नहीं की थी। मैंने उससे इस सबध मे कुछ भी न कहकर एक ऑटो रोका और उर्मिला से उसमे बैठने को कहा। जब वह सीट पर बैठ गई तो उससे थोडा हटकर बैठते हुए मैंने ड्राइवर से करोलबाग चलने को कहा।

जब स्कूटर चल पडा तो मै उर्मिला से बोला—"कनाट प्लेस के तो सभी शोरूम आज बद थे मैने पहले इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया था। अब हम करोलबाग चल रहे हैं—वहां की दुकाने खुली होंगी।"

"मगर क्यों? वहा जाकर हमे क्या करना है? वहा जाना एकदम फिजूल है। मै तो कुछ लेना ही नहीं चाहती।"

"अरे भाई चलो तो पहले। वहां देखना, कितनी अच्छी-अच्छी साड़ियां कितने सस्ते पैसो में मिल जाती हैं। आप लोगो को जितनी वैरायटीज़ चाहिए, सभी वहां एक साथ मिल जाएंगी।"

उसने मुस्कराकर पूछा—"क्या आप वहा साड़िया खरीदने के लिए जाते रहते हैं?"

"साड़िया खरीदने न सही—खरीदने वालो को तो देखता ही रहता हूं। कई बार मित्रों और उनकी पत्नियो के साथ भी जाना पड़ जाता है।"

उसने चुहल में कहा—"वे बड़ी भाग्यशाली हैं जिन्हें आप वहां से साडियां दिलवाते हैं।"

"आप सरासर गलत बयानी पर उतर आई है—मैं किसी को साडिया नही दिलवाता। वह लोग स्वय ही खरीदती है।"

"लगता है साडियो के बाजारो से आपका अच्छा परिचय है।"

"अगर दलाली का धधा करता तो अच्छी कमाई कर सकता था पर कलम घिस्सुओं से वह भी कहा सध पाता है।"

"पर आज तो आपको नुकसान ही नुकसान है हर तरह से।"

"आप इसकी फिक्र न करे। वक्त आने पर मै मयसूद सव वसूल कर लूंगा।"

"देख लीजिए—कभी बाद मे आपको पछताना न पडे। हो सकता है मुझे एक साथ कई साड़ियां पसद आ जाए।"

"उतना ज्यादा डराने की कोशिश न करे। मै भी कुछ पैतरे तो जानता ही हू।"

"जैसे?"

"मै कह सकता हू कि फलानी स्टेट की हर हाई नैस हैं। मैं इनका सेक्रेटरी हू। बाकी पेमेंट का चेक दे दिया जाएगा।"

"जी हां, इस बात पर तो जैसें सभी यकीन कर लेगे। मुझे देखकर कौन गच्चा खा सकता है? सूरत सीरत दोनों ही मेहतरानियों जैसी है।"

"लीजिए अब तो आप खुद ही महारानी से भी बड़े पद महतरानी, पर जा बैठीं।"

"कुछ नही होता अपने आपको महतरानी या महारानी कह लेने से। जो मैं हू वही रहूंगी।"

"दिल्ली में पैसा गौण है—हवा मुख्य है। हवा बांध ले बस, उसी से बडे से बड़ा काम निकल जाता है। यह बात अलग है कि अपने हाथ हवाएं भी नही आती।"

"हवाएं पकडना छोड़कर कोई ठोस आधार क्यों नहीं पकड़ लेते?"

"वह भी करके देख लिया। किसी ठोस आधार को पकडने की कोशिश करता हू तो पता चलता है उसे भी कोई पहले से हथियाए बैठा है।"

इसी समय सड़क पर ऑटो रिक्शा उछला और मै उर्मिला से टकरा गया।"

उर्मिला हंसकर बोली—"अपनी तरफ से आप काफी बचकर बैठे थे मगर सड़क को शायद यह मंजूर नही था।"

"यह स्पीड ब्रेकर की वजह से हुआ शायद। वैसे यहा की सडके इतनी बुरी नही है।"

"गति को नियन्त्रित करने के लिए भी धीरज चाहिए। अगर उसे एकाएक काबू मे करने की कोशिश की जाती है तो गति भी विद्रोही हो उठती है।"

"गति की तीव्रता तो हमेशा खतरनाक होती है।"

उर्मिला बोली—"तीव्रता को नियंत्रित न किया जाए तो वह अधूरेपन में ही समाप्त हो जाती है।"

"वह कैसे?" मैंने कुछ भी न समझकर पूछा।

"उसे मैं शायद आपको ठीक से समझा नहीं सकती। वह सक्रियता से जुड़ी हुई चीज है। देह का सत्य है यह—आप कैसे जान पाएंगे?"

मैं उससे कुछ और पूछता उससे पहले ही करोलबाग आ गया। मैंने ऑटो का किराया चुकाया और उर्मिला से बोला—"चलिए यह यहां का संभवतः सबसे मशहूर और काफी फैला हुआ कपड़ा बाजार है—आप यहां से कुछ अच्छी साड़ियां खरीद सकती हैं।"

उर्मिला अन्यमनस्कता से बोली—"मुझे कोई साड़ी-वाड़ी नहीं खरीदनी है जी। मेरे पास ढेरों साड़ियां हैं। आप बेकार ही इधर आए। अब हम लोगों को घर लौटना चाहिए।"

"अभी तो शाम ही है—वैसे भी गर्मियों की शाम बहुत देर तक ठहरी रहती है। आप एक दो साड़ियां दिल्ली आने की यादगार स्वरूप ही खरीद लें।"

"अगर आप साड़ियां खरीदने में मेरी मदद करें तो मैं कुछ खरीदने के बारे में सोच सकती हूं।"

"चलिए यही सही। मगर मेरी एक मुश्किल यह है, मुझे जो भी चीज एक बार पसंद आ जाती है मैं उसी पर हाथ रख देता हूं और फिर दूसरों की तरफ आंख उठाकर देखता भी नहीं हूं।"

"औरतें और चाहती ही क्या हैं। पहली पसंद पर वह भी जान छिड़कती हैं। आप एक बार यही करके तो देखें।"

"मैंने महसूस किया, बात साड़ियों से इतर जा रही थी। साड़ियां तो बस एक बहाना भर थीं।

जब उर्मिला मुझसे बाहर पेवमेंट पर खड़ी बातें कर रही थी तो किसी साड़ी एम्पोरियम का आदमी हमारे पास आकर बोला—"बाबू साब आपको बढ़िया और एकदम नई स्टाइल की साड़ियां खरीदनी हों तो मेरे साथ चलिए। मैं वाजिब दामों में आपको एक से एक अच्छी साड़ी दिलवा दूंगा।"

मैंने घड़ी देखी। साढ़े सात बजने जा रहे थे। मैं उर्मिला से बोला—"चलिए जल्दी से कुछ देख डालिए वर्ना फिर दुकानें बंद होनी शुरू हो जाएंगी।"

मैं और उर्मिला उस आदमी के साथ चल पड़े। उर्मिला साड़ी एम्पोरियम के भीतर जाकर मेरे साथ एक गद्दीदार कुर्सी पर बैठ गई। जो आदमी हमें साथ लेकर

गया था उसने दुकान के मालिकों से साडियां दिखलाने के लिए कहा।

बात की दात में कितनी ही साडियो का हमारे सामने ढेर लग गया। उर्मिला न मुस्कराकर मेरी ओर देखा और बोली—"अब आप अपनी एक मात्र और पहली पसद पर हाथ रख दीजिए। मै ज्यादा साडियो को क्यों उलटू-पलटू!"

"पहले तो आप ही अपना हाथ रखिए। देवियां प्रथम वाली बात पर मेरी पूरी आस्था है।"

उर्मिला ने चंदेरी की एक साडी छूकर कहा—"बताइए कैसी है?"

"एकदम फर्स्ट क्लास और नफीस है। आपको फबेगी भी खूब।"

"बस तो मेरे लिए यही सर्वाधिक मूल्यवान है।"

मैने उसे उठाकर सेल्समैन की ओर बढ़ा दिया और बोला—"इसे फौरन पेक कर दीजिए।"

मै बोला—"इसी तरह किसी और पर भी तो हाथ रखिए।"

"एक ही बहुत है। साडियो की तो मेरे पास कोई कमी नहीं है। बस यह आपके साथ यहा आने की यादगार समझूगी।"

"यादगार वाली बात तो अपनी जगह ठीक है पर वह भी क्या औरत हुई तो महज एक साडी खरीदकर सतुष्ट हो जाए? मै जानता हूं कि औरतों के पास साडियो का अबार लगा होता है पर साडियां और आभूषण उनके लिए कभी पर्याप्त नही होते।"

दुकानदार ने मेरी बात सुनी तो वह विहंसकर बोला—"भैन जी ऐसा पति कहा मिलता है जो अपनी वाइफ को साड़ियां खरीदने को उकसाए। यहा तो बहुतेरे ऐसे आते है कि जब उनकी जनानी साडियां छाट रही होती है तो शोरूम के बाहर जाकर टहलने लगते हैं। बिचारे दिल पर पत्थर रखकर अपनी घरवाली के साथ आते है।"

दुकानदार की टिप्पणी सुनकर मैं सकपका गया। मैंने बहुत नामालूम ढंग से उसकी ओर चेहरा घुमाया तो देखा उसका चेहरा शर्म से गुलाल जैसा रक्तिम हो उठा था। बेचारे दुकानदार को क्या पता था कि उर्मिला मेरी कौन थी। उसने अनुमान से ही हम दोनो को पति-पत्नी समझ लिया था।

मैने उर्मिला के चेहरे की ओर से नजर हटाकर कहा—"तो जनाब अब मै भी बाहर जा रहा हूं। इन्हे अब अपनी ही पसंद की साड़िया खदीदने दी जाए।"

वह बोला—"नही जी! आप बाहर क्यों जाएगे? इन्होने तो यह साड़ी भी आपकी पसद पर ही खरीदी है। बाहर जाकर तो आप हमारा नुकसान ही करेगे।"

उर्मिला खड़ी होते हुए बोली—"नही, नही अब और कोई साडी-वाडी नही

खरीदी जाएगी।''

मैंने भी अब और ज्यादा जोर देना ठीक नहीं समझा और जेब से पर्स निकालकर साडी की कीमत का भुगतान कर दिया।

हम दुकान से बाहर निकलकर फुटपाथ पर चलने लगे। उर्मिला के हाथ मे साडी का पैकेट था और वह बिल्कुल चुप होकर मेरे साथ चल रही थी। शायद दुकानदार के शब्दो से वह मुक्त नही हो पाई थी। मैंने भी उसे नहीं छेडा और कुछ दूर तक चुपचाप उसके साथ चलता रहा।

जब चुप्पी मनहूस लगने लगी तो मै बोला—''दरअसल जिन लोगो से हमारा कोई परिचय नहीं होता वह महज अनुमान के सहारे सबध निर्धारित कर लेते है।''

उस समय उर्मिला की मन स्थिति शायद मेरी बात का आशय पकड़ने की नहीं थी। वह सिर झुकाए-झुकाए ही बोली—''बाहरी चीजे ही तो वह माध्यम हैं जिनको पकड़ा जा सकता है। भीतर की स्थितियो को जानने का बाहर के लोगो के पास उपाय ही क्या है। इस दुनिया मे सबंध हमेशा दो स्तरों पर चलते है—एक वह जो होते है—दूसरे वह जो समझे जाते हैं।''

''हा वही तो मैं भी कह रहा हू। अब इस साडी वाले दुकानदार को ही लो। हम दोनो के वह सबध नहीं हैं जो वह भला आदमी सहज रूप से खयाल कर रहा था।''

''उसका ऐसा समझना गलत भी क्या था? उसने अपने ढंग से तो सही ही समझा। पति के अलावा मेरे जैसी औरत को साडी दिलवाने के लिए प्रेमी कहा स आएगा।''

''स्वय को अवमूल्यित करना क्या जरूरी है? आपमें ऐसी क्या कमी है जो आपको कोई प्रेम नही कर सकता? मै जितनी देर से साथ हू आपको बराबर आत्मभर्त्सना की मनःस्थिति में देख रहा हूं।''

उर्मिला मुंह से तो कुछ नहीं बोली पर उसने चेहरा दूसरी ओर घुमाकर अपनी आखे पोंछ ली।

मैंने उसके कधे को हल्के से छूकर कहा—''उर्मिला मेरी बात का बुरा मत मानना। मै आत्म प्रताड़ना बिल्कुल नहीं सह पाता। तुम्हारी जैसी बहादुर लड़की पता नही क्यो अपना मूल्य इतना कम आकती है। तुम स्वयं को भारी नही समझोगी तो और कोई भी तुम्हें तुम्हारा सही स्थान नही बता पाएगा।''

'दुकानदार ने जो कहा मै उससे कतई भी आहत नही हू। हमेशा चीजो का अर्थ वही नही होता जो समझा जाता है। मोटे तौर पर बहुत कुछ परिभाषित होता

रहता है। अलग-अलग स्थानों और परिस्थितियों में हम बहुत कुछ तो अपने अनुमानों के सहारे ही ग्रहण करते है। फिर वह पंडित मुकुंद माधव की ओर मुड गई—' इतना गर्हित कर्म भी भला कोई किसी के साथ करता है?''

"आज जो आपके साथ हो चुका है, क्या उसे दरगुजर करने का कोई उपाय बाकी नहीं है? अगर आप उसी कचोट को बार-बार दुहराती चली जाएंगी तो सिवाय दु:ख भुगतने के आपके हाथ और कुछ भी नही लगेगा। अब उस बात को एकदम से भुला डालिए।"

उसने मेरी ओर गहरी और चुभती हुई नजर से देखा और बोली—"आपके साथ जो गुजरता है उसे बिस्मृत करके क्या आप कोरा कागज हो सकते हैं? मस्तिष्क का सहज धर्म तो यही है न कि जो आपके साथ हो रहा है उसी को लेकर आप दुखी या प्रफुल्लित होते रहें। हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। कोई लाख उसके प्रभाव को दूर करना चाहे पर वह छूत की तरह लगकर रहता है। इसमें लाभ-हानि का भी कोई प्रश्न नही है।"

मैं बोला—"मगर कड़वी स्मृतियो से पिंड छुडाने की कोशिश तो करनी चाहिए।"

"यह मनुष्य के हाथ में नही है। इस काम को समय ही कर सकता है। पशु-पक्षी जिस शाप से बचे हुए है प्रकृति ने मनुष्य को उससे नहीं बचाया बल्कि वही सबसे अधिक अभिशप्त है स्मृतियों को लेकर वह अहरह अपनी स्मृतियो मे ही जीता है। दु:खदायी स्मृतियां मन पर चट्टान की तरह भारी बनकर बैठ जाती है। मैं तो फिर भी एक अत्यत मामूली औरत हू। अच्छे-बुरे अनुभवो से उबर भी सकती हू पर आप तो रचनाकार और शब्द शिल्पी हैं—आप अच्छी-बुरी स्मृतियों से पल्ला झाडकर कैसे अलग हो सकते है। यों सोचते चले जाने से भी समस्याओ का कोई निदान नहीं मिलता है—तो भी सोचने से बचा तो नही जा सकता।"

"तुम्हारी बात से मुझे कब इनकार है। मैं स्वयं ही छोटी-छोटी मामूली बातो और समस्याओं से व्यथित हो उठता हू। बल्कि जो मुद्दे औरो के लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखते वह मुझे अच्छा खासा तंग कर डालते हैं।"

"घटनाओं को वह लोग आपकी तरह खुर्दबीन से नही देखते होंगे और उन्हे उसकी जरूरत भी क्या है? जो बहुत-सी बाते केवल उनके लिए साधारण जानकारी की श्रेणी में आती है वही आपके लिए न जाने कितनी महत्त्वपूर्ण हो उठती होगी।"

"सबकी परिस्थितियां अलग-अलग होती हैं। हम सब उनसे अलग-अलग तरह से जूझते और निपटते हैं। सच पूछा जाय तो हमारा सारा जीवन ही परिस्थितियो

ओर सयोगों का ताल-मेल है। हम चलते किसी एक मार्ग पर है पर संयोग और परिस्थितियां पता नही धकेल-धकालकर हमे कहां से कहा ले जाती है।"

मेरी बात सुनकर उर्मिला चलते-चलते ठहर गई फिर हसते हुए चल पडी। मने पूछा—"ऐसा क्या याद आ गया जो तुम चलते-चलते ठहर गई और एकाएक हसने भी लगी।"

"एक मार्ग पर चलते-चलते ढेढ-मेढे रास्तो पर जा निकलने पर मुझे एक दृश्य याद आ गया।"

मैने उत्सुकता दिखाई—"मुझे भी बतलाओ।"

"हम लोग जिस गांव के रहने वाले है वहां गाव से लगकर ही एक नदी बहती है। बरसात के दिनों मे जब वह बाढ पर आती है तो दूसरे किनारे से तैरकर आने वाले लोग नदी का घाट पार करते-करते मीलो दूर तक तिरछे तैरते चले जाते है और एक सीध मे बिल्कुल नही तैर पाते हैं। जब वह किनारे से लगते है तो गाव से काफी आगे जाकर उन्हे किनारा मिलता है। फिर बेचारे किनारे-किनारे चलते गांव मे आ पाते है।"

"तैराक ही क्यो, नावो की भी तो यही गति है। वह भी एक सीध मे कब चल पाती है? मल्लाह दरिया पार करते समय बहाव को काटने-काटते भी टेढ़े ही चल पाते है।"

"हा तो यही बात तो मैं कह रही थी कि परिस्थितियो का दबाव और बहाव हमे इधर-उधर भटकाता है। कभी-कभी तो आदमी इधर-उधर इतना भटक जाता है कि वह स्वयं ही नही जान पाता कि उसने कहां से जिंदगी शुरू की थी और वह कहा जा पहुंचा।"

बातें करते-करते मैं और उर्मिला बस स्टैंड के करीब जा पहुचे। वह बोली—"क्या यहां से कोई बस उधर नहीं जाती है?"

मैने कहा—"हां यहा से कनाट प्लेस के लिए बहुत बसे मिलेंगी।"

"तो फिर बस से ही न चलें? क्या फायदा ऑटो मे पैसा फूंकने से।"

"तुम्हारी बस से चलने की मर्जी है तो फिर बस से ही निकल लेते है।"

हम दोनों बस स्टाप पर जाकर ठहर गए और तीन-चार मिनट बाद ही हमे कनाट प्लेस जाने वाली बस मिल गई।

उर्मिला ने पूछा—"हमे घर पहुचने में अभी कितनी देर और लग जाएगी?"

"कोई गाडी तैयार मिल गई तो घटे सवा घंटे में पहुच जाएगे।"

बस ने हमे ऐसी जगह छोडा जहा से मिंटो ब्रिज दस बारह मिनट में पैदल

ही आराम से पहुचा जा सकता था।

सुपर बाजार के पास शंकर मार्केट से निकलते हुए मै और उर्मिला स्टेशन पहुच गए। उसे एक वेंच पर बैठने को कहकर मै टिकट लेने चला गया।

मैं टिकट लेकर लौटा तो दस बारह मिनट बाद ही गाडी प्लेटफार्म पर आ लगी।

गाडी मे बहुत सीटें खाली थी। हम दोनों जिस डिब्बे मे चढे उसमे रामायणी लोग तुलसीकृत रामायण की चौपाइयो का सस्वर पाठ कर रहे थे। उर्मिला ने चकित होकर उन लोगों को देखा और मुझसे पूछा—"ये कौन लोग है?"

"सभी दफ्तरो मे काम करने वाले हैं। यह जब दफ्तर आने के लिए गाड़ी मे बैठते है तो इसी प्रकार रामायण का पाठ करते चलते हैं। इसी प्रकार लौटते मे भी सभी एक कंपार्टमेंट मे बैठते हैं।"

उर्मिला ने उनका सस्वर रामायण पाठ सुनकर कहा—"समय का इससे अच्छा सदुपयोग और क्या हो सकता है?"

उसकी बात सुनकर मैं हसने लगा तो वह बोली—"इसमें हंसने की क्या बात हुई?"

"यो हसने की तो कोई खास बात नही है पर इस डिब्बे मे एक तरह से इनकी धांस पट्टी चलती है। बहुत से लोग तो इनके पाठ मे इतना घबराते हैं कि इसमे चढ़ते ही नही है। कोई यहा बैठकर बातचीत नहीं कर सकता।"

"क्यो? क्या यह आपस में बातचीत भी नहीं करने देते?"

"जब यह सब मिलकर ऊचे स्वर मे गाएगे तो कौन बातचीत कर सकता है?"

गाड़ी चल पडी तो रामयणियो ने खडताल और मजीरे बजाकर 'मगलभवन अमगलहारी, द्रवऊ सो दशरथ अजिर विहारी' ऊचे स्वर मे गाना प्रारभ कर दिया।

मैंने उर्मिला की ओर मुस्कराकर देखा और बोला—अब सारा वातावरण एक घंटे तक राममय रहेगा। हम लोग बोलने की बजाय अब सिर्फ श्रोता बने रहेंगे।"

"वैसे भी आज बोलना बहुत हो चुका है। अच्छा है अब मन राममय हो जाएगा।"

14

एक स्टेशन तक गाड़ी ठीक गति से चली और बाद मे खडी हो गई। लगता था आगे कही रेलवे लाइन मे कोई अवरोध उपस्थित हो गया था। मैंने प्लेटफार्म पर उतरकर जानने की कोशिश की पर ठीक से कुछ पता नही चला।

एक-एक करके अधिकाश सवारियां प्लेटफार्म पर ही आ गई और बेतावी से गाडी के चलने की प्रतीक्षा करने लगी। लोग प्लेटफार्म पर नही उतरे तो बस हमारे डिब्बेवाले वह झाझ-मंजीरे बजाते हुए 'उमा कहऊ मै अनुभव अपना' गा रहे थे।

मैंने उर्मिला से कहा—"नीचे ही उतर आओ क्योंकि अब तो आगे 'जग सपना' ही है। रामायण गाने वालो को तो गाड़ी चलने न चलने की कोई चिंता नही व्यापने वाली। वह तो इसी डिब्बे मे अखड रामायण पाठ करते रह सकते है।"

अब मुझे अपने निर्णय पर अफसोस हुआ। हम मद्रास होटल से वसे भी मिल सकती थीं। सुपर बाजार से थोड़ा-सा उधर चलते तो बस दस मिनट का इतजार करने पर बस तो अवश्य ही मिल जाती और इस तरह बीच मे रुके न रहना पड़ता।

समय काटने की गरज से हम टी स्टाल की ओर बढ गए और चाय लेकर पीने लगे। उर्मिला बोली—"आज तो हम लोगो ने चाय काफी खूब पी।"

"हा, हमने तो अपना थोडा-बहुत खाना-पीना कर भी लिया पर हमारे पडित जी का तो आज उपवास ही हो गया। पता नही घर भी ठीक से पहुच पाए होंगे या नही। रास्ते मे ही न भटक गए हो कही।"

पडित मुकुंद माधव का जिक्र आते ही मल्लिका का चेहरा वदल गया। सहसा मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ। मैंने क्यों बैठे बिठाए उनका नाम ले लिया।

उर्मिला वोली—"मुल्ला की दौड मस्जिद तक। उनके भगोड़ेपन की वही सीमा है। जा भी कहा सकते है। वह अव से वहुत पहले ही घर जा पहुचे होंगे।

वह स्वयं में इतने स्थित हैं कि उन्हें किसी की चिंता नहीं रहती। घर में लेटे बैठे आराम कर रहे होंगे। उनके जैसा आत्मस्थ कभी किसी बात को लेकर परेशान नहीं हो सकता।''

मैंने बातचीत को सहजता की ओर मोड़ना चाहा—''कमोवेश सभी लोग वैसे ही होते है।''

''एक जैसे तो सरकारी क्वार्टर होते है, आदमी कोई सरकारी क्वार्टर नहीं होता। इस दुनिया में अगर दस अरब आदमी होंगे तो उनके उतने ही मन होंगे। सब एक जैसे कैसे हो सकते है? आपको मै क्या बता सकती हू आप तो न जाने कितने मनो से साक्षात्कार करते होंगे।''

''मैं अपनी बात वापस लेता हूं। तुम्हारी बात ही सही है। मनुष्य एक चेतन प्राणी है इसलिए उसके चरित्र और व्यवहार के आयाम भी बहुत है। वह स्वयं ही नहीं जानता कि किस समय वह क्या आचरण करेगा। थोडे से लोग ही ऐसे होते हे जो जीवन का एक निश्चित प्रारूप अथवा ब्लू प्रिंट तैयार करते हैं और उस पर पुख्तगी से चलते है। ज्यादातर तो लस्टम-पस्टम जीते चले जाते है।''

''लेकिन औरतो की जिंदगी फिर भी वैसी नही होती।''

''हा प्रकृति ने पुरुष से अलग नारी को ही यह शक्ति दी है कि वह बिखरती चीजो को जोडे। पुरुष को सहस्र रूप किसी ने कहीं नहीं कहा। नारी को ही सहस्र रूप कहा गया है।''

''हा, साथ ही नारी के चरित्र पर भी सवालिया निशान लगा दिया है।''

मै बोला—''खींचतान कर तो बात को कही से कही भी ले जाया जा सकता है पर वस्तुस्थिति तो यही है कि आदमी को नारी से निष्कृति नही है। वह जब-जब भागने का प्रयास करता है नारी तभी कोई नया मंत्र आविष्कृत कर लेती है। पुरुष के लिए तो वह हमेशा से एक अबूझ पहेली ही बनी हुई है।''

उर्मिला नें विरोध किया—''पर आज यह बात नहीं है। विज्ञान ने सारा कुछ विश्लेषित करके रख दिया है। किसी का कुछ भी गोपनीय नहीं रह गया है अब।''

''ठीक कहती हो कि विज्ञान ने सब कुछ दिन के उजाले की तरह स्पष्ट कर दिया है पर क्या हमारा मन भी विज्ञान की गति के समानांतर चल पाने में समर्थ हुआ है। क्या परपराएं, मान्यताए हमारे मन की भावनाए वास्तव में पूरी तरह बदल चुकी हें? जो बातें और स्थितिया सैकडों वर्ष पहले हमें मथती थी वह आज हमें उस तरह उद्वेलित नहीं करती? क्या प्यार और गहरी भावनाएं मानव संबंध से खारिज हो चुकी है। अगर विज्ञान ही चरम सत्य है तो स्त्री पुरुष के संबंध सिर्फ जरूरत

भर रह जाने चाहिए पर क्या वैसा हो पा रहा हे। वह भावनाओं से आज भी क्यो जुड़ हुए हैं?"

उर्मिला ने माना—"हा विज्ञान वहां तक तो वाकई नही पहुच पाया और शायद कभी पहुच भी नही पाएगा। स्त्री-पुरुष के संबंध आज भी बहुत दुर्बोध हैं। नारी को पुरुष बनाने की पश्चिमी जगत् ने कम चेष्टा नही की पर वह वहा भी हू-ब-हू पुरुष जैसी तो आज भी नही बन पाई। मात्र बाहरी रग-रूप और वेशभूषा बदल लेने से वह वैसी नहीं हो पाई।"

"मै आपको अब उस तरफ ले चलता हू जो एक तरह से हमारे भारतीय समाज मे एक गर्हित कर्म है। पहले समलैंगिकता अपराध का पर्याय थी पर अब यूरोप में उसे मान्यता मिल चुकी है और, पुरुष-पुरुष के साथ और स्त्री-स्त्री के साथ रहने और सहवास करने के लिए पूर्ण स्वतत्र है पर क्या उससे प्रकृति का विधान बदल गया है? स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक आकर्षण समाप्त हो चुका है? अभी आपने कुतुबमीनार की भीड मे देखा होगा कि हर विदेशी युवक अपनी बगल मे एक युवती लिये हुए था।"

उर्मिला बोली—"प्रकृति का विधान कहिए या संस्कारों का आग्रह कहिए स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण सनातन ही माना जाता है पर इससे स्त्री की स्थिति मे तो रंचमात्र भी फर्क नही पडा है। वह पहले भी पुरुषापेक्षी थी और आज भी उतनी ही पुरुष पर निर्भर करती है। पहले उसे असूर्यम्पश्या कहा जाता था आज वह वस्त्रो को त्यागकर नग्नावस्था में प्रदर्शित की जाती है किंतु दोनों ही स्थितियो मे वह पुरुष के द्वारा आयोजित है। इन दिनो जो भयानक व्याधियां सारी दुनिया मे महामारी का रूप धारण कर रही है उनमें से एक एड्स है। आकडे बतलाते हैं कि नारिया ही इसका सर्वाधिक शिकार हैं। आखिर यह व्याधि उन्हे कहां से मिलती है? पुरुषों द्वारा ही न? तब बतलाइए नारी की विवशता प्रकारांतर से वही की वही है या नही? आप जैसे कुछ कवि-लेखक उसके मोहक और उदात्त स्वरूप का चित्रण करके वय सधि छूते युवक-युवतियों को भरमाते रहते है बाकी तो चारों तरफ वही सड़ांध फैली हुई है।"

मै बोला—"आपकी बात से मै इनकार नही करता क्योंकि वस्तुस्थिति को कोई नही नकार सकता। बाकी यह भी सही है कि नारी आज उतनी सताई हुई नही रह गई है। अपने अधिकारों के प्रति अब वह उतनी बेखबर नहीं है जितना कि एक सदी पहले रही होगी। अंग्रेजो ने पूरी एक शताब्दी इस देश को परतत्रता की बेडियो में जकड़े जरूर रखा है पर साथ ही यह भी सच है कि स्त्री और दलित अथवा पिछडे

हुए प्रतिरोध को एक मुखरता भी प्राप्त कर चुके है।

वह व्यग्य के स्वर मे पूछ बैठी—"फिर महात्मा गांधी ने ऐसे सदाशय अग्रेजो को भारत छोडने की चुनौती क्यो दे डाली? वह तो परम अहिंसक और उदारमना थे।"

"गाधी जी का अल्टीमेटम हमारे सामाजिक उन्नयन से जुडा हुआ था। उन्हे उनके द्वारा स्थापित औद्योगिक क्रांति या जागरण स्वीकार नही था पर यह तो आप भी मानेगी कि गाधी ने चुनौती देने का नजरिया भी उन्हीं के देश मे पाया। वह अगर इग्लेड न गए होते और अग्रेज के देश मे जाकर उसकी जीवन पद्धति न देखी-जानी होती तो वह अग्रेजो को 'भारत छोडो' न कह पाते।"

"आप जो भी कहे पर मै अब भी यह नहीं मान पाती कि यहां की नारी ओर दलित सामाजिक न्याय पा रहे हैं—वह आज भी उतने ही शोषित और वचित है।"

मै बोला—"वह यह दृष्टि तो पा गए है कि वह शोषित और वचित हैं। वह दिन दूर नही है जब वह अपने शोषण का शक्ति पूर्वक प्रतिकार करेंगे।"

"मै आपकी बातो से अब भी सहमत नही हो पा रही हू। अगर औरत ओर दलित-शोषित अपने अधिकारो के प्रति जागरूक होने लगे है तो भारतीय मनीषा का प्रताप नही है। यह भी बाहर से आए हुए विचारो और जीवन पद्धति का ही एक आयाम है। राजाराम मोहन राय और द्वारिका नाथ ठाकुर या फिर ईश्वर चद्र विद्यासागर इन सभी महानुभावो ने अंग्रेजी पढ-लिखकर ही यहा पर मकडजाल की तरह फैले पाखंडों का भडाफोड किया था। उनके द्वारा जो जागृति फैलाई गई वह भारतीयता के झूठे घमंड को विदीर्ण करने वाली थी। विधवा विवाह आज भी एक सहज स्वीकृति स्थिति नहीं है जबकि लगभग डेढ शताब्दी पहले ईश्वर चद्र विद्यासागर ने इसकी खुलकर पक्षधरता की थी। यह तो पिछले पचास सालो तक होता रहा है कि बंगाल की हजारो बाल विधवाए केश मुडाए और लगभग अधनगी दशा में मथुरा, वृदावन और काशी की गलियो में भटका करती थीं। राजस्थान मे नवयौवना विवाहिताओ को मृतक पतियो के साथ आज दिन तक चिता पर जबरन चढाया जाता है। यही नहीं, हमारा समाज आज भी इस क्रूरता को लाछित करने के स्थान पर गौरवान्वित करता है।"

उर्मिला की बात को लेकर कोई बहस का मुद्दा ही नहीं बनता था इसलिए मै बोला—"यह किसी देश या जाति का सबसे बडा दुर्भाग्य होता है कि उसके उच्च विचारो और क्रिया-कलाओ के बीच कभी न पटने वाली खाई नजर आए। हम इसी बिंदु पर पराजित होकर हमेशा से मार खाते आए है। थोडे से विदेशियो ने

समय-समय पर इस देश और यहा की जातीय परम्पराओ पर जो पराजय की मुहर लगाई है वह सोच और क्रिया के बीच का द्वैध ही तो है।"

"पर हम उस द्वद्व को अब भी कहा मिटा पा रहे है। हम तो आज भी उतने ही पाखडी और धर्माध हैं। अपने शत्रुओ को कब पहचान रहे हैं? हमारे देश में हर रोज जन्म लेते नए-नए भगवानो से गली-मोहल्ले पट पड़े है और हम उनके चमत्कारो से अभिभूत होकर अधोमुख पडे है।"

मैने उसे समझाया—"फर्क है, बहुत बडा फर्क है। स्थितिया बिल्कुल पुरानी जैसी नही है। आज एक-दूसरे के विपरीत दो धाराए बराबर क्रियाशील है। जो गलत है, निंदनीय है उसे आंखे बद करके स्वीकार नहीं किया जा रहा है। उस पर प्रहार भी हो रहा है और कुत्सित को लांछित भी किया जा रहा है। जरा सोचो, जो नारी सदियो से असूर्यम्पश्या कही जाती थी वह आज आगे बढ़कर पुरुषों के कंधे से कधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र मे अपनी भागीदारी करती दिखलाई पड़ती है। लडकियो को स्कूल-कॉलिज भेजना तो बहुत दूर की बात थी, उन्हे प्राइमरी तक की कन्या शालाओं मे पढ़ने नहीं भेजा जाता था। वह आज पुलिस और हमारे प्रशासन के विभिन्न विभागों में ऊची से ऊंची कुर्सिया सभाले बैठी हैं। अगर यूरोप की ओर नजर डालोगी तो पाओगी वहां एकाध देश को छोड़कर कही राष्ट्राध्यक्ष महिलाए नहीं मिलेगी पर भारत और उसके ही कटे हुए अग पाकिस्तान और बगला देश में राष्ट्र की बागडोर महिलाए सभालती रही है और आगे भी यही होगा। गुड और इविल की टकराहट मे गुड का जीतना अब कहानी-किस्सों मे ही नहीं होता। जीवन के वास्तविक धरातल पर भी रेखांकित हो रहा है।"

"पर तात्कालिकता के दबाव सत्य का गला आज भी खूब घोट रहे हैं।"

मैं बोला—"तात्कालिकता को लेकर जो अन्याय और दबाव बनते है उनकी वजह भी सिद्धांतहीनता है। सिद्धांत और श्रेष्ठ जीवन मूल्य किताबो से हटकर जीवन में स्थापित होने लगेंगे तो तात्कालिक और गैर तात्कालिक जैसा कुछ नही रह जाएगा।"

"मैं तो यही देखती हू कि अवसर पाते ही सिद्धांतों की माला जपने वाले भी उन्हे निरर्थक कहकर सबसे पहले एक ओर फेंक देते है।"

"यह सबकी बात नही है। अधिकांश व्यक्ति इस बात को पसंद नहीं करते वह इस प्रवृत्ति की कसकर आलोचना करते हैं और विरोध जतलाते है। गलत को सारे लोग आंख बद करके स्वीकार कर लें और निरंतर अन्याय सहते चले जाए यह मानवीय स्वभाव नहीं है।"

"वास्तव मे जो होता है मैंने तो उसी की ओर सकेत किया है।"

"गलत का यदि एक व्यक्ति भी मुखर होकर प्रतिरोध करता है तो उसे दबाना सभव नही है। चार सौ साल पहले राजरानी मीरा ने महारानियो के तौर-तरीको को तोडकर फेक दिया था और राजमहल छोडकर गलियों में निकल आई थी। उस काल मे क्या कोई कल्पना कर सकता था कि सात पर्दो मे छिपाकर रखी जाने वाली महामहिम राजरानी आम लोगों के बीच में पहुंचकर उन जैसा जीवन जीने लगेगी और राजकुल की मर्यादा को झूठा अहंकार घोषित कर देगी? पर मीरा ने क्या वह सब जो आज भी अकल्पनीय लगता है—किया नही था? बस बात इतनी है कि हमारी इनकार मे कितना बल है यहीं से प्रतिकार का बिगुल बज सकता है। हम भीतर ही भीतर विरोध जीते है और जीवन के गणित में सुविधाओं के समीकरण खोजने लगते है तो हमारा वह विरोध फिर आग नहीं बर्फ बन जाता है।"

उर्मिला के चेहरे पर अवज्ञा का परिहास उभर आया और वह बोली—"पिछले चार सौ सालों में मीरा जैसे कितने उदाहरण गिना सकते हैं? हम छुद्र संसारी जीवन महान् और स्थायी के लिए प्रतीक्षारत खडे नही रह सकते। जितना उच्च और महान् है—वास्तविकता के धरातल पर देखे तो हवाई है। जब गाड़ी छूटने लगती है तो पक्ति में बने रहकर टिकट पाने का धीरज किसी मे बाकी नहीं बचता।"

उसकी इतनी सटीक लौकिक उक्ति सुनकर मैं हस पड़ा और मुझे खयाल आया कि गाड़ी स्टेशन पर बहुत देर से रुकी खडी है और हम यह बात पूरी तरह भूल गए है। अगर गाडी सारी रात यो ही अविचलवादी रही तो क्या होगा। पर मैने उर्मिला का ध्यान उस ओर नहीं खीचा। मैने कहा—"हम लोग उन कीर्तनियो के डिब्बे को छोडकर किसी और ही डिब्बे मे चलकर बैठें तो अच्छा है। कम से कम वहा आपस में बाते करके समय तो काट सकेगे।"

उर्मिला ने प्लेटफार्म पर पडी बेंचो पर नजर डालकर कहा—"डिब्बो में तो बहुत उमस होगी। बाहर थोडी हवा तो है—यहीं घूमते-फिरते हुए गाडी चलने की प्रतीक्षा करते रहें तो क्या हर्ज है?"

15

मै और उर्मिला प्लेटफार्म पर आगे बढते चले गए। प्लेटफार्म के दूसरे सिरे पर एक बेच खाली पडी थी। हम दोनो उस पर जाकर बैठ गए। वहा तेज रोशनी भी नही थी क्योंकि बिजली वाला खंभा वहा से काफी हटकर था।

मैं बोला—"कैसा अजीब संयोग है कि हम घर से तो तीन लोग चले थे और लौटते-लौटते दो ही रह गए।"

"प्रायः ऐसे सयोग अच्छे ही होते हैं। अब आप कल्पना कीजिए कि वह भी साथ होते तो कितना झीखना और रोना पीटना हो जाता। क्या तब हम लोग इतने मुक्त भाव से सब तरह की बाते कर सकते थे?"

"क्यो नही कर सकते थे? मै तो पडित जी को भी बातो मे खीच लेता। कुछ विरोधी स्वर उनकी ओर से आते तो बातो मे और भी मजा रहता।"

"अजी राम का नाम लो। वह इस तरह की बातों में पडना वक्त की बर्बादी समझते है।"

"पर जब हमारे सामने वक्त के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही तब भी वह वक्त की तरफ पीठ करके खड़े हो सकते थे?"

उर्मिला हस पडी और बोली—"हम वक्त की ओर से पीठ भी फेर लें तो क्या वह अनुपस्थित हो जाता है। फिर वह पीठ की तरफ से घूमकर सामने जाकर खडा नही हो जाता?"

मैने कहा—"बिल्कुल खड़ा हो जाता है। समय से ज्यादा धृष्ट और कौन हो सकता है?"

"धृष्ट हो या कुछ पर एक बात तो जरूर है, वह रुकता किसी के लिए नही है।"

रुकता है, अगर कोई उसे रोकना चाहे।

"यह कैसे?"

"जैसे हम लोग उसे पकड़कर बैठ गए हैं और वह हमारे सामने नतशिर खड़ा है।"

उर्मिला ने बेंच पर रखा साड़ी का पैकेट उठाकर अपनी गोद में रखते हुए कहा—"लगता है यह आपका ही किया हुआ षड्यंत्र है जो गाड़ी यहां आकर खड़ी हो गई है और आपने एक बार भी यह जानने का प्रयास नहीं किया कि गाड़ी रुके रहने की क्या वजह है।"

"बेकार है कुछ भी जानने की कोशिश। तुमसे बातें करने का जितना भी वक्त मिल रहा है—वह फिर मिले न मिले। मैं कुछ मिनट यह बात जानने में क्यों गवाऊं कि गाड़ी क्यों नहीं चल रही है।"

"लगता है मुझसे बातें करने का आपका बड़ा लोभ है?"

"अपने आप से बातें करने का लोभ किसे नहीं होता?"

"इतनी देर से जो बातें हम लोगों के बीच होती रही है—क्या वह सब आत्मालाप है?

"आप क्या यह नहीं जानती कि जो कुछ हम लोग बोलते है वह ध्वनिग्राह्य यन्त्र में सुरक्षित होता रहता है, भले ही वह पृथ्वी पर हमारी पकड़ में न आए पर वायुमंडल में तो चिरकाल के लिए सुरक्षित रहता ही है।"

"वायुमंडल में ही क्यों, उसे तो आप अब कैसेट में भी पकड़कर रख सकते हैं।

"अवचेतन से निकलने वाली संवेदनाओं को जड़ यंत्र में भरने का कोई उपाय नहीं है। उसे हम कानों से नहीं स्मृतियों से सुनना चाहते हैं।"

"लगता है आपकी स्मरण शक्ति बहुत जबरदस्त है जो इतनी-इतनी बातों को स्मृति में संजोए रह सकते हैं।"

"यह बातें अच्छी-बुरी स्मरण शक्ति की मोहताज नहीं होती। यह दूरागत होते हुए भी मन के निभृत प्रांगण में दोलायमान रहती है।"

"अच्छा आप कविताएं क्यों नहीं लिखते?"

"मैं कविताएं सुनता हूं और उन्हें जीने लगता हूं। अक्षरों में लिखी हुई कविताएं ही काव्य नहीं होतीं अपने मन चाहे किसी से हुआ संलाप ही सबसे जीवंत कविता होती है।"

"पर यह कविता भी ठहरती कहां है? मुट्ठी में भरी बालू जैसी रीत जाती है।"

"बालू में आर्द्रता हो तो फिर वह मुट्ठी में बंध रहती है—झरती नहीं है।"

"आप भावनाओं को कब तक वास्तविकता के वहम् में रख सकते हैं? वह सब क्षणिक इंद्रधनुषी है। वस्तु जगत् का असह्य ताप वाष्प और ओस कणों को कब तक अक्षय रहने दे सकता है।"

"जितने समय भी इंद्रधनुष आकाश में रहता है वह इंद्रधनुष ही होता है। उसे हम अपने बनाए हुए समय के मानदंडों में क्यों कैद करके रखें? केवल संकेत ही अक्षर है बाकी तो निरंतर क्षयधर्मा ही है।"

उर्मिला बोली—"यह सब भी तो कविता की ही बातें हैं। असली बात तो यह है कि आपको जीवन में क्या मिला है। आपको जो उपलब्ध है वह अन्य लोगों की दृष्टि में स्तुत्य और श्रेयस हो सकता है पर वह आपके लिए कितना ग्राह्य है इसी से आपका और आपकी उपलब्धि का रिश्ता तय हो सकता है।"

"जब हमारा यथार्थ हमारी ही संकुल परिधि में चक्कर काटकर रह जाता है तो हमारा अपना अस्तित्व हमारे अपने लिए ही बोझ जैसा हो जाता है उर्मिला जी। आपने देखा होगा, इस दुनिया में बहुत लोग ऐसे हैं जिन्हें बहिर्जगत् में घटने वाली क्षोभ हर्षक घटनाएं रंचमात्र भी नहीं छू पातीं और हमारी कुछ समस्याएं हमें छीलकर रख देती हैं।"

उर्मिला बोली—"चींटियों की पांत पर दस बूंद पानी भी महाजलप्लावन जैसा है।"

मैंने कहा—"मगर उनकी सामूहिकता उससे अपनी रक्षा कर ले जाती है। हम भी सामूहिकता के बल पर अपना अस्तित्व बचाए रह सकते हैं। हमारा प्रयास ही यह होना चाहिए कि हम दूसरों में शामिल हों और उन्हें भी स्वयं से जोड़ें। किसी का भी नकार देना कोई उपलब्धि नहीं है। शायद आप इसे मेरी अनधिकार चेष्टा मानें कि मैं कहूं पंडित जी बहुत भोले व्यक्ति हैं। बस दिक्कत यही है कि उनका स्वीकार 'नहीं' से शुरू होता है। क्या आप ऐसे एक भी व्यक्ति के परिचय के क्षेत्र में नहीं हैं जो 'नहीं' से ही अपनी बात शुरू करता हो?"

"जब आप मुंह खोलते ही नहीं बोलेंगे तो आपकी बात को सुनने-समझने का उत्साह किसमें होगा?"

"कुछ लोग ऐसे होते ही हैं जो बहुत धैर्य और कौशल से स्वयं को उपस्थित नहीं कर पाते। यह कुशलता प्रतिभा का चमत्कार नहीं है बल्कि चालाकी भरा अंदाज है।"

"क्या करूं मेरी अल्पबुद्धि शब्दों की चीर-फाड़ नहीं कर पाती वह 'काल ए

स्पड ए स्पेड' (कुल्हाडे को कुल्हाड़ा ही) समझती है।"

"अब यह तो मै नही मान सकता कि आप चीजो की बारीकी तक नही पहुचती या उन्हे नही समझ पाती। मै जब से आपके साथ हू बराबर देख रहा हू कि आप हर बात और स्थिति का गहराई से विश्लेषण करती चली आ रही है फिर क्या कारण हो सकता है कि बरसो तक साथ रहने पर भी आप अपने पति को कुछ नही समझा पाती या कि उन्हे अपने 'पाइट आफ व्यू' तक नही ला पाती।"

"आपने दाम्पत्य जीवन भोगा होता तो आप इस बात को आसानी से समझ जाते। जिस व्यक्ति या जिन व्यक्तियां के साथ हम निरंतर रहते है उन्हें हर बात विस्तार से समझाने का धीरज हममे बाकी नही रह जाता है। हम चाहते है वह हमारे सकेत पकडे। वह बच्चे तो होते नही है जिन्हें हर बात की भूमिका समझाई जाए।"

"हर व्यक्ति में एक बच्चा छिपा होता है और उसे बच्चा मानकर ही हम धैर्य से समझाए तो वह न केवल समझ जाता है बल्कि हम उसका विश्वास भी जल्दी ही अर्जित कर लेते है। यह सारी सामाजिकता संबधो से जुडी हुई है जिसमे पारस्परिक विश्वास की भित्ति मजबूत होने से ही जीवन का द्वद्व कटता है।"

"हो सकता है मेरा धैर्य पूरी तरह चुक गया हो और मैं जिसको जितना जानती हू उससे आगे कुछ समझने की उत्सुकता ही मुझमे बाकी न बची हो। मेरी समझ को ग्रहण लग गया हो या वह बासी हो चुकी हो।"

"मै फिर वही बात कहूंगा कि सह अस्तित्व के लिए जिम्मेदारी से साझेदारी निभानी पडती है। जिसे हम छोड़ न सके उससे ऊब जाना खतरनाक है। निजीपन और नयापन निरतरता से जुड़ा होना मै अपरिहार्य मानता हू।"

"बहुत बार जिसे हम जुडना कहते या समझते हैं वह वास्तव में जुड़े होने की विवशता होती है। आपने नवीनता की बात कही है, वह मै मानती हूं। बने बनाए साचो की एकरूपता को तोडने के लिए नवीनता आवश्यक है पर बाहर की दुनिया मे वह बहुत कम है। वही गिनी चुनी चीजे स्थितियां और परिवेश है—अभिव्यक्ति की भाषा तक में बहुत कुछ नहीं बदल पाता। इस विवशता से कौन उबर सकता है।"

"आपने शायद इस संबंध मे भी सोचा होगा कि नवीनता हम ही निर्मित करते है। हम स्थितियो की ऊब को काटने के लिए नए कोण तलाश करते है। कहना चाहिए कि इस तरह हम खेल जारी रखते हैं। भूमि वही होती है। मगर हमारे खेलने के स्थान में परिवर्तन हो जाता है—यानी खिलाडी जरा हटकर किसी बदली हुई भूमिका मे चला जाता है तो वह भूमि भी एक तरह से नई लगने लगती है। जैसे

हम कुछ दिनो स अपने घर-परिवार से कहा बाहर निकल जाते हैं ता थोड दिनो बाद लौटने पर सारा कुछ नया लगने लगता है।''

''कहते चलिए, मुझे आपकी बाते अच्छी लग रही है और मै उन्हे सुनते रहना चाहती हू।''

''चलिए तो फिर मै कुछ नही कहता।''

उसने मेरे कंधे का स्पर्श करके कहा—''नहीं कहने से तो काम नही चलेगा क्योकि फिर हम दोनो यहा निपट अकेले बैठकर क्या करेगे। हमारे पास तो ताश की गड्डी भी नही है।''

''यानी ताश की गड्डी स्थानापन्न है यह मेरी बकबक?''

''आपकी बातों में बासीपन नही है। इनमे एक नयापन और रमणीयता है।''

मैने हसकर कहा—''रमणी आप है और रमणीयता मुझमे है यह तो बडी विपरीत-सी स्थिति हुई।''

''आप मे रमणी नहीं है यह आप कैसे कह सकते है। क्या हमेशा घर की कमरों की स्थिति एक जैसी ही रहने देते हैं? उनमें बदलाव नही करते यानी सोफे-मेज कुर्सिया दीवान रैक वगैरह स्थायी रूप से अपने एक ही स्थान पर बनी रहती है?''

''नहीं तो। महीने दो महीने मे लगभग सभी कुछ इधर-उधर हो लेता है।''

''बस यही तो रमणी करती है। इस दृष्टि से हुए न आप रमणी। रमणी से एतराज हो तो अर्धनारीश्वर भी कहे जा सकते हैं।''

''मै इसी नवीनता की बात कह रहा था। नवीनता हमे निरंतर उन्नयन की ओर ले जाती है। नए-नए सपनो और आशा—आकांक्षाओ से जोडती है। कवि पाश ने यह ठीक ही कहा है, 'सबसे खतरनाक है सपनो का मर जाना'।''

''आप कहना चाहते है कि कुछ हो न हो हमें औरो की नजर मे एक ऐसा भरम बनाए रखना चाहिए कि उन्हे हम नवीन दिखाई देते रहे।''

''ऐसा तो मैने शायद कभी नही कहा पर दूसरो को कुछ अच्छे आभास देते रहना भी कुछ बुरा नही है।''

''मेरा खयाल है आभास भी एक सच्चाई हो सकती है पर अकेले की कोशिश से वह भी कहीं नही ठहरती।''

''हा इसके लिए दोनों ओर से ईमानदारी और चाहत दरकार है। उपेक्षा अथवा शैथिल्य हमे गलत परिभाषित करते है। जीवन मे सारा कुछ प्रयत्न साध्य है। लाखो वर्षो मे जिन मूल्यो का निर्माण और विकास हुआ है अतत वह भी

ना यत्न साधित हा है।

"मून्यो के साथ ही मूल्यहीनता का भी निर्माण और विकास एक समातर प्रक्रिया है इसकी ओर भी कभी देखते हैं आप?"

"नकार को हम सामने क्यो रखे जबकि हम इस तथ्य से आश्वस्त है कि जीवन और जगत् का समस्त व्यापार प्रयास और उद्यमशीलता से जुडा हुआ है। प्रयास और अध्यवसाय ही हमारे जीवन को सुदर और उत्साहप्रद बनाते हैं।"

उर्मिला ने मुझे टोका—"मगर प्रकृति की ओर से कोई ऐसा साम्यवाद अभी नक आरंभ नही हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए निश्चित तौर पर स्वय को सिद्ध करने के लिए अवसर पा जाए। पूरी जिदगी निकल जाती है पर ऐसा एक भी अवसर नहीं जुटता कि आदमी कभी सार्थक ढंग से जीने के थोडे से क्षण भी पा जाए। मैं पूछती हू, इसमे किसका दोप है?"

"यह कहना बड़ा मुश्किल है कि दोष किसका है पर इतना तो निश्चित ही हे कि मनुष्य को जो प्रकृति प्रदत्त एक वड़ा वरदान विवेक मिला है उसका उपयोग किया जाना चाहिए।"

"आपने फिर वही चाहिए वाली कठिन शर्त सामने रख दी। विवेक कोई इलहाम की तरह नाजिल नही होता। उसके निर्माण के पीछे भी सामाजिक शक्तियो का हाथ होता है। जो समाज ही विवेक से खाली हो उसमें व्यक्ति विवेकशील केसे हा सकता है? पशुओ की तरह हाकी जाने वाली अधिकाश जनता तो किसी तरह अपना आधा चौथाई पेट भरकर पशुवत् जीती चली जाती है और आप ऐसे गए वीते समाज मे विवेक की रागिनी अलाप रहे है।"

मैं उसकी बात सुनकर एक क्षण के लिए निरुत्तर रह गया और बोला—"विवेक को हम कभी खारिज नहीं कर सकते—वह मानवीय गुण है जो हमारे भीतर और हमारे अस्तित्व का हिस्सा है।"

इस वार वह और भी अधिक आक्रामक हो उठी—"हमसे बाहर तो कुछ भी नहीं है। पूरी सृष्टि, पूरा ब्रह्माड हमारे भीतर स्थित है—आत्मा मन, बुद्धि-चित्र, अहकार और कितनी ही अगैरा-बगैरा चीजें हमारे भीतर भरी पड़ी है, फिर हम वाहर टक्करें क्यों मारते फिरते हैं? जब मन हो, सारा कुछ वांछित भीतर से ही क्यों नही ले लेते? जरा-जरा सी चीजों के लिए रिरियाते क्यो रहते है।"

उसके विद्रूप का वस्तुतः हमारी व्यवस्था और सामाजिकता के पास कोई वाजिब उत्तर नही था। मैंने एक कमजोर-सी कोशिश की—"दरअसल निरपेक्ष कुछ नही है। यह जो वाछित और इच्छित को तुम भीतर से न पाने की बात कह रही

हा—यह पाना भी काफी कुछ सभव है। हमे सच में तो इतना अल्प चाहिए कि उसके लिए बहुत टक्करे मारने की जरूरत नही है। पर अज्ञान के कारण हम सारा कुछ उपलब्ध होते हुए भी टकराते रहते हैं। उसी तरह जैसे अधेरे मे स्थान का विस्तार कुछ अर्थ नही रखता हम एक दूसरे से गतिशीलता के क्रम मे टकराएगे ही। वस्तु एक हो और पाने वाले की सख्या दो या अधिक हो तो टकराहट बच नही सकती। जिस समाज मे सभी कुछ सबको उपलब्ध होता है वहा यह सघर्ष बच जाता है।''

''मैं कहती हू वहा भी नहीं बचता। मनुष्य की सचित करने की इच्छा या कि सभी कुछ मेरे पास हो वाली बुभुक्षा भी सहज और जन्मजात है। चीजें ज्यादा होगी तो भी सबको नही मिल पाएगी—मोनोपोली अथवा एकाधिकार की भावना को कैसे समाप्त करेगे?''

''इसके लिए शिक्षा की जरूरत है क्योकि सस्कारो को जन्मजात मानना ही गलत है। वह सुशिक्षा से कल्याणपरक बनाए जा सकते है।''

''फिर वह शिक्षा या सुशिक्षा इस दुखी और अभावों की मारी दुनिया मे आएगी कब?''

मैने हसकर कहा—''वह सुबह कभी तो आएगी, भूख और प्यास की मारी दुनिया जब न सतायी जाएगी।''

''आप मेरी जिज्ञासा को हंसकर उड़ाने की कोशिश न करे। जब आप हारने लगे और आपके सब तर्क चुक गए तो कविता बताने लगे।''

मै कुछ कहता तभी विपरीत दिशा से किसी गाडी के आने का आभास मिला। मे उर्मिला से बोला—''चलिए जल्दी कीजिए उधर से एक गाडी आ रही है।''

बेच छोडकर उर्मिला उठ गई और मेरे साथ तेजी से चल पड़ी। हम दोनों एक ऐसे स्थान पर बैठे थे जहा से पुल पास पडता था। जब तक हमने पुल पार किया गाडी प्लेटफार्म पर आ पहुची।

जो भी डिब्बा सामने पड़ा मैं उसमे घुसते हुए उर्मिला से बोला—''जल्दी करो—यहां गाडी एक मिनट से ज्यादा नही ठहरेगी।''

मैंने भीतर से हाथ बढाकर उर्मिला को अंदर खींचा ही था कि गाड़ी चल पडी।

16

हम दोनों ने दौड़कर जल्दी-जल्दी पूरा पुल पार किया था इसलिए दोनो हांफ रहे थे। जब सांसो की गति कुछ सम हुई तो उर्मिला ने पूछा—"यह गाड़ी कितनी देर मे पहुच जाएगी?"

मै बोला—"पहुंचने को तो यह जरा देर में ही स्टेशन पर जा लगेगी पर हम अपने शहर मे नहीं बल्कि दिल्ली मे ही होंगे।"

"हाय! फिर इस गाड़ी में क्यों चढ गए?"

"वह इसलिए कि जो गाडी स्टेशन पर अटकी पड़ी है, उसको पूरी रात अटकना पड सकता है। हम लोग सारी रात उस छोटे से स्टेशन पर क्या भूखे मरते? रात के दस बजते-बजते चाय वाला और टिकट बाटने वाला बाबू भी वहा ठहरने वाले नही थे।"

वह घबराकर बोली—"अब क्या पूरी रात हमें दिल्ली में ही गुजारनी होगी।"

मैने यह कहकर उसकी घबराहट और बढा दी—"देखेगे। हो सकता है रुकना ही पड जाए। किसी होटल या लॉज में तो जगह मिल ही जाएगी।"

"आपका शहर दिल्ली के इतना नजदीक है, क्या वहा जाने का दिल्ली से कोई भी साधन उपलब्ध नहीं होगा?"

मैंने उसको सात्वना दी। दिल्ली से बहुतेरे साधन मिलेंगे। मै तो तुमसे मजाक कर रहा था। पुरानी दिल्ली से अभी कितनी ही गाड़िया मिलेगी।" अपनी घड़ी देखकर बोला—"बसो के मिलने की भी उम्मीद है। कुछ भी नहीं होगा तो टैक्सी भी ली जा सकती है। जैसे भी होगा मैं आपको आज रात ही आपके पति देव के पास पहुंचा दूगा।"

वह शंकित होकर बोली—"पता नही वह होगे कहा? हम घर ठीक वक्त से

पहुच जाते तो उन्हे शायद भटकना न पडता। जोखन तो चला गया होगा। मकान बद देखकर उन्हें न जाने कहा रुकना पड़े रात को।''

मै चिंता के स्वर मे बोला—''हा यह हो सकता है कि वह पनवाड़ी से चाभी न ले पाए हो। पर अब कुछ किया भी नही जा सकता।''

वह साधारण घरेलू औरत की तरह बोली—''जब जो मुसीबत झेलनी होती है, होती ही है। नही तो दिल्ली से अच्छी भली गाडी चली थी—फालतू में बीच मे ही अटक गई। नहीं तो कब के घर जा पहुचते।''

मैंने सहानुभूति से कहा—''और क्या? अब तक तो कब के पहुंच जाते। गाव देहात के लोग तो इतनी दूर पैदल ही चले जाते है। एक बार तो ऐसा हुआ कि दिल्ली से जिस बस मे बैठा था वह आधे रास्ते में जाकर खराब हो गई। आखिरी बस थी इसलिए किसी दूसरी बस के मिलने की आशा भी नही रही। मैंने आव देखा न ताव वहीं से पैदल चल पडा और दो-ढाई घंटे मे घर जा लगा।''

वह मेरी ओर देखकर बोली—''क्या अब ऐसा नहीं कर सकते थे आप?''

''कर क्यो नही सकता था? गाडी जंगल में न खडी होती और आप साथ न होती तो मैं पैदल ही चल पड़ता। दरअसल सडक के रास्ते पर कई आसानिया हैं—कुछ भी न मिले ट्रक तो सारी रात चलते ही हैं।''

वह पछतावे से बोली—''फिर तो मैं आपके लिए मुसीबत ही साबित हुई। मेरी ही वजह से आपका पूरा दिन खराब हुआ और अब रात भी काली होती दिख रही है।

''ऐसा आप कैसे कह सकती हैं? हो सकता है मैंने मन ही मन प्रार्थना की हो कि कुछ ऐसा बानक बने कि आप मेरे साथ अधिकतम समय तक रह सके।''

''ऐसी प्रार्थना आप क्यो करेंगे? मेरे साथ रहने में ऐसा क्या है।'' कुछ क्षण ठहरकर बोली—''मैं तो वैसे भी आपके साथ ही रहती—यहां न सही घर मे तो होती ही होती।''

इसी समय गाड़ी तिलक ब्रिज पर पहुंचकर थम गई, मैंने उर्मिला से कहा—''हम लोग यही उतर पडते हैं। यहा से बस और ऑटो कुछ भी मिल जाएगा। हम पुरानी दिल्ली स्टेशन या अतर्राज्यीय बस अड्डे पहुंच जाएंगे। वहा से कोई-न-कोई साधन उपलब्ध हो जाएगा।''

उर्मिला गाडी से उतरकर प्लेटफार्म पर चलते हुए बोली—''फिर वही उल्टी गिनती शुरू।''

"'उल्टे बास बरेली को' कहावत झूठी कैसे हो सकती है? कभी-कभी ऐसे अवसर आ ही जाते है कि आपको फिर वहीं लौटकर आना पडता है जहा से कि आप चले थे। कहना चाहिए—दुनिया गोल है।"

तिलक ब्रिज की सीढिया उतरकर हम दोनों मुख्य सड़क पर पहुच गए। वहा से लगातार बसें गुजर रही थी। मैंने उर्मिला से पूछा—"बोलो कहां चलें—पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन या बस अड्डा?"

"कहीं भी जहां से घर जल्दी-से-जल्दी पहुचा जा सके।"

"तो फिर बस अड्डा ही चलें क्योंकि वहां अभी बसें मिल जाएगी और इतजार भी नहीं करना पड़ेगा। यों गाडिया भी कई जाएगी पर मुझे उनके समय का कोई पक्का पता नही है।"

बहादुर शाह जफर रोड पर बस स्टाप के सामने हम ठहर गए। कश्मीरी गेट की ओर जाने वाली बस ज्यो ही हमारे सामने आकर रुकी, मैं बोला—"यह बस हमे बस अड्डे के पास ही छोड़ेगी। आओ-आओ।"

बस मे मैंने उर्मिला को पहले चढाया और स्वय बाद मे दाखिल हुआ।

बस चल पड़ी तो एक खाली सीट पर उर्मिला के पास बैठकर मैं बोला—"वैसे तो यह महिला सीट है पर यहां कोई दूसरी महिला आसपास खडी नजर नही आ रही है इसलिए तुम्हारे पास बैठने का लाभ मुझे मिल गया।"

"कितनी देर के लिए? बस तो शायद जल्दी ही अपने गतव्य पर पहुच जाएगी।

"हां, कोई पद्रह मिनट मे। पर उतनी देर ही सही।" कहकर मै सीट से उठकर सबसे पिछली सीट पर बैठे कडक्टर से टिकट लेने चला गया।

टिकट लेकर लौटा तो बस दरियागज से गुजर रही थी। लाल किले के सामने आकर बस ठहरी तो अधिकाश सवारिया वही उतर गई।

उर्मिला भौहे टेढी करके बोली—"अब आप किसी भी महिला सीट पर जा बैठिए—सभी खाली पडी है।"

इधर-उधर नजरें घुमाकर मैंने कहा—"मैं एक ही महिला सीट को लेकर संतुष्ट हूं फिलहाल।"

पाच-सात मिनट बीतते-बीतते बस कश्मीरी बस स्टाप पर पहुच गई। मैं उठते हुए बोला—"बस यहा से ढाई-तीन सौ गज पैदल का रास्ता है—हापुड गढ़ मुक्तेश्वर या गाजियाबाद जाने वाली कोई भी बस यहा से मिल ही जाएगी।"

बस स्टैंड पहुचकर मुझे डी.टी.सी की एक बस दिखलाई पड गई। मैंने उर्मिला

से कहा—"प्राइवेट बस जगह-जगह ठहरती जाती हैं और सवा डेढ घंटे से पहले नही पहुचती। यह डी टी सी. की वस बस गिने चुने स्टापो पर ठहरेगी। चलो इसी से चलते है।"

डी.टी.सी. की वस मे हम वैठे ही थे कि वह चल पडी। मैंने खाली सीट की ओर सकेत करके उर्मिला से कहा—"तुम वह सीट घेर लो। मै टिकट लेकर आता हूं।"

उर्मिला उस सीट की तरफ वढी तो कंडक्टर बोला—"बाऊजी आप भी सीट पर जा के बैठो मै उधर ही टिकट बांटने आ रहा हूं।"

मै उर्मिला की बगल मे जाकर बेठ गया और संतोष प्रदर्शित करते हुए बोला—"अब तो हम लोग शायद एक घटे से भी पहले अपनी मजिल पर पहुच जाए।"

"चलो अच्छा है, देर से ही सही—यहां आकर ठीक किया। पहले यहीं आए होते तो बेकार की भागम-भाग से तो निजात मिल जाती।"

"तुम्हारी धारणा के हिसाब से यहा भी होनी कौन सा पीछा छोड देती? तब देर का और कोई कारण बन जाता। जव देर होनी थी तो फिर उसे कौन रोक सकता था?"

"हां यह तो है फिर भी आदमी सोचता है ही कि यह न करके यह किया होता तो शायद अच्छा था।"

"करना और पछताना आदमी की फितरत है। ईसाई धर्म के अनुसार यह सृष्टि पाप से उत्पन्न हुई है इसीलिए इसमे पछतावा ही पछतावा है। पछतावे से छुटकारा पाने के लिए ही आत्म स्वीकृति है जिससे मन पर कुछ बोझ न रह जाए।"

"यह बात बड़ी विचित्र है कि इस सृष्टि के मूल मे पाप है। जो एक निश्चित प्रक्रिया का परिणाम है और मनुष्य या किसी के हाथ मे अपना पैदा होना नहीं है उस पर भी पाप का आरोपण किया जाता है। इस तरह तो आदमी मे वेवजह अपराध बोध जन्म लेगा।"

"अब इस सवध मे क्या कहा जाए। सभी धर्मो की सृष्टि को लेकर अलग-अलग अवधारणाए है। हम हिंदू पुनर्जन्म और संस्कार मानते है। आत्मा को सारे दोषो से मुक्त खयाल करते है।"

उर्मिला बोली—"यह सस्कार वाली थ्योरी तो कुछ समझ में नही आती।" ब्राह्मण के बेटे मे तो ब्राह्मण वहा के ही संस्कार होते होंगे क्योंकि जन्म जन्मातरो

स वह ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होकर अच्छे सस्कारो की मपदा संग्रहीत करता रहा होगा।"

मै बोला—"माना जा सकता है कि वह श्रेष्ठता लेकर ही उत्पन्न होगा।"

उर्मिला विद्रूप की हंसी हसते हुए बोली—"अगर पैदा होते ही वह चाडाल या कसाई को दे दिया जाए तो जाहिर है वहा उसे चाडाली अथवा जीव हत्या का कार्य करने को ही मिलेगा। तब उसका ब्राह्मणत्व का सस्कार वहा जाकर कैसे चरितार्थ होगा?"

"हो सकता है उसका वह सस्कार वहा जाकर भी बलवान बना रह जाए और वह उस धंधे में रुचि ही न ले। यदि वह कार्य विवशता वश करना भी पड जाए तब भी उसमे उसकी कोई दिलचस्पी पैदा न हो।"

"ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा होने लगे तो सब लोगो के पैतृक धधे चौपट हो जाएगें। जबकि हम हमेशा से देख रहे हैं कि व्यवसायी का कोई बच्चा नौकरी करने मे दिलचस्पी नही रखता।"

मैंने कहा—"यह दिलचस्पी की बात नही है। यह सुविधा का प्रश्न है। कोई धधा खोजने या नौकरी तलाशने जाने की असुविधा से बचने के लिए प्राय लोग अपने पैतृक धधे में लगे रहते हैं मगर अब यह प्रवृत्ति भी बराबर बदलती जा रही है। जैसे-जैसे काम करने के लिए विविध क्षेत्रों का विस्तार होता जाएगा पैतृक धंधो का आकर्षण स्वय ही खत्म होता चला जाएगा। अब अध्यापक का बेटा अध्यापक और पटवारी का बेटा हमेशा पटवारी नही बनेगा। प्रत्येक मनुष्य इस ससार में आकर अपने भीतरी मनस्तत्त्व की भूमि ही खोजता है। ससार मे ऐसा कभी नहीं होता कि ब्राह्मण के पुत्र में हमेशा वही गुण हों जो ब्राह्मण की जीवनचर्या के लिए अपरिहार्य हैं। यही कारण है कि पुराकाल में वर्ण व्यवस्था प्रतिष्ठित हुई थी। उसमे काफी लचक थी। व्यक्ति का वर्ण जन्म से नहीं कर्म करने से निश्चित होता था।"

"पर भारतीय समाज में कभी लचीलापन रहा होगा, इसकी तो मैं कभी कल्पना भी नहीं कर पाती। हमारी वर्ण व्यवस्था संस्कारो के नाम पर एक क्रूरतम बेड़ी ही साबित हुई है। और आज बीसवीं सदी के अत पर भी उसमें शुभ की ओर जाने वाला कोई उल्लेख्य लक्षण विकसित हुआ है ऐसा भी नही लगता। वर्ण व्यवस्था के नाम पर जो एक जड़ सामाजिकता निर्मित हुई है उसने तो जैसे सहज ढग से जीने की इच्छा ही लील ली है। पता नही कितने नर-नारी इस वर्ण व्यवस्था की नृशंस बेदी पर गाजर-मूली की तरह बलि चढ जाते है।

शायद इस हत्याकांड का कोई हिसाब लगाना भी संभव नही है। मबसे विचित्र बात तो यह है कि पुरुष समाज चेतना संपन्न होने का दावा करते-करते उसी जड सामाजिकता का हामी बन जाता है जो युगो से इस समाज को कायर और खोखला बनाती चली आ रही है।"

मुझे उसकी बाते सुनने में दमदार और सही लग रही थी इसलिए मैंने उर्मिला के बोलने मे बाधा उपस्थित नही की। वह कह रही थी—"दरअसल होता यही है कि हम भारतीय बहुत ऊंची उड़ान भरते हैं। यह भी एक तरह की मानसिक बीमारी हे कि हमारा आशय तो बहुत हीन हो और हम उसे महानता के कीमखाब मे लपेटकर पेश करें। यह कुठा एक पूरे समाज की दृष्टि है। हमारे श्रीमान् जी को ही लीजिए। जब वह बातें करते हैं तो वेद-वेदांग श्रुति-स्मृति, उनके जिह्वाग्र पर आकर छोटे पहुने लगते हैं। पर इन सबके बावजूद मानसिकता यही रहती है कि उनकी पत्नी उनके बनाए हुए संकीर्ण साचे से जरा भी इधर-उधर न हो जाए और अगर कभी किसी के साथ हंस बोलकर खुश होने का अवसर पा जाए तो उसे दंड देने की गरज से उसका बटुआ लेकर ही भाग जाया जाए।"

बिना किसी लाग लपेट के उर्मिला ने जिस कड़वे सत्य को कह दिया वह सुनने मे वहुत कटु था मगर उसका यथार्थ इतना ज्वलनशील था कि उस पर उंगली उटाने की कहीं कोई गुंजाइश ही बाकी नहीं थी। मै उनके इस गर्हित कर्म को किसी मनौवैज्ञानिक भावना मे लपेटकर स्पृहणीय भी नही बना सकता था।

मैने कमजोर स्वर में कहा—"इसका शायद कोई और भी कारण हो सकता है।"

"अब लीपा-पोती आप ही करे। मानव-व्यवहार पर शोध करने वाले इसकी सेकडों ढंग से व्याख्या कर सकते है क्योंकि विद्वानो को तो व्याख्याओ और परिभाषाओ की अधी गलियों में घूमने का शौक ही होता है। मीमांसा करने मे भी एक तरह का मानसिक व्यायाम तो होता ही है पर घोर और कटु यथार्थ का धरातल इससे कुछ बदल नहीं जाता। आदमी की हीन प्रवृत्तियों को मै इतना देख चुकी हूं कि अब इस विषय मे बातें करना भी लज्जाजनक मालूम होता है।"

"पर उसकी हीनता के बारे में बातें न करने से भी तो मन कुछ ज्यादा पवित्र या स्वस्थ नही हो जाता। जो मन में हो वह हर हालत में बाहर आना ही चाहिए। अन्यथा वह कोई दूसरी तरह की मानसिक ग्रथि पैदा करेगा। कई बार मधुर शब्दों के प्रयोग के बजाय गाली का प्रयोग अधिक प्रभावी होता है।"

रोष हो तो गाली ही दी जाती है उससे ही मन का जहर बाहर निकलता है पर रोष और गाली भी कम महत्त्वपूर्ण नही है कि किसी पर भी गारत कर दिए जाए। जो आपसे गालिया खा सकता है वह कितना अंतरंग होगा यह कोई कहने की बात नहीं है। अपने पति को कोसने की मुझे कभी इच्छा नहीं होती। इतना ही अधिकार वह पा लेते तो भी गनीमत होती।

"पारस्परिक अनुपस्थिति सवादहीनता को ही जन्म दे सकती है।"

उर्मिला बोली—"संबंधो मे एक थ्रिल, एक थरथराहट एक विस्मृति की मूर्च्छना का अहसास ही न जगे तो सस्पर्शहीन साथ चारदीवारी मे रहकर कैद काटने जैसा है।"

"यही सच है। मुझे अतरगता हीन साथ के कई उदाहरण पता है। शायद हम जीना जानते ही नहीं या उसे स्थगित करते चले जाते है। जितनी जल्दी हम भीतर से मरते है और बुझ जाते है उसे जान समझकर खेदपूर्ण आश्चर्य होता है। आगे बढ़ने से कतराकर जड भाव से कही ठहर जाते है। यह आगे बढे बिना ही एक पस्त वापसी है। शायद यही कारण है कि वास्तविक थिरकन या सिहरन हम जानते ही नही हैं। जीने मे एक भीतर का जोश और जोर होता है। उस तरह के जीने में कोई जोखिम भी नहीं हो पर पता नहीं खुलकर जी लेने मे हममें यह निराधार अहसास क्यों जग उठता है कि कहीं यह अनैतिक और पापपूर्ण तो नहीं है।"

वह ठठाकर हंस पडी और बोली—"खुलकर सास लेने में कभी-कभी तो यह लगता है जैसे कोई अनधिकार चेष्टा कर रहे हैं। यह सिमटते, सिकुडते चले जाने वाला भाव ही संकुल, आत्मभीरु और अततः आत्महीन बनाता है। जिस नदी मे मात्र रेत हो वहां नाव चलाने का उफान किसके जी मे पैदा हो सकता है?"

"हमारे दाम्पत्य जीवन मे भी बहुत बार झूठी हया शर्म आड़े आती है। यह संबध अधेरे का बनकर रह जाता है मानो प्रकाश मे घनिष्ठता वर्जित हो। मैं एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात आपसे पूछना चाहता हूं।"

उर्मिला ने अनुमान से मेरा प्रश्न पकडने का प्रयास करते हुए पूछा—"अवश्य पूछिए। आपसे तो अब किसी प्रकार का दुराव रह ही नही गया है।"

"आपने कभी पडित जी से खूब-खूब बाते की हैं। जब ऐसा लगा हो कि कितनी भी बातें करते चले जाने पर भी आपका मन भरा नहीं है। आप दोनो के बीच सवाद मुखरता की स्थिति क्या है।"

"उनके साथ बहुत संवाद करने की अतः प्रेरणा मेरे भीतर शुरू से ही

कभी नही जगी बल्कि एक विचित्र अटपटेपन की अनुभूति ही आडे आती रही है। बिना कहे-सुने ही कोई पारस्परिक समझ बने, मै यही सोचती रही हूं। मुझे पारस्परिक विश्वास अथवा विश्वसनीयता को टटोलना हमेशा लज्जास्पद लगता है।"

"क्या तुम यह नही सोचती कि वह भी नि शब्द और अमुखरित होकर आपसे कही गहरे, सस्पर्शो की कामना करते हो। वह बिना मागे कुछ माग रहे हों और आप उनकी ओर से याचना की कामना कर रही हों।"

"मै कोई अंतर्यामी तो नही हूं कि मै ही सोचती रहू कि किसी को किस समय क्या चाहिए और वह अपने मुंह से कुछ भी न कहे।"

आदमी का मन बहुत विचित्र है! उसमे तरह-तरह के अभिमान भरे होते हैं। वह कुछ न कुछ बात पर कभी-कभी रूठ जाता है। इसका कारण कोई बहुत बड़ा नही होता। हो सकता है उन्हें यह सोचकर क्षोभ होता हो कि आप उनके सामने ही एक गैर आदमी से बहुत सहज मन से खुला व्यवहार रखती हैं—हसती बोलती है। मेरे प्रति आपकी अंतरगता उन्हें अपना अपमान भी तो लग सकती है।"

"अब निराधार बातो को लेकर कोई मन मे गांठ बांधकर बैठ जाए तो मैं क्या कर सकती हूं, आप ही बताइए?"

"आप उन्हें 'कोई' समझती है—यह क्या आप ठीक करती हैं। वह आपके जीवन में जबरदस्ती तो दाखिल नहीं हो गए हैं। आपने उनका वरण किया है। वह अपनी पत्नी को किसी से मुक्त व्यवहार करते देखकर स्वय को उपेक्षित अनुभव करने लगें तो इसमे उनका दोष तो कुछ नहीं है।"

"वह किसी से बातचीत करें या उसमें रुचि ले तो मैं कहां कोई दखल देने जा रही हूं। वह जहां अध्यापन करते हैं वहां न जाने कितनी लडकियो में उनकी रुचि होगी—मुझे क्या पता?"

"आपको इस सबंध मे जानने की उत्सुकता होनी तो चाहिए। नहीं है तो यह भी उनके प्रति एक तरह से उदासीनता का व्यवहार है। इस तथ्य को आप कुछ इस ढग से देखिए कि आपके पति किसी परिचित के घर मे जाकर आपकी ओर से तटस्थ हो जाएं और उस घर की गृहिणी के प्रति आकर्षण का मनोभाव दिखाएं—चाहे उसका कोई गंभीर अर्थ न हो। तब भी क्या आप सामान्य रह सकती हैं? मै नहीं समझता कि आप उस स्थिति में सहज और प्रसन्न रह सकेगी।"

उर्मिला हंस पडी और बोली—"चलो वह यही कर दिखाएं। तब मुझे यह तो पता चलेगा कि उनमें भी कहीं किसी के प्रति आकर्षित होने की भावना बाकी है।"

"यह तभी तक जब तक वह वास्तव मे वैसा नहीं करते। करने लगेंगे तो शायद आप किंचित भी सहन नही कर पाएंगी।"

"अच्छा तो आप उनसे कुछ ऐसा ही करा दीजिए और तब मेरा मनोभाव देखिए।"

"आपकी चुनौती का साफ मतलब ही यह है कि वह एकनिष्ठ है। इसीलिए आप उनकी ओर से पूर्ण निर्द्वंद्व हैं। मुझे तो यही अपराधबोध हो रहा है कि मै आपके और उनके बीच में एक शीत युद्ध का कारण बन रहा हू। हो सकता है इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप वह हम दोनो को छोडकर चले गए हैं।"

"आपका अनुमान बेबुनियाद है। जो व्यक्ति एक अल्प परिचित के साथ अपनी पत्नी को छोड़कर चुपचाप खिसक जाए क्या वास्तव में वह अपनी पत्नी को गहराई से प्रेम कर सकता है? आप निश्चित रहे। देख लेना, वह घर में पहुचकर आराम से सो रहे होंगे।"

"अगर ऐसा हो तो मुझे बडी राहत मिलेगी।"

"बिल्कुल यही होगा। वह इस बात से बहुत संतुष्ट होंगे कि उनकी पत्नी की गांठ से कुछ भी खर्च नही होगा।"

"मैं यह बात नही मान सकता। वह आपके जायज खर्च पर रोक क्यो लगाने लगे?"

"जायज खर्च क्या है? इसे कौन तय करेगा? पति ही न?" वह कठोर हमी हसकर बोली।

"जब पत्नी आर्थिक रूप मे स्वतत्र होती है तो यह पति की इच्छा से तय नही होता कि वह अपने हित मे कहां क्या खर्च करेगी।"

"यही आप एक बडी भूल कर रहे हैं। पत्नी की कमाई को कोई पति उसका स्वतंत्र अर्जन स्वीकार नहीं करता। हर पति यही चाहता है कि जो कुछ भी वह कमाकर लाती है—एक-एक पैसा उसे सौंप दे और फिर एक-एक पैसा उससे रिरिया कर मागे। जो भी अपने ऊपर खर्च करे उसका राई-रत्ती उसे हिसाब दे।"

मै सोच मे पड गया! क्या यह सच हो सकता है? मैं अपनी अनुभवहीनता के चलते इस पर बहस भी क्या करता? तभी उर्मिला ने बोलना शुरू कर दिया—"एक दिलचस्प पहलू यह भी है कि चाहे पत्नी की आय पति से कही अधिक हो पर वर्चस्व पति का ही होना चाहिए। कभी-कभी तो स्थितियो की विसंगतिया, यहा तक देखने मे आती हैं कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं है।"

मैंने पूछा—"वह कैसे?"

"मैं अपने साथ की ही एक अध्यापिका की बात बतलाती हूं। उसके पति महोदय कोई काम नही करते। जबसे उनका विवाह हुआ है—तभी से निठल्ले है। हां उन्होने बच्चे जरूर कई पैदा करने की मर्दानगी दिखाई है। पत्नी की कमाई पर सब शौक पूरे कर रहे है। एकदम नवाबी ढग से रहते है। बेचारी पत्नी घर मे एक नौकरानी की तरह खटती रहती है पर वह उस तरफ से अपनी आखे हमेशा बंद रखते हैं। उस निरीह औरत से वह इस तरह पेश आते है जैसे उन्होंने उसके साथ विवाह करके बड़ा भारी अहसान किया हो। जब कभी समय जानना होता है तो पलग पर लेटे-लेटे ही पूछते हैं। उनके सिर पर दीवार घडी लगी है पर क्या मजाल कि आखे उधर करके वक्त जान लें। वह गरीब रसोई मे हो या गुसलखाने मे वही से उनकी गुहार पर दौडी चली आती है और उन्ह समय बतलाती हैं।"

मैंने विनोद मे पूछा—"वह वक्त क्यों जानना चाहते हैं—जब उन्हे बिस्तर से उठकर कही जाना ही नही होता।"

उर्मिला बोली—"पता नहीं कहा जाना होता होगा।"

मै बोला—"जब लडकिया निठल्ले और नाकारा लोगों से शादियां रचाएगी तो यह सब उन्हे भुगतना ही होगा। इस तरह की लडकियां क्या शादी से पहले यह नहीं जानती? मुझे लगता है कि एक उम्र पर लड़कियों को शादी की ऐसी जल्दी पडी रहती है जैसे गाडी छूटी जा रही हो। वह कही भी पांव फंसा लेती है। बाद मे इस तरह की भूलो के परिणाम सामने आते हैं पर तब क्या किया जा सकता है?"

"आप बहुत एकागी बात कर रहे हैं प्रभाकर जी। शादी न करे तो क्या करें लडकियां बेचारी? उनके सामने दूसरा विकल्प भी क्या है?"

मै बोला—"पढ-लिखकर जब नौकरिया कर सकती है, अपना शहर छोडकर सैकडों मील दूर जाकर अकेली रह सकती हैं तो विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर आखें क्यो बंद रखती है? क्यों नहीं समझ पातीं कि शादी उनके जीवन का एक निर्णायक मुद्दा है?"

"हमारे समाज मे लड़की की अहमियत ही क्या है? पढ-लिखकर भी उसे कोई बडी भारी स्वतन्त्रता नही मिल जाती है। बल्कि सच पूछिए तो उसे पढाया भी महज इसीलिए जाता है कि मां-बाप को उसकी शादी करने मे कुछ कम झंझट पड़े। हमारे घरो में लडकी को एक खास उम्र के बाद अविवाहित रखना अभिभावको को अपराधी

घोषित करने जैसा है। बीस की उम्र पार करते-करते लडकी घर में एक काटने वाली छुरी लगने लगती है। ऐसी स्थिति मे अभिभावको को पुरुष नजर आने वाला कोई भी, कैसा भी अपनी बेटी के लिए सुयोग्य वर दिखाई पड़ने लगता है। गोया उन्होने अपनी बेटी के हाथ जल्दी पीले न कर दिए तो पूरा परिवार जलकर भस्म हो जाएगा। फिर किसी पढ़ी-लिखी या कि बहुत विदुषी के लिए भी कौन-सा मार्ग बच रहता है? वह अपने बलबूते घर छोडकर कही जाकर कैसे अकेली रह सकती है? क्या हमारा समाज उसकी सुरक्षा की कोई गारंटी दे सकता है? ऐसी दशा में शादी ही उसकी सुरक्षा की एक मात्र गारंटी समझी जाती है और विवाह के नाम पर उसे किसी भी खाई-खोह में फेक दिया जाता है।"

"यों मै आपके तर्क से सहमत हू पर इतने सरसरे तौर पर इस स्थिति का साधारणीकरण नहीं किया जा सकता। आप यह भी तो देखें कि प्रकृति की ओर से नारी को जो दैहिक रचना मिली है उसके चलते उसके लिए घरेलूपन की कामना सर्वोपरि है। उसे घर चाहिए जहा वह अपनी सृष्टि की अपने ही ढंग से रचना करके सुखी और संतुष्ट रह सकती है। बात यदि केवल आर्थिक स्वतन्त्रता तक सीमित होती तो परिश्रम की नारी आज पूरी तरह से सुखी और सतुष्ट हुई होती क्योकि उसको अर्थ की स्वतंत्रता बहुत बडी सीमा तक उपलब्ध है। पर वास्तविकता यह है कि हर प्रकार की स्वतंत्रता और आर्थिक आत्म निर्भरता के बावजूद यूरोप में दाम्पत्य विग्रह कुछ कम नही है। जितने तलाक वहा एक दिन में होते हैं शायद यहां वर्ष भर मे भी नहीं होते होंगे। फिर सारे यूरोप की जनसख्या और अकेले भारत की जनसंख्या का अनुपात भी देखें।"

उर्मिला ने कहा—"अति सपन्नता भी तो एक रोग ही है। उससे भी कई विद्रूप खडे होते है। यूरोप के साथ यहां की तुलना ही नहीं हो सकती। वहां का सारा ढांचा व्यक्तिवाद पर खड़ा है। वहा घर-गृहस्थी उस अर्थ मे रेखांकित ही नहीं होते जिस तरह से भारतीय समाज मे स्वीकृत है।"

"तुम आज की बात कर रही हो न? मैं आज भर की बात नहीं कर रहा हूं। एक शताब्दी पहले यूरोप मे भी घर परिवार का ढांचा काफी कुछ अलग था। यूरोप विज्ञान और दूसरे क्षेत्रो में उन्नति करता चला गया और औद्योगिक उत्थान के साथ जो आर्थिक संपन्नता आई उसने घर-परिवार के स्वरूप को बिल्कुल बदल डाला। सामती युग में मूल्यों में जो ठहराव था वह औद्योगिक युग में टूट बिखर गया और आज तो वहां भी हाय तौबा और आपा-धापी मची है।"

"इसका अर्थ क्या यह हुआ कि आप सामती युग को अच्छा समझते है? उस युग के अभिशाप को नारी ने जिस तरह झेला है उसकी ओर से शायद आपने आखे फेर ली है। सामंती काल में नारी को केवल बच्चे पैदा करने की मशीन या फिर दिल बहलाव का साधन समझा जाता था। यह वेश्या रूपी कोढ आपके सामती युग की ही देन है। एक तरफ उससे दैहिक पवित्रता की अपेक्षा दूसरी ओर उसी नारी से खुले रूप मे दैहिक खिलवाड़! वाह रे आपका सामंती युग और उसकी श्रेष्ठता!" अपनी बात कहकर उर्मिला ने घृणा से अपने होठ सिकोड़ लिए।

"मै सामंती युग का कतई पक्षधर नही हू उर्मिला जी। न यह कहना चाहता हू कि पिछला काल आज से बेहतर था। मै सिर्फ उस मूल्यात्मकता और स्वस्थ सामाजिकता की बात कहता हू जो स्त्री के द्वारा ही बने रह सकते है।"

"यानी बलिदान देना, धीरे-धीरे छीजते रहकर उदात्त की रक्षा कर ले जाना, मात्र भोग तक सीमित न रहना ही स्त्री के हिस्से मे आता है।"

"मात्र भोग तक सीमित रहने में स्त्री की कौन-सी महान् उपलब्धि हो सकती है? जबकि पुरुष तो उसे मात्र भोग्या ही बनाने का प्रयास करता आया है। यह भोग की प्रवृत्ति जो इन दिनो वूमेन लिब के नाम पर विकसित हुई उससे सारे सामाजिक मूल्य उलट-पुलट हो गए हैं। स्त्री अपना मूल स्वरूप विस्मृत करके एक गलत होड़ में पड़ गई है। न इससे उसका अपना कोई हित सधने वाला है न समाज का।"

उर्मिला ने कहा—"समाज के मंगल की किसे फिक्र है!" सब लोग एक अजीब-सी आपाधापी में जीते चले जा रहे है। इतना अवसर ही किसके पास है, जरा ठहरकर अपने दाएं-बाएं नजर डाल ले। सच पूछो तो हम एक जबरदस्त अस्वीकार मे जी रहे हैं।"

उसकी बात पर मैने सहमति व्यक्त की—"हा हो तो बिल्कुल यही रहा है। जिसे आप अस्वीकार कहती है उसे मैं आत्म बहिष्कार कहता हूं। वह हमे अनात्म बना रहा है। लगता है अब भारतीय जीवन का एक भी क्षेत्र ऐसा बाकी नहीं बचा है जहा आयातित मूल्यो को आखे मूंदकर स्वीकार न कर लिया गया हो। इससे विघटन के अलावा और क्या स्वस्थ स्थापना संभव है?"

"आप जिसे संपूर्णता कहते हैं वह यहा कब और कौन से काल मे थी? भारतीय जीवन पद्धति यूरोप के जीवन मूल्यों से कभी बेहतर ही होगी—मुझे तो ऐसा नहीं लगता। सच पूछो तो न हमारे अपने कोई जीवन-मूल्य और सिद्धात है न हम यूरोप की जीवन पद्धति को निश्शक भाव से ग्रहण कर पाते है। हम

उनकी देखा-देखी विज्ञान की ओर लपकते है, फिर वह भी हमें अनात्म और विनाशकारी लगने लगता है। हम औद्योगिक सम्पन्नता की दिशा में लपकते है फिर हमे उसमे स्वदेशी का हनन दिखाई पडने लगता है और अकस्मात् गांधी जी और उनका निष्कामयोग दर्शन याद हो आता है। उनकी स्मृति का एक अवसाद प्रद रूप कुटीर उद्योग के रूप मे उभरता है। दूसरी ओर हमारे राजनीतिज्ञ हम यह समझा रहे है कि हमे युग के साथ चलना है तो उदारीकरण की ओर से मुह नही मोड़ सकते।''

उर्मिला का विश्लेषण बहुत सटीक था। मैंने कहा—''हां यह तो है। कहना चाहिए यह एक तरह की वैचारिक भ्राति है जो घोर अराजकता फैला रही है।''

वह विद्रूप से बोली—''मतलब बात राज की ही होनी चाहिए—अराज या जनतत्र की नही?''

मैं बोला—''हम शब्दों को ही पकडकर न बैठ जाए तो राज का मतलब मात्र राजा नहीं बल्कि व्यवस्था और राज्य भी हो सकता है और व्यवस्था तो किसी भी समाज को चाहिए ही। निजाम का मतलब बस निजाम हैदराबाद ही नही है वह भी व्यवस्था के अर्थ मे ही है।

''आप राज कहें, निजाम कहें, व्यवस्था कहें, मुझे इस सबसे कोई विरोध नही है मगर जब अव जनता तक आएंगे तो इन सारे शब्दों के मुलम्मे उतर जाएंगे। वह बेचारी तो भेड सरीखी है जिसे मुडना ही मुडना कपडे-लत्ते खाना-पीना भाषा-बोलचाल कहा से कैसे उसके ऊपर डाली जा रही है, वह नही देखती। बस जो भी आप व्यवस्था के झांसे मे उसे दे देते है वह झट से अपना लेती है। जिसके घर में यह सब प्रवेश नही पा सकता। वह घर परिवार मुख्य धारा से बाहर, कटा हुआ। इस अंधी गति को कौन रोक पाएगा। आप किस संस्कृति की बात करते हैं? बड़ा वर्ण शकर वर्ण शकर किया जाता था और उसे घृणा की नजर से देखा जाता था आज वही वर्ण शंकर हमारी मुख्य धारा है।''

मैंने गहराई से महसूस किया कि वास्तव में पडित मुकुंद माधव, पति के रूप मे उसके लिए एक बहुत ही अपर्याप्त व्यक्तित्व सिद्ध हुए हैं। उसके मानसिक क्षितिज छूना और समझना उनके लिए एक असभव बात है। उसकी प्रखरता—सूक्ष्म भावों की पकड़, स्थितियों का गभीर विश्लेषण तथा आंकलन अनोखा है। वह उसे घरेलू स्त्री तथा साधारण पत्नी बनाकर रखना चाहें तो वह उस भूमिका मे कभी खुश नहीं रह सकती। वह हमेशा प्रतिरोध करने वाली विद्रोहिणी ही बनी रहेगी। पडित मुकुद माधव ने शास्त्रों का अध्ययन, अनुशीलन जरूर किया था पर उन्होने, गभीरता

से कभी उर्मिला की मानसिकता को समझने का प्रयास नही किया था। उनके भीतर वही पतियो वाला स्वाभाविक शैथिल्य था जिसके चलते कोई पत्नी पति की दृष्टि मे विशेष अथवा दूसरों से अलग नहीं बन पाती।

उर्मिला को परितोष देने की दृष्टि से मैंने सोचा कि उसकी सारी कडवाहट को अभिव्यक्ति मिलनी ही चाहिए। मैंने उसका पक्ष लेते हुए कहा—"यह तुम सही कहती हो कि पति नाम का प्राणी किसी पत्नी का सही मूल्याकन नहीं कर सकता। क्योंकि विवाह के प्रणय क्षणों की उद्दामता को वह देर तक जीवित नही रख सकता और थोड़े समय बाद ही वह और तरह का आचरण करने लगता है। वह जिसे 'आप' से संबोधित करता है उसे 'तू' भी कहते हुए अहसान जतलाता है।

उर्मिला बोली—"कोई अजनबीपन मे 'आप' कहकर घनिष्ठता के क्षणों मे 'तू' पर उतर आए इसका तो मै कतई बुरा नहीं मानती पर वह थोडे दिनों बाद ही अगर 'तू-तू मै-मैं' पर उतर आए तो क्या कहा जाय। तू में भी गहरा प्यार अभिव्यक्त होता है पर वह 'तू' उपेक्षा तो न बन जाए।"

"उपेक्षा तो न 'तू' मे है न, आप में। असल बात तो यही है कि 'हमें' व्यवहार के स्तर पर कितनी घनिष्ठता मिलती है।"

"सबोधन अगर स्पर्श से जुड़े हुए हो तो फिर वह कहीं अनादरणीय नहीं है।"

"आदरणीय हमे कौन मान सकता है? शूद्र और स्त्री इस समाज में एक तरह से घूरे पर फेंका हुआ उच्छिष्ट ही तो है।"

"घूरे पर फेकी हुई वस्तु को सहेजने वाले हमारे समाज में भी मौजूद है। माणिक्य तो हर स्थिति में मूल्यवान ही होता है।"

"ढूंढ़ते रहिए आप घूरे पर मणियां उनका कद्रदान कोई नहीं है क्योंकि उनकी आधारभूमि श्रेष्ठ नहीं है तो वह उच्छिष्ट और उपेक्षणीय ही है।"

मै बोला—"देर सबेर उनका कोई न कोई पारखी सामने आता ही है।"

"आता होगा पर तब तक क्या शेष रह जाता है? आपने तो आज सारे दिन की स्थितिया देख ली हैं। मेरी ओर से ऐसा क्या अकरणीय हुआ है कि मेरे साथ वैसा व्यवहार किया गया है। स्त्री का सहज भाव से जीना भी इतना भारी अपराध है कि उसे सारी दुनिया के सामने जलील करने की कोई हद ही न रहे।"

मैंने कहा—"लेकिन जो तुम्हारा सहज प्राप्य है उसे तो किसी भी तरह प्राप्त करना ही चाहिए और इसे मैं अनुचित भी नहीं मानता। अन्याय का प्रतिकार तो हर स्थिति में किया जाना चाहिए।"

उर्मिला उदास स्वर मे बोली—"अन्याय का प्रतिकार करने वाली कौन-सी स्त्रिया है? वही न जो उच्च वर्ग से सबध रखती हैं।"

मैने उसके कथन मे बाधा दी—"उच्च वर्ग की स्त्रिया तो अपने चारों ओर सुरक्षा की ऐसी बाड बनाकर जीती है कि उनसे तो किसी तरह की विद्रोह की आशा ही नहीं की जा सकती।"

"नहीं। उनमें एक वर्ग ऐसा भी है जो वास्तव में 'रिबेल' तो नहीं होता ओर न किसी गहरी आंतरिक प्रेरणा से परिवर्तन कामी होता है मगर वह स्वय को केद्र मे रखकर यश की लिप्सा से आंदोलन खडे करने का आभास देता रहता है। उनके द्वारा भी भला किसी का हित सध सकता है? आप देखिए, रात-दिन इस दुनिया मे करोडों औरतों के साथ न जाने कितनी अनहोनी घटती रहती है। उन्हे कितनी-कितनी तरह की पीड़ाएं और यातनाएं नहीं दी जाती? इन इलीट क्लास की भद्र महिलाओं को कानोंकान खबर भी नहीं होती। सभानेत्रियो को तो बस मीडिया की चमक-दमक चाहिए और इतना ही उनका अभीष्ट भी है।"

"मैं मानता हूं कि स्थिति वास्तव में ऐसी ही है मगर उनके द्वारा जो कुछ भी थोडा बहुत हो रहा है उसे बिल्कुल नजरदाज नहीं किया जा सकता। वह थोडे अश मे ही सही निदनीय स्थितियों को उजागर तो कर रही हैं।"

"खाक उजागर कर रही है यह महान् महिलाए! सभा सोसायटी मे अपनी छवि निखारना ही उनका एक मात्र उद्देश्य है। इससे उन्हे विदेशों में जाकर नारी स्वातत्र्य पीटने तथा औरतो का प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिलता है। बाहर से लौटकर आती हैं तो उन्हे भी कोई सरकारी गैर सरकारी अलंकरण या इनाम इकराम मिल जाता है। साधारण औरतों की पूरे एशिया में एक जैसी दशा है। वह बेचारी प्रतिरोध करने का साहस भी करे तो उनके पावो के नीचे जमीन कहा है?"

मैने उसे समझाने का प्रयास किया—"कोई सुगबुगाहट की चिनगारी तो चाहिए ही। उससे माहौल तो बदलने ही लगता है। मैं नहीं कहता कि आप विद्रोहिणी का बाना धारण कर लें पर फिर भी इस दिशा मे कुछ प्रयास तो करना ही चाहिए।"

"मुझे नही उत्साह होता इस तरह के व्यर्थ प्रयासो को लेकर।" मैंने कहा—"मगर कोई रुक भी तो नहीं सकता। चलना ही नियति है, भले ही न दौडें पर गतिशील तो रहना ही होगा। समय की कोई सीमा नहीं दिशाओं का कोई अत नहीं। यो देखे तो आदमी की जिंदगी ही कितनी है। समय के अखंड और अनत बहाव में सागर की एक बूंद से भी कम।"

"सागर तो मैं नहीं जानती पर अगर हम मनुष्यों की जिदगी बूंद बराबर ही है तो भी ज्यादा ही है। क्या जरूरत है इतनी बेमतलब जिदगी की? फिर आपने कहा कि दिशाओं का भी कोई अत अथवा सीमा नही है तो यह और भी बडा धोखा है। किसी के सामने एक ही रास्ता हो उस पर चलते हुए शायद कही पहुच तो सकता है पर जब हर ओर रास्ते खुले पड़े हो तो वह किस मार्ग पर चलकर पहुचेगा कहा?"

"किसी के भी पास जीवन के प्रश्नों का सामन्यीकृत निदान नहीं हैं इसलिए एक ही मार्ग सही अथवा पूर्ण प्रशस्त है—कोई नही कह सकता। इस मकडजाल सरीखे फैले जगत् को कौन जानता है? बहुत लोग दार्शनिको के मुखौटे लगाए घूमते है और अपने द्वारा निर्दिष्ट मार्ग को ही सही कहते है पर वह हाथी का पांव टटोलने वाले अंधो से जरा भी भिन्न नही है। सपूर्णता जैसी कोई वस्तु या विचारधारा यहां नही है। सब जगह अधूरापन ही अधूरापन है। हम अपनी अपूर्णता को भरने के लिए जीवन के विविध रंगो की तलाश मे जुटे रहते है। जीवन कितना ही एकरस और निश्चित सी दिनचर्या से बंधा हुआ दिखाई पड़ता हो पर वास्तव मे यह अपनी सारी सीमाओं और आधे अधूरेपन के बावजूद विविधता से एकदम खाली नही है।"

"पर विविधता देखने वाली आखें भी तो चाहिए।"

"यह तो बहुत ही सरल है। बस इतना भर हो कि आपके भीतर कोई गाठ न हो। आप अपने सामने देखें तो अपार भीड़ चेहरा विहीन नजर आएगी। सभी एक-दूसरे से अनजान, अपरिचित, असपृक्त चलते-बढते दिखेगे पर यदि थोड़ी-सी दिलचस्पी और लगाव के साथ उन्हें देखना शुरू कर देगे तो विस्मय और जिज्ञासा के कितने ही रहस्य खुलते लगेगे।"

यह कितना चकित कर देने वाला सत्य है कि लगभग वे ही नाक नक्श, वही-वही रंग-रूप मगर प्रत्येक चेहरा अलग-अपनी जबरदस्त मौलिकता की रक्षा करता हुआ। देह का सत्य देखे तो भीतर भी सब कुछ एक जैसा होते हुए भी वास्तव मे कुछ भी एक-सा नही है। इस वैविध्य में कोई मिलावट नहीं है। यह अपने सपाटपन में भी उतनी ही मौलिक है। जितनी अपने सपाटपन में। आखिर यह क्या है जिसे हम लाख सिर मारने पर भी नहीं समझ पाते, खोजकर भी नही खोज पाते। कितना भी कोशिश करके असफलता ही हाथ लगती हैं। इस विविधता को अविश्लेषित ही मानकर शात हो जाएं तो गाठों और दुराग्रहो से बच सकते हैं। बिखरने से हमारी रक्षा हो सकती है। हमे स्वयं को प्रस्तुत रखने के प्रति सतर्क रहना चाहिए। स्वागत द्वार खोलकर रखना ही उचित है। हमें प्रतीक्षाएं हमेशा बनी रहती हे और वह एक सीमा के बाद वह उन्मन बनाती हैं। हमारा द्वार खुला होगा तो कोई

दस्तक देकर नाट नहा जाएगा   आगत का पग ध्वनि ही हम अपनी पहचान का कोई सूत्र दे देगी।"

मेरे लबे व्याख्यान से उर्मिला अप्रतिभ नही हुई। अपने धीरज कायम रखते हुए बोली—"आपने बडी गहरी और गभीर व्याधियो के निदान खोज डाले पर क्या आपकी दवाओं के बावजूद बीमारिया अपनी जगह जस की तस मौजूद नहीं हैं?"

"है ही! चूक तो सबसे हो सकती है। तर्क, सतर्कता हमेशा कारगर नही होते पर फिर भी हमें सन्नद्ध रहने से ही सतुष्टि मिलती है।"

मेरी बात का उत्तर न देकर उर्मिला ने मुंह पर हाथ रखकर होठ थपथपाए और अपनी घडी देखकर बोली—"हालाकि वक्त कटने का तो पता नही चल रहा है पर लगता है हम लोग घर काफी रात गए तक ही पहुंचेगे।"

"चलो अब तो देर सवेर पहुंच ही जाएंगे। ट्रेन ने तो ऐसी विकट स्थिति उपस्थिति कर दी थी कि कुछ समझ में ही नहीं आता था।"

दस मिनट भी नहीं बीते होगे कि बस स्टैंड पर जाकर खडी हो गई।

बस से बाहर निकलते हुए उर्मिला बोली—"लोग कहते हैं दिल्ली दूर है पर आज तो यही लगा कि दिल्ली से दूर आपका ही शहर है।"

17

इस समय बस स्टैंड पर सिर्फ दो रिक्शे मौजूद थे। रिक्शेवाला कोई भी हमारी बस्ती तक जाने के लिए तैयार नही था। रात को बहुत देर हो जाने पर हमेशा ऐसी ही मुसीबत का सामना करना पड़ता था क्योंकि एक तो शहर से यह जगह दूर थी—इसके अलावा रिक्शेवालो को उधर से कोई सवारी नहीं मिलती थी और उन्हें खाली लौटना पडता था।

हमारे देखते-देखते ही बस स्टैंड खाली हो गया और दो मे से एक रिक्शा सवारी लेकर चला भी गया। जैसे-तैसे मैंने रिक्शे वाले की चिरौरी करते हुए उसे दोनो तरफ का किराया देने की पेशकश की तब कहीं जाकर वह उधर जाने को तैयार हुआ।

दो-तीन किलोमीटर का पूरा रास्ता सुनसान था। हम रिक्शे मे बैठकर चल पडे तो उर्मिला बोली—"आज तो पूरी रात ही दौडते भागते बीती। मेरी वजह से ही आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा।"

"आपकी वजह से ही क्यो। क्या मै ही आपको महरौली लेकर नही गया था। न उधर जाते न इतनी देर होती और न शाम वाली गाड़ी मिस होती।"

"गाड़ी कुतुबमीनार देखने में नही बल्कि साडी खरीदने के चक्कर में निकली। हम पहले वाली ट्रेन से लौटते तो शायद काफी जल्दी घर पहुंच सकते थे।"

मै बोला—"जो हो, मुझे तो आपसे लगातार बातें करते रहने की वजह से वक्त के बारे मे कुछ पता ही नहीं चला।"

यह तो मैं भी मानती हू कि बातों मे समय का कुछ भी पता नहीं चला। बल्कि मै तो कह सकती हूं कि बरसों से मैने इतनी ढेर सारी बाते किसी से नहीं की। बातो का भी अपना एक विशेष सुख होता है और फिर आप जैसा वक्ता हो तो क्या कहना!"

"आप भी कोई मामूली चलती-फिरती वक्ता नही है। मैंने आज आपर बहुत-सी बाते जानी समझी और सीखी है।"

"रहने दीजिए। मै ऐसा क्या जानती हू। छोटी-सी जगह मे रहने वाले हम लोग बड़ी-बडी बातो के बारे मे जानते ही क्या हैं।"

"अच्छा है आपको अपने गुणो को लेकर कोई गलतफहमी नहीं है। अन्यथा समाज, धर्म, इतिहास के बारे में जितना कुछ जानती है उतना तो बड़े-बडे पंडित भी नही जानते होगे।"

हम लोग बातें करते-करते घर तक पहुंच गए। मैंने रिक्शाचालक को भाड़ा चुकाया और दरवाजे की ओर बढ़ते हुए बोला—"असल मे अब मुझे अपराध बोध हो रहा है।"

"काहे का अपराध बोध-दरवाजे पर तो ताला ही नही है। वह तो जल्दी ही लौट आए होंगे और अब मजे से सो रहे होगे।"

वाकई दरवाजे पर बाहर ताला नही था। पंडित मुकुद माधव ने भीतर से कुडी लगाई हुई थी और कुछ मजे से सो रहे थे।

मैंने कालबेल का बटन दबाया और उर्मिला की ओर देखने लगा। पिछले सात-आठ घंटे से उसके चेहरे पर कोई तनाव नहीं था। वह दोपहर से अभी तक बहुत सहज और मुखर था पर अब उसकी आखों में उद्विग्नता के भाव स्पष्ट उभरे हुए दिखाई पड़ रहे थे। यह सभवतः पति से मिलने वाले सभावित व्यवहार के कारण रहा हो।

दो बार काल 'बेल' बजाने पर भीतर से पंडित जी की उनीदी आवाज सुनाई पडी "कौन है?.... आते हैं।"

कुछ क्षण बीते कि आंखे मलते हुए पडित जी ने दरवाजा खोलकर हमें देखा और बोले—"अच्छा तो आप लोग आखिर लौट ही आए?"

आप लोगो की आज रात लौटने की तो मुझे आशा ही नहीं रह गई थी। जब दस बज गए तो मैं यह सोचकर सोने चला गया कि सम्भवतः आप लोग दिल्ली में ही कही ठहर गए होंगे। लगे हाथों सिनेमा और 'कैबरे' भी देख आते तो अच्छा था। हमारे पिछडे इलाके मे तो यह चीजें अभी तक देखने को मिलती नही है।"

उनके शब्द सुनकर मैं सन्न रह गया। मै यह तो जानता था कि हमसे अलग हो जाने के बाद वह सहज और प्रसन्न नही हो सकते थे पर यह मै कदापि नहीं सोच सकता था कि उनके मन मे हम लोगो को लेकर इतनी

जबरदस्त कडवाहट पैदा हो गई होगी कि वह शालीनता तक गवां बैठेंगे। उन्होंने एक बार भी यह जानने की जरूरत नही समझी कि आखिर हमें इतनी देर क्यो हो गई।

यद्यपि उनकी बात से मुझे मलाल हुआ तथापि मैंने दरवाजे में दाखिल होते हुए हसकर कहा—"उतनी रंगीन जगह की कल्पना आपने खूब की पर इसमे मुश्किल यही थी कि हमारे साथ कैंबरे मे जाने के लिए आपके जैसा कोई रंगीन तबीयत आदमी नही था। आप साथ होते तो हम एक बार वहा जाने की हिम्मत भी शायद जुटा ही लेते।"

सहन मे पहुचकर मैने उर्मिला की ओर देखा। उसका चेहरा अपमान से अगारे जेसा दहक उठा था। वह व्यग्य से बोली—"जिनको नंगे बदन देखने की चाह होती है वह सबको धता बताकर और उनको उनके हाल पर छोडकर उन गलियों में पहुंच ही जाते हैं। इस काम को सरंजाम देने के लिए बीवी से रुपये भी छीनने पडे तो उन्हे कोई परेशानी नही होती।"

मैने उर्मिला से शात स्वर मे कहा—"छोडिए, आप क्या बेवक्त का राग ले बेटी। अब कपड़े-वपड़े बदलकर रसोई में जाकर देखिए कि आप खाने के लिए क्या कुछ पा सकती है।"

उर्मिला ने मेरी बात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया वह तुर्शी से वोली—"आदमी मे यह सोचने का विवेक तो बचना ही चाहिए कि वह जिस भले आदमी के घर मे रहकर सारी सुविधाए भोग रहा है कम से कम उसे अपमानित तो न करे। अपनी सकीर्णता और स्वार्थ में अधे होने की कोई सीमा तो होनी ही चाहिए। कोई मामूली से मामूली आदमी भी इतना 'कैलस' नही हो सकता।"

पडित मुकुंद माधव वहीं पडे एक मोढे पर बैठ गए और अपने गले में पड़े जनेऊ को उंगलियो से ऊपर नीचे करते हुए बोले—"इसमे कैलस-वैलस होने की तो कोई वात ही नही है। जब किसी को मेरी जरूरत ही नही थी और न मेरे साथ रहने की कोई इच्छा शेष थी तो फिर मै वहा टिककर फालतू में दाल-भात मे मूसर चंद क्यो बनता?"

पडित जी के आरोप से वह और भी ज्यादा भडक उठी और एक लडाकू अदाज में धरती पर पाव पटककर बोली—"जब कोई खुद को फालतू समझता है तो उसे यहा भी लौटकर आने की क्या दरकार थी? यह कोई होटल या सराय तो है नहीं—एक भले मानुष का घर है। यह तो याद रखना ही चाहिए कि वह एक कैसे प्रतिष्ठित आदमी के घर मे शरण लिये हुए है।"

मैंने उन दोनों को शांत करने की नीयत स कहा—"चलिए छोडिए भा अब इस बहस को। रात वैसे ही बहुत बीत चुकी है। चलकर सोया जाए। सुबह भी देर तक आराम से सोना सभव नही होगा। चार बजे सुबह तो बिजली ही गुल हो जाती है।"

पर मेरी बात पर उन दोनों ने ही कोई ध्यान नही दिया। लगता था वह दोनो ही सो सकने की मन स्थिति मे नही रह गए थे। दोनो के मन मे जो ज्वालामुखी धधक रहे थे उनका लावा बाहर फूट आने को मचल रहा था। उर्मिला मेरी ओर मुह करके बोली—"इन्हें किसी के सोने और आराम करने की क्या परवाह? खुद तो खा-पीकर आराम से सो ही रहे थे। मारा-धाड़ा कोई टाइम-बेटाइम अपने घर में लौटे तो बस उसके कपडे फाडने लगे। इससे तो कोई मतलब ही नही है कि उस बेचारे पर कहां-कहा क्या बीती।"

मै देख रहा था कि जो उर्मिला मुझसे वातें करते हुए बहुत संयत और शालीन भाषा बोलती चली आ रही थी और उसकी बातों मे गंभीर सोच का दखल नजर आता था वही अपने पति से तनकर छिछली और विकृत भाषा मे सवाद कर रही थी।

"आप किसी को उकसाकर उसका पशुरूप उभार दे बस फिर देखिए वह कितने नीचे स्तर तक उतर आता है। फिर उससे संयमित भाषा का अनुशासन नही निभ पाता। सुसस्कृत भाषा में बोलकर शायद उसे अपने प्रहार की तीव्रता पर विश्वास ही नहीं रह जाता।"

उर्मिला की चोट से तिलमिला कर पडित मुकुंद माधव ने चुनौती-सी देते हुए मुझे देखा और बोले—"कुछ सुन रहे हैं आप महान् लेखक जी? आपकी शह पाकर यह कितनी आधुनिका हो गई है और आपने इसकी कैफियत सुनी? खुद मिया फजीहत—दीगर नसीहत। अब आप अपने घर में भटकते-भटकते आधी रात बिताकर पहुंचे तो उसकी जिम्मेदारी भी मुझ पर? अरे भाई किसने मना किया था कि आप अपने घर में कायदे में समय से न लौटो? जब आपको नौका विहार का शौक चर्रायेगा, होटलों मे घूमने और मटरगश्ती करने का मन होगा। कुतुबमीनार की लाट पर चढ़कर सयोगिता बनने की महत्त्वाकांक्षा जागेगी तो मुझ गरीब से क्या शिकायत? रही मेरे यहां चले आने की बात। तो मैं पूछता हूं, चाहता ही कौन था कि मैं वहां आप लोगो के साथ बना रहू?"

मैंने महसूस किया उर्मिला के प्रति अपने रोष को प्रकट करते हुए वह मुझे भी पूरी तरह लपेटते चले जा रहे थे। साथ ही हमें छोड़कर चले आने पर अपनी सफाई

भी पेश कर रहे थे कि उन्हे साथ में हम रखना ही कब चाहते थे? वह बोले—"हा साहब, यह गलती मुझसे जरूर हो गई कि मै खामखा इनका बैग अपने ऊपर और लाद आया। बेकार का बोझ ढोने की मुझे क्या आवश्यकता थी। मुझे उसमे से कौन इनका रुपया लेना या खर्च करना था?"

उर्मिला रोषाकुल होकर बोली—"लेना क्यों नहीं था? यह क्या कुछ कम लेना हुआ कि मैं जिनके साथ वहां रह गई उनके ही रुपये हर बात पर खर्च करवाऊ।"

"इसके पीछे मेरी वैसी कोई नीयत नही थी।"

वह उनकी नकल उतारते हुए बोली—"मेरी वैसी कोई नीयत नही थी। जी हा नीयत नही थी तो वैसे ही पर्स छीनकर भाग खडे हुए थे—कि मेरा कोई पैसा खर्च न हो और जो मुझे लेना हो उसे खरीदकर ही लौटूं। मै ऐसी नीचता भरी मनोवृत्ति पर लानत भेजती हू। आदमी को ऐसी बेलिहाज़ जिंदगी जीने की जरुरत ही क्या है! इससे तो मरना भला।"

मैंने अपना ध्यान उर्मिला की ओर से हटाकर प्रसंग बदलने के विचार से कहा—"पडित जी आपको घर की चाभी मिलने में तो कठिनाई नहीं हुई?"

"नही जी, कठिनाई क्या होनी थी। आपने जिस खोखे पर चाभी सौंपी थी मै लौटा तो उसी के पास रुककर आपके बारे में मालूम किया। मैने सोचा था कि शायद तब तक आप वापस लौटे आए हो। मैं भी यहां बहुत जल्दी नहीं लौट आया। भटकते-भटकते पर्याप्त विलब हो गया था। खोखे वाले पनवाडी ने ही बतलाया कि आप अभी तक नही लौटे हैं। उसने दोपहर मुझे आपके साथ तो देखा ही था सो उसने मुझे आपका अतिथि समझकर चाभी तुरंत दे दी।"

मैने बात आगे बढाई—"आपको खाने-पीने में तो कठिनाई हुई होगी। जोखन तो कुछ बनाकर छोड़ नहीं गया होगा?"

"अजी वह बात नही है। आपके जोखन महाराज तो अद्भुत व्यक्ति है। उन्हें मेहमानों की आवभगत करने मे आत्मिक रस मिलता है।"

"वह कैसे?" मैने चकित होकर—पूछा—"मै क्या कल से उनका आचरण देख नहीं रहा हू? बराबर हम लोगो के आतिथ्य में लगे हुए थे। आज भी सबके लिए पराठे सेककर रख गए हैं।"

मै बोला—"तो चलिए आधा काम तो कर ही गए जोखन महाराज। पर सब्जी का मामला तो ठप्प ही रहा?"

"अजी वाह! ठप्प कैसे रहा? वह बहुत दूर तक की सोचने वाला मिसिर है। कहीं सब्जी बुस न जाए इस विचार से वह आलू उबालकर रख गए है कि जब कोई

खाना चाहे छीलकर सूखे भून ले।

जब मुझे जोखन के बारे मे इतनी सारी सूचनाए मिल गई तो मैंने जानना चाहा कि पडित मुकुद माधव भोजन कर चुके है अथवा नही। मैने उनसे पूछा—"आपने कुछ खाया पीया या नही अभी तक?"

"पहले तो एक घंटे तक मै आपके लौटने की राह देखता रहा पर जब मुझे यह निश्चय हो गया कि आप सभवत. विलब से ही लौटेंगे तो मैने अपना खा-पी लिया।" कुछ क्षण ठहरकर बोले—"यो कुछ भी तैयार न होता तब भी मुझे कोई असुविधा होने वाली नहीं थी क्योंकि मै एक दो रोज तो बडे आनद से निराहार रह सकता हू। गुरुकुल के काल से ही प्रत्येक मास मे चार-पाच व्रत रखने का अभ्यास तो पडा ही हुआ है।"

फिर उन्हें हम लोगों की भूख का खयाल आ गया शायद। बोले—"रात्रि का तीसरा प्रहर प्रारभ हो चुका है। अब आप कपडे-वपडे बदलकर यथाशीघ्र पेट मे कुछ डाल ले। गर्मी की रात तो वैसे ही बहुत छोटी होती है। थोडी देर लेटेंगे इतने मे ही ब्राह्म मुहूर्त्त आ जाएगा।"

फिर पडित मुकुद माधव ने अपने हिसाब से तो परिहास ही किया—वह चाहे समीचीन रहा हो या न रहा हो—"वैसे सच बात तो यह है कि यह निशाचरों की भक्षण बेला है। यों भी खाने-पीने मे तो अब यह निशाचरी वृत्ति ही सब कहीं व्यवहार मे आ चली है। सफर करते हुए मैं स्टेशनों पर प्रायः देखता हूं कि लोग गाड़ी के ठहरते ही खोचेवालों की दिशा मे बगटुट भागते है और पूरियां, हलवा, पकौडी, चाय, जो भी अल्लम-गल्लम हाथ लगता है भकोसने लगते है। यह हमारे भारतीय आचार के तो विपरीत है ही—विदेशों में भी लोग इस तरह आधी पिछली रात कुछ खाते पीते होंगे, मुझे नहीं लगता।"

मैने सहमति जतलाई—"आप यह बात ठीक ही कहते है। मुझे यही चिता थी कि बाजार की कोई चीज आप खाते नही हैं। जोखन भी कुछ न बनाकर गया होगा तो आपको भूखे ही सोना पडेगा।"

"नही नहीं वह बात एकदम नही है।" मुझे आश्वस्त करते हुए, बोले—"मै ग्रामीण परिवेश का हू इसलिए बाहर सफर पर निकलने से पहले चने-मुरमुरे और गुड की डली एक पोटली मे बांध लेता हूं। फिर दो-चार शाम भी भोजन न मिले तो कोई चिता नहीं रहती।" फिर जैसे उन्होंने रहस्य की बात बतलाई—"एक बात आपको और बतलाऊ! विवाह से पहले अनेक वर्षो तक मैने अपना भोजन स्वय तैयार किया है। मै तो आज भी चार प्राणियों को बनाकर खिला सकता हूं।" और

यह कहकर उन्होंने दर्प से उर्मिला की ओर देखा।

उर्मिला की आखे कही और लगी थी। वह चुपचाप चितामग्न बैठी थी। उसने अपने पति की बातों पर कोई टिप्पणी नहीं की। पर मुझे पडित मुकुद माधव की यह बात बहुत अटपटी लगी कि अपनी पत्नी की उपस्थिति मे वह स्वय को होशियार रसोइया बनाने के फेर मे यह भी विस्मृत कर बैठे थे कि कोई भी पत्नी अपने पति की यह बात सहन नहीं कर सकती कि वह चाहे जहां इस बात का ढिंढोरा पीटता फिरे।

मुझे पडित जी एक बहुत ही निरीह बल्कि एक तरह से बुद्धू ही लगे। वह अपनी पत्नी को प्यार भी करते थे और उसके मुआफिक बनने का कौशल भी उन्हे नही आता था। न वह उर्मिला को अपनी तरह बना पाए थे और न स्वय उसके अनुरूप ढल पा रहे थे। वह आधी रात पत्नी के लिए खुशी से खाना बनाने को तैयार थे मगर उसकी प्रसन्नता के लिए उसके साथ घूमने-फिरने से कतराते थे। मेरा आदर भी करते थे—मेरे प्रति अविश्वासी भी नही थे पर पत्नी को मेरे साथ छोडकर निरुद्विग्न भी नहीं थे। पत्नी को प्रसन्नता भी देना चाहते थे पर अपनी कृपण वृत्ति के कारण यह भी पसद नहीं करते थे कि वह कुछ खरीदने पर रुपया व्यय करे। दरअसल वह विचित्र अतर्विरोधों से ग्रस्त पति थे।

मैने कहा—“पंडित जी, आप तो वास्तव मे एक बडे जबरदस्त गुणी व्यक्ति है। पाक शास्त्र में आपकी गति के बारे में जानकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। किसी दिन आपका यह जौहर भी आजमाया जाएगा।” अपनी बात खत्म करके मैं अपने जूतों के तस्मे खोलने लगा।

उर्मिला को ध्यानमग्न देखकर मैंने कहा—“अब आप भी कपडे बदलकर कुछ खा लीजिए। रात बहुत जा चुकी है। दिन भर घूमते-घामते थक भी गई होंगी। थोड़ी देर सो जाएगी तो तरोताजा हो जाएंगी।”

शायद काफी देर से वह मेरे और अपने पति के बीच होने वाले वार्तालाप को सुन नही रही थी। सुना होता तो शायद अब तक उसका रोष कुछ ढीला पड़ गया होता। वह किंचित् झुझलाहट के साथ बोली—“मेरा थकना क्या? मेरे लिए कौन स्वर्ण शैया बिछाए इतजार कर रहा है?”

मैंने उर्मिला के रोष को हल्का बनाने के लिए हंसते हुए कहा—“अरे आप कहा सोने के पलग पर सोने के चक्कर मे पडती है, फिलहाल पलक पांवडों से ही काम चला लीजिए। वैसे भी स्वर्ण मे तो कलियुग का वास कहा जाता है।”

मै महसूस कर रहा था। उन दोनो को एक-दूसरे से जो भरपूर शिकायतें

थी उन्हे उन दोनो म से कोइ भा नही पचा पा रहा था। वह इसी समय सारा हिसाब चुकता कर लेना चाहते थे। वह दोनो मेरे मेहमान थे। अगर मैं उन दोनों की चख-चख के प्रति गभीर रुख धारण कर लेता तो वह झगडे वाली स्थिति रात के उस प्रहर तो स्थगित हो ही सकती थी मगर उस तरह का व्यवहार मुझे शोभनीय नही लग रहा था। मै अपनी एक रात की नीद बचाने के फेर मे उन दोनों के प्रति सख्त रवैया नहीं अपना सकता था। मैं यदि वातावरण को सहज बनाने के लिए कोई विनोदपूर्ण बात कहता या परिहास करता या उसे भी उनमे से कोई एक इतना खीच देता था कि स्थिति सहज होने के बजाय और भी अधिक तनावपूर्ण हो उठती थी।

मै बोला—"अरे भई कुछ खाया पीया तो जाए तब ही कोई स्थिति बन सकती है।" मैंने उर्मिला की ओर देखकर पूछा—"अगर हम लोग एक-एक प्याला काफी पीएं तो कैसा रहे?"

पडित जी बोले—"मैं तो खैर इस तरह के विष पीता ही नही हू पर मै आपको भी यही सलाह दूगा कि इस पेय से इस समय दूर ही रहे तो उत्तम है क्योंकि मैंने देख लिया था—घर में दूध की एक बूंद नहीं है। देर तक बिजली न रहने के खयाल से शायद जोखन महाराज सारे दूध की दही जमा गए है। उन्हे डर रहा होगा कि गर्मी के कारण कहीं सारा दूध फटकर खराब न हो जाए।"

चूंकि पडित जी ने हमे काफी पीने के लिए मना किया था इसलिए उर्मिला ब्लैक काफी पीने की जिद पकडकर बोली—"मै आपके और अपने लिए अभी दो प्याले काफी तैयार करती हूं। मुझे तो सोने से पहले यो भी काफी का एक प्याला पीना अच्छा लगता है।"

पंडित मुकुंद माधव ने कहा—"कुछ लोगों को कडवाहट उगलने के लिए पहले कडवाहट भरपूर मात्रा में पीनी पडती है।"

"दूध पीकर भी जहर उगलने वाले जीव इस दुनिया में कुछ कम तो नही है। हम तो फिर भी कड़वापन पीकर ही कटुता उगलते हैं।"

पंडित मुकुद माधव उर्मिला के इस तुर्की ब तुर्की उत्तर से घोर अपमानित हो उठे और रसोई की ओर जाती उर्मिला पर कटाक्ष करते हुए बोले—"देख रहे है आप? यही है नारी स्वातंत्र्य? तुलसीदास ने क्या यह बात सैकड़ो साल पहले ही नही कह दी थी 'जिमि स्वतंत्र हो बिगरै नारी।' लगता है यह दुनिया ही समरी ज्वालामुखी के मुहाने पर खड़ी है। किसी से कुछ भी कहने का धर्म नहीं रह गया है।"

उमिता किचन मे चली गई तो मन उन्हे शात करते हुए कहा—“अरे छोड़िए पंडित जी। आप भी इतनी छोटी-छोटी और मामूली बातों से क्यो उत्तेजित हो उठते है। मैं तो कहता हूं कि आप औरतो की बातो पर ज्यादा ध्यान ही मत दीजिए। अव्वल तो वह यह जानती ही नही है कि कब क्या कह रही है। यदि जान बूझकर भी कुछ कहती है तो उन्हें इस बात का पता नहो रहता कि उनकी उस बात का क्या परिणाम निकेलगा। बेहतर तो यही है कि आप उनकी बात सुनकर भी अनसुना कर दें। इतिहास के अधिकाश दु:खद प्रसंग त्रिया-कलह को लेकर ही तो है।”

वह कहने लगे—“मै आपकी बात सौ प्रतिशत ठीक समझता और मानता हू मगर यह भी एक वास्तविकता है कि आप बडी-से-बडी चोट सहन कर सकते है पर नारी द्वारा अपमानित होना नही झेल सकते। प्रत्येक घाव समय के अंतराल से भर जाता है किंतु नारी द्वारा अपमानित पुरुष का व्रण सदैव हरा बना रहता है। उच्चरित शब्द ही बेधक शक्ति का प्रमाण है क्योंकि उसे कोई कुल्हाड़े से भी नहीं काट सकता! दुर्वचन से बडा कोई घातक अस्त्र संसार में नहीं है।”

मैं बोला—“नारी ही क्यो? दुर्वचन में क्या स्त्री क्या पुरुष?”

“आप मेरी बात नहीं समझे। मैं किसी भी स्त्री की बात नहीं कर रहा हू। यहां स्त्री विशेष अर्थात् वह आपकी प्रेमिका या पत्नी होकर आपसे कठोर व्यवहार करे या आपको अपमानित करे तो यह एक असह्य स्थिति होती है।”

मैने पूछा—“मैं इस सबंध में अधिक तो कुछ नही जानता केवल जानने की जिज्ञासावश ही पूछ रहा हूं कि यदि कोई प्रेमी या पति अपनी प्रेमिका अथवा पत्नी को कठोर वचन कहकर अपमानित करने लगे तो क्या स्थिति कुछ भिन्न प्रकार की होगी? पुरुष को कटु वचन स्त्री कहती है तो इसमें अपमान अधिक है और यही कार्य पुरुष स्त्री के प्रति करता है तो स्थिति उतनी नाजुक नहीं है। यह भेद क्यों?”

“यह भेद है और हमेशा रहेगा। स्त्री के कठोर वचन दु:सह है!”

मैंने पडित जी से कहा—“मैं समझता हू इसमें स्त्री पुरुष का भेद महत्त्वपूर्ण नही होना चाहिए। दरअसल मंशा ही जानने का प्रयास करना अपेक्षित है। आप जानते है कि कुछ भी कह देने के पीछे तो कोई परिश्रम होता नहीं है। कोई लाख देने की बाते कहकर डींगे हाकने लगे, तब भी किसी के हाथ पल्ले क्या आने वाला है। इसलिए यह तो स्पष्ट ही है कि बात कोई कम नहीं है। कभी-कभी तो वह कर्म के भी विरुद्ध जाती है। जब क्रोध मे आप किसी को कहते है ‘मेरे सामने से हट

जा--नही तो तेरा मै खून कर दूगा।' तो क्या आपका मशा उसकी हत्या करने का होता है? हो सकता है यह कटोर वचन आप उसके प्रति अत्यधिक प्यार होने के कारण ही बोल रहे हो।''

पडित जी मेरी बात सुनकर सोच मे पड़ गए और दो-तीन मिनट तक चुप रहकर बोले--''बात तो आपकी शत-प्रतिशत सच्ची है। होता तो ठीक यही है जो आपने अभी-अभी कहा।''

मै बोला--''पडित जी हमारे भीतर जो कुंठाएं दुर्बलताए, हताशाए पलती चली जाती है वही दुर्वचनों के रूप में व्यक्त होती हैं। यह एक स्वस्थ स्थिति ही कही जाएगी कि हम उसे शब्द देकर बाहर धकेल देते है। मन मे मनस्ताप रखेगे, वह भीतर ही भीतर कुठा के घाव पैदा कर देगी। अभिव्यक्ति उसका स्तर चाहे कैसा भी हो हमे भीतर के सताप से मुक्त करती है। कोई दुःख गूगेपन के सहारे नही कट सकता। मै तो समझता हूं कि भाषा का आविष्कार भीतर-ही-भीतर उबलते रहने वाले भावो को किसी तरह बाहर फेंक देने के निमित्त ही हुआ होगा। बोलकर हम भीतर के बोझ से उसी प्रकार खाली हो जाते हैं जैसे बादल खूब बरसकर खाली और हल्के हो जाते है। किसी भारी दुःख मे रो या बोल लेने से हमें राहत मिल जाती है हालाकि दुःख फिर भी अपनी ही जगह बना रहता है और उसकी प्रकृति भी ज्यो की त्यो रहती है।''

पंडित मुकुद माधव मेरे कहे हुए शब्दों पर कई मिनट तक गभीर मनन करते रहे और फिर बोले--''आपने बडा गहरा मनोवैज्ञानिक सत्य उद्घाटित किया है ओर करेंगे भी क्यो नही, आखिर आप एक सिद्धहस्त शब्द शिल्पी भी तो हैं। यह बात बहुत बडा सच है कि किसी भारी दुःख में रो या बोल लेने से हमे राहत मिल जाती है। इसी प्रकार बात का घाव भी कभी खत्म नहीं होता वह भी हमेशा हरा बना रहता है।''

मैं बोला--''जहां तक बात का संबध है उसको प्रभावशाली बनाने के लिए हम खूब चीख-चिल्लाकर अपना पक्ष प्रस्तुत करने लगते हैं और हमें अपने आवेश को लेकर कोई अनुमान भी नहीं होता कि उसका दूसरे पक्ष पर क्या असर पड रहा है। हां जब वह भी उसी शैली मे अपना पक्ष सामने रखने लगता है तो हमे परेशानी अनुभव होने लगती है। यह कैसी विचित्र पहेली है कि हम चाहते है दूसरा तो अपनी बात माधुर्य मडित करके सामने रखे और हम लट्ठमार ढंग से।''

पंडित जी समझ गए कि प्रकारातर से यह बात जैसे उन्ही को ध्यान में रखकर कही है। उन्होने गौर से मेरा चेहरा देखा और अपनी ठुड्डी खुजलाने लगे।

इसी समय उर्मिला ट्रे मे दो प्याले काफी और पराठे लेकर आ गई। मेरे सामने एक स्टूल लाकर रख दिया और उस पर ट्रे रखकर वापस किचन की ओर लौट गई। इस बार वह लौटी तो एक प्लेट मे आलू फ्राई करके ले आई।

मुझसे बोली—"वैसे तो अब ढग से कुछ खाने का समय नही रह गया है पर आपने तो सुबह से ही कुछ नही खाया। बिना खाए नींद भी नहीं आएगी शायद। इसलिए थोडा-सा कुछ खा जरूर ले।"

मैंने कहा—"आपका यह सोचना एकदम सही है मगर आपकी भी स्थिति मुझसे कुछ अलग तो नहीं है। आप एक खाली प्लेट भी तो लाइए जिससे कि थोडा सा खाना आप भी ले ले।"

वह ना नुच करने लगी तो मैंने काफी का प्याला उठाते हुए कहा—"तो फिर मै अकेला निशाचर बनने की जहमत नही उठा सकता।"

हारकर उसे दूसरी प्लेट लानी पडी और उसने चार पराठो मे से केवल एक ही उठाया। मै कुछ कहता इसके पहले ही उसने कह दिया कि वह सिर्फ साथ देने के लिए खा रही है, वास्तविक भूख उसे कतई नहीं है।

मैंने काफी का घूट भरा तो उसकी कडवाहट से मेरा मुह एकदम कसैला हो गया। कहा तो काफी दूध में पीने का अभ्यास था, कहा यह एकदम दूध विहीन काफी थी फिर इसमे चीनी भी शायद कुछ कम ही पडी थी।

मेरे चेहरे का भाव देखकर उर्मिला बोली—"काफी एकदम रद्दी बनी है न?"

"रद्दी या नफीस बनाने का आपको अवसर ही कहा था? और भाई जब दूध नही है तो काफी इससे अलग ढग की बन ही कैसे सकती थी?"

"कडवी लग रही है तो आप इसे छोड दीजिए। जायका खराब करने से क्या लाभ?"

मैंने दो-तीन घूंट लेकर काफी समाप्त कर दी और खाली प्याला स्टूल पर टिकाते हुए बोला—"इस तरह की काफी शायद इसी तरह पी डालनी चाहिए।"

उर्मिला बोली—"कडवेपन को स्वाद लेकर कौन पी सकता है।"

मैं बोला—"सत्य और सौंदर्य के देवता शिव।"

"मैं तो कोई शिवानी नही हू। साधारण बुद्धिहीन औरत हू।"

"कोई बात नहीं। आप थोड़ा मधुर सभाषिणी और उर्मिल हो जाए तो बात बन जाए।"

"में ठहरी कलहप्रिया—मधुर भाषिणी किस तरह हो जाऊंगी।"

मैंने पराठे का एक टुकडा तोडा और उसे आलू की सब्जी में लपेटने लगा

कि तभी पंडित मुकुंद माधव उठते हुए बोले—"एक क्षण ठहरिए, मैंने देखा था कि दही जमी रखी है। सुबह तक तो वह खट्टी हो चलेगी। इसी समय निपटा देंगे तो उसका सदुपयोग हो जाएगा और आपको भी रूखे सूखे ढंग से नहीं खाना पड़ेगा।"

पंडित मुकुंद माधव रसोई की तरफ चले गए तो मैंने उर्मिला की ओर देखकर कहा—"कभी-कभी आदमी के शब्दों से कितनी क्रूरता व्यक्त होती है पर उसी समय उसका आचरण कितना महत्त्वपूर्ण हो उठता है। अब इन्हीं महाराज को लो। कितना उबल रहे थे। क्रोध में एकदम दुर्वासा जैसे हो उठते हैं। जैसे सबको फूंककर रख देंगे मगर अब हम लोगों की कितनी चिंता कर रहे हैं कि हमें रूखा-सूखा न खाना पड़े। वह स्वयं तत्परता से रसोई से दही लाने गए हैं। इसीलिए मैं कहता हूं, मनुष्य के शब्दों पर अटककर नहीं रह जाना चाहिए।"

"ऐसे ममत्व से क्या हासिल? जब आप अपने शब्दों के अंगारों से किसी को जलाकर रख दें तो फिर व्यवहार के ठंडे जल से उस पर पानी डालना क्या हुआ? भस्म पर पानी डालना मेरी दृष्टि में व्यर्थ ही है।"

इसी समय पंडित जी दो कटोरियों में दही डालकर ले आए। दही की ऊपरी पर्त पर नमक मिर्च भुना हुआ जीरा सभी कुछ पड़ा हुआ था।

उन्होंने एक कटोरी मेरे सामने रख दी और दूसरी उर्मिला की ओर देखे बिना उसके पराठे की प्लेट से सटाकर रख दी।

यह करने के बाद वह हम दोनों का खाना खाते छोड़कर कमरे से बाहर चले गए।

मैंने उर्मिला से कहा—"अब तुम्हीं देखो इन महाराज को—हम लोगों का कितना खयाल है? पता नहीं रसोई से नमक, मिर्च, जीरा कहां-कहां से खोजबीन करके लाए होंगे। इसीलिए मैं कहता हूं कि तीक्ष्ण तीर को तरकस में ही सुरक्षित रखना चाहिए। एक बार आप उसका इस्तेमाल कर बैठेंगे तो वह वापस तरकस में नहीं आ पाएगा। बस दूसरे को इतना आभास देते रहना काफी है कि आपका तूणीर खाली नहीं है। अगर जरूरत पड़ेगी तो आप अपने तीर का प्रयोग कर ही डालेंगे।"

"इन्होंने मुझे इतना-इतना सताया है कि इनका कोई भी काम मेरे भीतर कृतज्ञता का भाव नहीं जगाता। ऐसी स्थितियों में मीठा बोलना भी मुझे बहुत बनावटी लगता है। जो आदमी आपसे हमेशा क्रूरता का व्यवहार करता रहा हो उसका कोमल होना भी उसके प्रति संशय पैदा करता है कि पता नहीं इस आचरण के पीछे उसका कौन-सा कुटिल मंतव्य छिपा हो।"

मै देख रहा था कि उर्मिला ने बाते करते-करते पूरा पराठा धीरे-धीरे समाप्त कर दिया था पर दही को हाथ भी नही लगाया था। मैंने पराठे वाली प्लेट से एक परांठा उसकी तश्तरी में रखते हुए कहा—"मै इतने नही खा सकता आपको एक पराठा दही के साथ खाना पड़ेगा।"

उर्मिला तनकर बोली—"मुझे दही वैसे ही पसद नही है। खा भी लेती हू तो मेरे गट्टो और घुटनो मे दर्द हो जाता है।"

"कोई बात नही है, वायु के दर्दो की दवा मेरे पास है। दही नही खाओगी तो पडित जी का अपमान होगा।"

"इसमे अपमान की क्या बात हुई? जिस चीज को खाने से मुझे नुकसान होता है उसे क्यो खाऊ? फिर जिन्होंने मेरे सामने दही की कटोरी लाकर रखी है, वह क्या नहीं जानते है कि जैसे वह चाय काफी नहीं पीते उसी तरह मै भी दही नही खाती हू। क्या आप उन्हे चाय-काफी पिला सकते है?"

"अगर तुमने उनके लिए भी काफी का एक प्याला बनाया होता तो आज मे उन महाराज को काफी पिलाकर ही रहता।"

"आप सूरज को पश्चिम से उदित नहीं कर सकते।"

"कर सकता हू।"

"वह कैसे?"

"मै हिप्नोटाइज करके मनवा सकता हूं कि सूरज पश्चिम से निकल रहा है।"

"यह तो सूरज का पश्चिम से निकलना नही हुआ।"

"हमने ही तो दिशाए तय की हैं कि इधर पूरब है उधर पश्चिम है। यह भी तो हो सकता है कि जिधर हम पूरब मानते है वह वास्तव मे पूरब हो ही नहीं।"

"मानने न मानने से ध्रुव सत्य बदल नहीं जाते। उनके पीछे न जाने कितनी वैज्ञानिक सोच और शोध होती है।"

मैं बोला—"कालांतर मे इन सत्यो और शोधो को भी निरस्त करके और नए सत्य प्रतिपादित होते है। कितने समय तक पृथ्वी को गोल स्वीकार नहीं किया गया बल्कि पृथ्वी को गोल कहने वालो को सूली पर चढ़ा दिया गया। आज तो छोटे से छोटा बच्चा भी जानता है कि पृथ्वी गोल है।"

"पृथ्वी गोल है या चपटी इस समय इस वितडावाद को बढाने का कोई प्रयोजन नही है।" और यह कहकर उसने दही की कटोरी मेरे सामने सरका दी और बोली—"यदि आप अपने पडित जी को दुखी और अपमानित नहीं देखना चाहते तो उनके वापस आने से पहले इसे भी ठिकाने लगा दीजिए।"

मैंने कोई हीला हवाला नहीं किया और दही एक बार मे ही पीकर समाप्त कर दी और खाली कटोरी उसकी खाली प्लेट मे रखकर बोला—"अब अगर वह आ जाए तो यह देखकर उनकी आत्मा पुलकित हो उठेगी कि तुमने उनके द्वारा प्रस्तुत दही का अस्वीकार नही किया।"

उर्मिला मुंह विचकाकर बोली—"रेत की दीवारे सीमेंट के पलस्तर से नही ठहरती।" यह कहकर उर्मिला ने खाली बर्तन उठाए और रसोई मे रखने चली गई।

जब वह लौटी तो मै बोला—"लगता है पडित जी सोने चले गए। उनकी नींद में आज बहुत खलल पड़ा। पर चलो अच्छी बात यही हुई कि उन्हे अब यह पता नही चलेगा कि जो दही की कटोरी उन्होंने तुम्हारे सामने लाकर रखी थी वह तुमने नहीं मैंने ही उदरस्थ कर डाली।"

उर्मिला ने पूछा—"इससे क्या हो जाएगा?"

मैं बोला—"जहा तक शब्दो का सवाल है उनकी गोलंदाजी तो दाम्पत्य जीवन मे चलती ही रहती है पर छोटी-छोटी बाते बहुत महीन मार करती हैं। आदमी न कुछ सी बात पर तिरस्कृत अनुभव करने लगता है। आप घनिष्ठ संबंध में बंधे होकर किसी को कुछ दें और वह लेने से इनकार कर दे, फिर चाहे वह इनकार किसी भी कारणवश हो—आप अपमान से सिहर उठते है। आपके भीतर बिना बात के एक ऐसा अभिमान जागता है जो अपमान बोध से आपको तड़पा देता है। प्यार से दिया गया एक फूल कितनी बडी सौगात कितना बडा उपहार है, क्या यह भी बताना पडेगा?"

उर्मिला इठलाकर हसते हुए बोली—"मुझे क्या पता कि एक फूल आप किसी को दें तो उसका क्या आशय है। मुझे तो कभी किसी ने कोई फूल दिया नही।"

"नही दिया तो कोई बात नही। मेरे लॉन में इन दिनो कितनी ही वेरायटी के गुलाब खिले है। सुबह किसी को देकर देखना कि देते समय क्या अनुभूति होती है और यह देना कैसा लगता है।"

उर्मिला लबी सांस खीचकर बोली—"अब शायद कैसा भी नही लगेगा। होता होगा कोई समय जब इन बातो का कोई मतलब होता होगा।"

"यही तुम बडी भूल करती हो। हमारा मन बहुत विचित्र है। हम समझते है मन बुझ गया है और हम बुढा गए हैं पर वास्तव मे यह एक बहुत बड़ा धोखा है। सहसा किसी क्षण ऐसा कुछ घटित होता है कि हम अनजाने में कुछ और हो उठते है और बिल्कुल अलग तरह का व्यवहार करने लगते है। तब कोई हमे दर्पण दिखा दे तो चकित होकर पूछते है—"अरे ये मैं हूं?"

उमिला ने उत्सुकता से पूछा—"आपके साथ कभी ऐसा होता है?"

'पहले की तो अब याद नही पर अब तो दो दिनो से ऐसा निरतर हो रहा है।"

उर्मिला ने बहुत मासूमियत से पूछा—"सच?"

"सच नहीं तो और क्या।"

"पर यह पति-पत्नी के बीच कभी घटित नही होता होगा। वहा नया रह भी क्या जाता है? दैहिकता-ऐंद्रिय आकर्षण का पटाक्षेप है।"

"मैं नहीं मानता। दैहिक स्वरूप भी बराबर बदलते है। देह को छिपाना भी एक कला है। जितना इसे उजागर करना उद्दीप्त करता है उससे कही अधिक छिपाना उत्तेजित करता है। सारी कलाएं हमारी दैहिकता से जुडी हुई है। कितने पति जानते हे कि गुंथे हुए बालो की वेणी की सुदरता सद्य स्नाता के पीठ पर फैले अनियंत्रित बालों के सौदर्य का पासंग भर भी नही हे।"

मेरी बात पर उर्मिला हस-हसकर लोट-पोट होने लगी? जब उसकी हंसी थमी तो उसने अपनी आंखो को पोछते हुए कहा—"आप तो हास्य रस की कविता बड़ी कुशलता से कर सकते हैं।"

"मै और हास्य की कविता?" मैने चकित होकर पूछा।

"हां जो वह पेशेवर हास्य कवि नही कर सकते—अर्थात् सयोग शृंगार मे हास्य। नखशिख वर्णन उर्फ इद्रजाल का जादू।"

मैंने कहा—"तुम बड़ी दुष्टता कर बैठती हो कभी-कभी। मै इतनी देर से तुम्हे रिझाने के लिए एक से एक अच्छी और बारीक उपमा बता रहा हू और तुमने उन सारी गंभीर बातो को एक झटके में उडा दिया। फूल देने की बात कही—काली घटा से उमडते सद्य-स्नाता के अलक जाल की बात कही पर तुम कहीं नहीं ठहरीं।"

"मै जानती हू कि यह अलक जाल की बाते करने वाले अथवा फूलो की बाते करने वाले वास्तव मे इनसे नही जुडते। इनका मोहपाश सिर्फ लुभानेवाली बातो तक ही होता हे। जीवन में आने कभी नहीं देते। आपके पंत जी ने कितने अलक जाल की बाते कही हैं पर 'बाले के बाल-जाल मे' उलझे नेत्रो को साफ बचाकर ले गए। इसी तरह 'लाई हूं फूलो का हार लोगी मोल लोगी मोल' की बोली बोलकर चले गए। किया कभी किसी को एक गुलाब समर्पित?"

मैंने कहा—"हिम्मत नहीं कर पाए होंगे बेचारे।"

उर्मिला ने पूछा—"अपने लॉन मे उगे गुलाबो को आपने किसे पेश किया?"

"सोचता हूं, अब तो मौका आ ही गया है—कर ही डालूं किसी को समर्पित।"

"कर डालिए अगर कोई सुपात्रा मिल जाए।"

मै बोला—"टीक है सुबह देखूगा। अब तो सोया जाए, थोडी-सी रात ही तो शेष बची है।"

"ठीक है" कहकर उर्मिला उठी और अपने कमरे की ओर जाते हुए बोली—"अब आप जाकर सो जाइए नही तो सुबह आलस सताएगा।"

उर्मिला 'शुभरात्रि' कहकर सोने चली गई।

मैं अपनी स्टडी मे जाकर दीवान पर लेट गया और सोने से पहले अभ्यासवश एक किताब उठा ली। मै देर तक पन्ने पलटता रहा पर नींद के स्थान पर उर्मिला से खूब हुई बातो की अनुगूंज ही मन में तरगायित होती रही। उसकी एक एक करके कई छविया, कई मूड्स मानस पटल पर उभरते रहे। उसकी निराशाएं, दिलन्दरायन, उन्मुक्त व्यवहार और बेबाक हसी मेरे आस-पास मंडराती रही। पता नही उसको लेकर क्या-क्या सोचते हुए मुझे कब नींद आ गई।

18

सुबह उर्मिला सोकर उठी तो मुझे वह खूब सहज लगी। लगता था पिछले दिन की थकान और रात की कलह वह पूरी तरह भूल चुकी है। पंडित मुकुंद माधव अलस्सुबह घूमने निकल गए थे और अभी तक लौटे नहीं थे।

मैंने उर्मिला के उठने से पहले ही अपनी छोटी-सी बगीची से सुर्ख गुलाब के कितने ही फूल तोड़कर एक छोटी-सी डलिया मे सजाकर अपने अध्ययन कक्ष में रख दिए थे।

उर्मिला के उठने से पहले ही मैंने चाय बनाकर टीपाट में टिकोजी से ढककर कमरे मे रख दी थी। वह उठकर बाथरूम गई और कुछ ही मिनटों में मुंह-हाथ धोकर कमरे मे आ गई।

मैंने टिकोजी हटाकर टीपाट से प्याले में चाय उंडलते हुए पूछा—"आप पहली चाय प्याले में पीती है या काच के गिलास में?"

"क्या आप पहली चाय यानी 'बेड टी' के बारे मे पूछ रहे हैं?"

"जी हां, पहली चाय मेरे लिए तो वही है। कुछ लोगों के लिए बाकायदा पहली चाय का मतलब होता है—कुल्ला दतौन से निपट लेने के बाद सुबह का अखबार पढते हुए इत्मीनान से चाय पीना। यह चाय अखबार की खबरों के साथ ही हमारे भीतर प्रवेश पाती है। मेरे एक मित्र ऐसे भी हैं जो यदि एक घटे में अखबार खत्म करते है तो चाय का अंतिम घूट भी अखबार को आंखों के आगे से हटाने के साथ ही लेते है।"

"बेड टी तो तभी न बेड टी होती है जब आपको बिस्तर पर ही कोई लाकर दे? पर अपना भाग्य ऐसा कहां? इसलिए पहली और दूसरी चाय में अपन के लिए कोई अंतर नहीं है।"

"खैर हाल फिलहाल तो आप फर्क कर सकती हैं। चाय हाजिर है। बस यह आप पर है कि प्याले मे लेंगी या गिलास मे।"

"जो भी हो, आप दो दिन मे ही इतनी आदत बिगाड देगे कि बाद मे जब यह क्रम आगे नहीं चल पाएगा तो दु:खदायी हो उठेगा।"

"शायद मै पहले भी कह चुका हू कि प्रस्तुत क्षण के सुख को मात्र इसलिए न भोगना या स्थगित कर देना कि कल अथवा परसों वह नहीं मिल पाएगा। अव्वल दर्जे की मूर्खता और निराशावादी नजरिया है। हम उस अप्रस्तुत क्षण को लेकर दुखी ही क्यो हो जो या तो आएगा नही या हम उस तक पहुचेंगे नहीं।" मैंने बातें करते-करते कांच के गिलास मे चाय डालकर उर्मिला की ओर बढा दी।

उसने चाय का गिलास पकडकर कहा—"आप लाख सोचे या कहें मगर वर्तमान से नजर हटकर उधर जाती जरूर है। यह तो केवल पशु-पक्षी ही हे जो प्रस्तुत क्षण के अतिरिक्त कही और न जीते हैं और न जीना जानते है। हम मनुष्य तो सुखद से सुखद प्रस्तुत को छोडकर कही बहुत पीछे या आगे जाकर जीने लगते है।"

"यही तो सारी आफतो की जड है। इसी से तो दुनिया के निन्यानवे फीसदी अनाचार, अन्याय और लूट-खसोट जुडी हुई है।"

"आप ऐसा केसे कहते हैं?" मैने चाय का एक घूट लेकर कहा—"यह जो मदबुद्धि लोग लाखो करोडो रुपये अनावश्यक रूप से तरह-नरह की विकृतिया पेदा करके इकट्ठा करके रखते है—उसका स्थूल कारण क्या यही नही है कि वह वर्तमान मे न जीकर असुरक्षित भविष्य मे जीते है और उसे सुरक्षित वनाने के लिए बिना जरूरत सिर्फ धन-सपदा जोडते चले जाते हैं? वह अपनी अगली पीढियों को न कंवल इस अकूत संपत्ति के वल पर काहिल और अपग बनाते हैं बल्कि देश पर व्यर्थता का वोझ भी बढाते चले जाते है। सोचो जरा अगर एक आदमी के पास बगैर जरूरत इतना धन मृत अवस्था में न पडा रहे तो एक देश को किनने उद्योग धंधे ओर काम करने वाले कितने हाथ मिल जाएं। यह वही हाथ हैं जो काम न मिलने पर चोरी डकेती हत्या वलात्कार में प्रवृत्त होते है। कल के धन की अकूत मात्रा जोडते चले जाने से बड़ा और सगीन अपराध दूसरा नहीं हो सकता।"

उर्मिला बोली—"पर यह व्यक्ति ही क्यो, क्या राष्ट्र नही कर रहे हे? यह जो बडे-बड़े उद्योग सपन्न विकसित देश हैं—गरीब राष्ट्रों के शोपण मे इसी इच्छा के वशीभूत प्रवृत्त नहीं हैं? हम अपने कुटुम्बियो की सुरक्षा के लिए

व्यक्तिगत स्तर पर धन जमा करते है--यह अपने नागरिको को सुरक्षित बनाने के लिए यही करते हैं। नाकारापन तो दोनो तरफ एक जैसा हो नहीं हुआ क्या?"

"तुम बिल्कुल सटीक बात कहती हो। यह व्यक्ति के स्तर पर अथवा राष्ट्र के स्तर पर है तो एक जैसा ही गर्हित।"

अभी उर्मिला मेरी बात का कोई उत्तर देती कि बाहर का दरवाजा खुला और पंडित मुकुंद माधव दहलीज पार करके अंदर घुसते दिखाई पडे।

उनके हाथो मे मोतियों के फूलों की माला देखकर मैं एकदम चमत्कृत हो उठा। क्या रात उन्होने मेरी बात सुन ली थी? मैंने उर्मिला से सुर्ख गुलाबों की बात की थी। कपनी बाग के रास्ते मे जो फूलो की एक बडी दुकान थी उस पर अनेक तरह के फूल, मालाएं, गुलदस्ते, बुके इत्यादि मिलते थे। लगता था, पंडित मुकुद माधव कपनी बाग की दिशा में ही घूमने निकल गए थे और लौटते मे उसी दुकान से यह माला खरीद लाए थे।

उन्होने हम लोगों के नजदीक आकर माला मेरे हाथ मे देते हुए कहा--"शुभ प्रभात!"

मैंने कहा--"बैठिए। पडित जी, लगता है आज प्रातःभ्रमण के लिए रात रहते ही निकल पडे थे।"

"नही रात तो नही थी--बस पौ फट रही थी।"

मैंने पूछा--"क्या आप नियम से सुबह घूमने जाते है?"

"नही वैसा नियम तो कोई नही है क्योकि मै तो निरतर पैदल चलता ही रहता हूं।" फिर वह हंसकर बोले--"जिस दिन अपने राष्ट्र कवि की कविता ज्यादा जोर मारती है उस दिन तो प्रातः भ्रमण के लिए निकल ही जाता हूं।"

"राष्ट्रकवि? कौन-सी कविता की बात कर रहे हैं?"

"अरे वही। कौन-सा काव्य है? बडी प्रसिद्ध कविता है कि नहीं--

उठ उपवन मे बडे सवेरे--

तात भ्रमण करते थे तेरे....

"अच्छा-अच्छा।"

मै उनकी बात पर बहुत हसा। जब हंसी थमी तो मैने कहा--"आप अनोखे व्यक्ति है साहब जो कर्म की प्रेरणा काव्य से लेते है।"

"सत्प्रेरणा हमेशा सद्ग्रंथो से ही मिलती है।"

"लोगो द्वारा किए हुए सत्कर्मो से क्या कोई बडी प्रेरणा सभव नहीं है?"

"वह भी होती है। यह तो अपने अपने संस्कार, स्वभाव और आंतरिक गठन पर निर्भर करता है। पर मेरा मानना है कि पुस्तक मे वर्णित मार्मिकता हमारी मानसिकता को जिस प्रकार अनुप्राणित करती है वह व्यक्ति के कर्म द्वारा सभव नही है। कर्म से बहुत कुछ आंखो और जानकारी से ओझल भी होता है पर काव्य मे पूर्वापर का विशद विवेचन आद्योपात हमारे भीतर उतरता चला जाता है। बडे-बडे उपदेशको की बात का प्रभाव नही पडता पर कविता की एक पक्ति जीवनधारा बदल देती है।" फिर वह एक क्षण ठहरे—उन्होंने एक नजर उर्मिला को देखा और बोले—"मै यह नही कहता व्यक्ति आदर्श नही होते। व्यक्तित्व का भी जादुई प्रभाव होता ही है। अब आप स्वयं को ही लीजिए। पता नही कितने पाठक-पाठिकाए आपके व्यक्तित्व से मोहाविष्ट होंगे।"

मै ठठाकर हस पडा और बोला—"आखिर पतनाला यहीं गिरा। पर यही सही मगर यह तो बतलाइए यह टटके फूलों का मोतिया हार किसके लिए लाए है? मेरे लिए तो आप गेदे के फूलो की माला ही लाते क्योंकि उसी से अभिनदन सत्कार वगैरह होता है। मोतियों का हार तो किसी उद्देश्य विशेष से ही लाया जाता है। आप तो संस्कृत वांगमय के अनघ पंडित हैं। जानते ही होंगे—प्रणयी याचक ऐसा हार प्रेयसी या प्राण प्रियतमा के लिए ही लाते है।" फिर मैंने माला की ओर सकेत करके कहा—"इसे सही पते पर प्रेषित करने की कृपा भी तो करें।"

मेरे इशारे पर पंडित मुकुंद माधव झेपकर बोले—"मैने तो इसे आपको अर्पित कर दिया। अब आप जिसे चाहे प्रेषित कर दें।"

मैंने वह माला उर्मिला की ओर बढ़ाते हुए कहा—"गिफ्ट टू दा कन्सर्ड पर्सन वाया मी।"

उर्मिला ने उसे एक ओर सरकाते उसे मेज के दूसरे छोर तक पहुचा दिया और बोली—"यह माला आपको भी विरसी भाषा बोलने पर मजबूर कर गई तो स्पष्ट ही मेरे लिए नही है। विलासी ऐसे गजरे लेकर कहां जाते है यह आपसे छिपा नही है। उपन्यासों-कहानियो मे इसकी कुछ कम भरमार नही है।"

उर्मिला के शब्दों के पीछे जितनी प्रताणना और अपमान छिपा हुआ था उसने पडित मुकुंद माधव के चेहरे पर जैसे कालौस ही पोत दी।

उन्होंने फिर एक शब्द नही कहा और वह दूसरे कमरे की ओर बढ गए।

उनके जाने के बाद कई मिनट तक वातावरण मे मनहूस चुप्पी छाई रही।

मुझे उर्मिला के शब्द चाबुक जैसे मारक लगे। मै सोच भी नही सकता था कि वह मोतियों के फूलो की एक माला लाने पर अपने पति को इस तरह कोंच कर अपमानित कर देगी। निश्चय ही उसके मन मे अपने पति के प्रति विद्रोह उस सीमा तक बढ गया था कि उसके शमन का कोई आसान उपाय सभव ही नही रह गया था। दोनों के लिए आमने-सामने बैठकर बाते करने की सभी सभावनाए नष्ट हो चुकी थीं। यह कहीं विदेश की वैवाहिक विडबना होती तो अब तक कब का तलाक हो चुका होता पर हम भारतीयों की सामाजिक जकडबदी और रूढिगत परपराओ के चलते सबंध विच्छेद भी आसान नहीं था। दोनो को अनिच्छा पूर्वक एक दूसरे को ढोते चले जाने की विवशता किसी भयानक अभिशाप से कम नहीं थी।

19

पडित मुकुद माधव उर्मिला की कटाक्षभरी उक्तियो और अपमान को पीकर जिस तरह चुपचाप चले गए थे वह मेरे लिए कम आश्चर्य की बात नही थी क्योंकि अब तक, उर्मिला के किसी व्यंग्य बाण से आहत होने के बाद मैने उन्हे चुप्पी साधते या चुप मारकर चले जाते नही देखा था।

मैने उर्मिला को उस कलह और कटुता भरे प्रसग से हटाने की मंशा से दूसरी बातो में लगा दिया और हम दोनो सहजता से और बहुत-सी बातें करते रहे। उन बातो मे मैंने प्रयासपूर्वक घर-परिवार की बाते नहीं आने दीं।

काफी देर बाद उर्मिला उठकर जाते हुए बोली—"मै आपके लिए चाय बनाकर लाती हू।"

मै बोला—"मेरे लिए ही क्यों?"

"मै तो दो प्याले चाय पीकर बहुत संतुष्ट हूं और अब नहाने-धोने के बाद ही कुछ ले सकती हूं।"

"मै भी दो प्याले चाय पी चुका हू और यह दो घंटे के लिए काफी हैं। पहले आप नहा-धोकर निपटें उसके बाद ही कुछ देखेंगे।" फिर कुछ क्षण ठहरकर बोला—"जोखन महाराज के न होने से आज नाश्ते और खाने का मीनू हमे बदलना पड़ेगा। आप स्नान ध्यान से निवृत्त हो ले फिर हम नाश्ता करने चलेगे। अगर दोसा और काफी से काम चल सके तो—काफी हाउस भी चल सकते है।"

वह बोली—"मेरे लिए तो वह आदर्श उपहार होगा मगर.... ।"

उसके मगर कहते ही मुझे उसके पति महोदय का खयाल आ गया और मै बोला—"वह तो बाजार का कुछ भी खाएगे नही इसलिए घर मे ही कोई व्यवस्था करनी पडेगी।"

वह लापरवाही से बोली—"मै और आप काफी हाउस चले चलेंगे. .उनके लिए पूरी पराठा और आलू की भाजी यही घर से बना दूंगी।"

"बस यही ठीक रहेगा।" कहकर मैने सुबह के अखबारो पर आखे केंद्रित कर ली।

उर्मिला नहाने के लिए चली गई मगर कुछ ही क्षण बाद गुलाब के फूलों की डोलची लेकर वापस आ गई। हंसते हुए बोली—"आपने ये इतने बडे-बडे सुर्ख गुलाब किसके लिए सजोकर रखे हुए हैं?"

"किसके लिए बतलाऊं? अब तो कहते हुए डर ही लगता है।"

"डर? कैसे और किसका डर?"

मै क्षण भर चुप रहकर बोला—"अलक्षित का ही समझो।

"अलक्षित? क्या इस घर में कोई अलक्षित भी रहता है जिससे आप मेरा परिचय नहीं कराना चाहते?"

"अलक्षित घर में कोई नहीं है वह तो मन की दुनिया में ही रहता है पर उस पर मेरी किसी प्रकार की दावेदारी नहीं बनती।"

उर्मिला सभवत मेरा अभिप्राय समझ गई और उसे रात की बात का स्मरण हो आया, जब मैंने परिहास में लॉन में उगे गुलाबों की बात की थी। मेरे लॉन मे इन दिनो कितनी ही 'वैरायटी' के गुलाब खिले हैं। सुबह किसी को देकर देखना कि देते समय क्या अनुभूति होती है और यह देना कैसा लगता है।"

वह गंभीर हो गई और बोली—"आपकी दावेदारी को मैं कोई चुनौती नही दे सकती पर काश आपका यह अमूल्य उपहार कहीं प्रेषित हो पाता।"

मैने क्षण भर चुप रहकर कहा—"वह शब्द चाहे किसी ने भी कहे हों पर मै उन्हे सुनने के बाद इन फूलो को दे सकने का साहस नहीं जुटा पाया। अब शायद कैसा भी नही लगेगा। होता होगा कोई समय जब इन बातो का कोई मतलब होता होगा।"

यह शब्द स्वयं उर्मिला के कहे हुए थे इसीलिए शायद वह उन्हें भुला नही पाई थी। कुछ न कहकर वह एक लंबी सांस खींचकर चली गई।

जब वह नहाने के बाद किचन मे चली गई तो मैं भी नहाने-धोने में लग गया।

नहाने के बाद मै कमरे में कपडे बदल रहा था तो मुझे एकाएक इस बात का ध्यान आया कि मैंने काफी देर से पडित मुकुंद माधव को नहीं देखा। यह तो स्पष्ट ही था कि वह ब्राह्म मुहूर्त में नहा-धोकर घूमने निकले थे। अब सुबह के साढे नो बज रहे थे, उन्हें भूख भी लग रही होगी।

मै उन्हे देखने के लिए अतिथि कक्ष मे गया पर वह वहां नहीं थे।

मैंने सोचा वह कोई पुस्तक या समाचार-पत्र लेकर लॉन में पेड के नीचे बैठे होंगे। पर वह लॉन में भी नही थे। उसके बाद तो मैंने सारा घर छान मारा पर उनका कहीं पता नही चला।'

मैंने रसोई में पूरियां तलती उर्मिला से पूछा—"क्या पंडित जी कहीं बाहर गए ह? घर मे दिखाई नही पड रहे हैं।"

वह बोली—"होंगे यहीं कहीं। वह घर से बाहर जाएंगे भी कहा?"

"हां, यही तो मैं सोचता हूं। शहर मे भी वह किसी को नही जानते। पान वगैरह का भी उन्हें कोई शौक नही है। हाट बाजार जाने मे भी मैं उनकी कोई खास रुचि नही देखता।"

उर्मिला सहजता से बोली—"हो सकता है घर में बैठे-बैठे ऊब गए हो ओर इधर-उधर चहलकदमी करने निकल गए हो।" फिर वह पिछले दिन का स्मरण करके बोली—"दिल्ली में ही वह किसी को कब जानते थे? हम लोगो को छोडकर गए तो फिर भटक-भटकाकर अपने आप ही घर नही लौट आए थे?"

"हां, यह तो तुम ठीक कहनी हो।" उर्मिला ने मुस्कराते हुए मेरी ओर देखा और बोली—"चलिए उनके कही चले जाने से इतना तो हुआ।"

"इतना क्या हुआ? मैंने चकित होकर पूछा—"यही कि आपके मुह से मेरे लिए आप संबोधन के अलावा दूसरा कोई शब्द निकल ही नही रहा था। अब आपने 'तुम' तो कहना शुरू किया।"

मैने भी हसते हुए कहा—"असावधानी में बोले हुए शब्द और सबोधन क्षम्य हे।"

"पर मैं माफ करने नही जा रही हूं। सजा के तौर पर अब आपको हमेशा यही 'तुम' बोलना पडेगा।"

उर्मिला ने नमकीन पूरियां तली थी। अलमारी में जोखन ने कई तरह के अचार और मुरब्बे बोतलों मे सजाकर रखे हुए थे वह संभवत- उर्मिला ने देख लिये थे। वह पूरिया एक थाली में रखते हुए बोली—"आप तो गरम-गरम ही खा लें। वह जब लौटेंगे तो मै उनके लिए फिर से तल दूंगी।"

"मुझे इतना गरम खाने का शौक हुआ होता तो अब तक बहुत कुछ हो चुका होता।"

"वह बहुत कुछ तो अब भी हो सकता है। पर उस पर बाद में भी विचार हो

सकता है। यह गरम पूरियां तो प्रस्तुत क्षण में ही मिल रही है—इसे आप अतीत बनाने पर क्यों तुले हुए है।"

मैंने अलमारी से आम के अचार और मुरब्बे की बोतलें उठाते हुए कहा—"आप अपने द्वारा तैयार चमत्कार को उधर डाइनिंग टेबिल पर ले आइए और बाकी का काम थोड़ी देर के लिए स्थगित कर दीजिए।"

उर्मिला संकोच दिखाते हुए कहने लगी—"मैं एक बार आपको अकले ही खाते हुए देखना चाहती हूं। वह मेरा आंतरिक सुख होगा। क्या मेरे लिए आप इतना भी नहीं कर सकते?"

"उर्मिला, बहुत दकियानूसी बात है यह मगर वह मैं तुम्हारा आदेश टालने का साहस भी नही कर सकता।"

मेरे शब्दों से उसके चेहरे पर एक उज्ज्वल मुस्कान थिरक उठी। उसमे सलज्जता की भी दीप्ति थी।

उर्मिला ने खाने की मेज पर कई सद्यःतली हुई फूली-फूली पूरिया प्लेट में न रखकर थाली मे ही रखी और बोतलो से अचार मुरब्बे निकालकर एक प्लेट में रखने लगी।

जब मैंने खाने के लिए पूरी का टुकड़ा तोड़ा तो मैंने देखा, वह एक कुर्सी की पीठ पकड़े स्नेह भरी आखो से मेरी ओर निहार रही थी।

जीवन से बहुत दूर जा चुका यह विरल दृश्य न जाने कितने वर्षो के अंतराल पर पुनर्घटित हुआ था, इसकी ठीक-ठीक याद मुझे नही थी।

वह मुझे खाता छोड़कर रसोई की दिशा में लौटी और पूरिया तलने लगी।

भर पेट खाने के बाद मैने पेट पर हाथ घुमाते हुए कहा—"काश अपना यही अंतिम भोजन होता।"

उर्मिला ने जीभ काटकर कहा—"हे, हें यह आप क्या दुर्वचन मुह से निकाल रहे हैं? क्या कभी ऐसे भी बोला जाता है?"

"जीवन का परम आस्वाद में डूबा क्षण इसी सोच से जुड़ा होता है। क्यों? क्योंकि उसकी पुनरावृत्ति संभव नहीं है। निमिष में सिमटी उज्ज्वलता, पवित्रता, प्रेम और परिभ्रमण कभी दुहराए नही जाते।"

उर्मिला की दृष्टि मे एक मोहाविष्ट भूख जाग उठा और वह अपलक मेरी ओर देखती रही। उसकी आखें अवश्य मेरे मुख पर लगी थीं पर उनका केंद्र मै नही था। पता नही कितने जन्मों के आर-पार पारदर्शिता को लक्ष्य करने वाली थीं वह आंखें।

मैं उसकी ओर से आंखे हटाकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। मुझे उठते देखकर मानो उसकी अतीद्रियता में डूबी चेतना एकाएक खडित हो गई। उसने आगे बढ़कर सहसा मेरे दोनों पांव अपने हाथों मे ले लिये।

मैं सन्नाटे में आ गया। उसे वलात् दोनो कधों से पकडकर उठाते हुए बोला—"यह क्या किया तुमने उर्मिला? अपने आपको बिखरने से बचाने का क्या कोई भी उपाय मेरे हाथ मे नहीं रहने दोगी?"

"अब आप बिखर नही सकते। आपके भीतर का अनुशासन ऐसा कभी नही होने देगा—यह मै भली प्रकार जानती हू।"

मै उन्मत्त की तरह लड़खडाते हुए वाश बेसिन पर जाकर खडा हो गया। मेरे मानसिक नेत्रों से उर्मिला का मेरे पावो की ओर झुकना ओझल नही हो पा रहा था।

20

दोपहर तक तो मेरा और उर्मिला का यही खयाल था कि पंडित मुकुंद माधव कहीं इधर-उधर ही घूमने-फिरने गए होंगे और जब उनका मन भर जाएगा तो भटक-भटकाकर स्वयं ही लौट आएंगे पर जब वह शाम तक भी नहीं लौटे तो मुझे एकाएक उनके सामान का खयाल आया। मैंने उर्मिला से कहा—"अब तक पंडित जी के लौटने की प्रतीक्षा में हमने यह भी नहीं सोचा कि कहीं वह यहां से चले ही ना गए हों।"

"यह कैसे हो सकता है?" उर्मिला गहरे अविश्वास से बोली।

"कमरे में जाकर उनका सामान तो देखें—उनकी अटैची झोला और खूंटी पर कुछ कपड़े वगैरह हैं या नहीं।"

उर्मिला के ध्यान में भी अब तक यह बात नहीं आई थी। वह कुछ बदहवास-सी होकर बोली—"वह ऐसा तो नहीं कर सकते।"

मैंने कहा—"करना तो नहीं चाहिए पर अगर ऐसा हो ही चुका हो तो हमें जानना तो चाहिए।"

उर्मिला उस कमरे में गई जहां उनका सामान रखा था। कुछ क्षणों बाद लौटकर वह रुआंसे स्वर में बोली—"आपने ठीक ही सोचा—वह चले गए हैं।" उसका चेहरा तमतमा उठा था। वह बहुत अपमानित अनुभव कर रही थी। गहरे विषाद से बोली—"वह ऐसा भी कर सकते हैं, मैंने यह नहीं सोचा था।"

मैं गहरी चिंता में पड़ गया। मुझे और उर्मिला में से किसी एक को भी उनके जाने की भनक नहीं मिली। जोखन महाराज होते तो शायद पंडित जी इस तरह मय सामान के चुपचाप खिसक न पाते। हो सकता था जोखन के रहते यह नौबत ही न आती। कई दफा, घटनाएं स्थितियों के कुछ और होने से टल जाती हैं।

अब क्या हो--यही मेरी समझ मे नही आ रहा था। उर्मिला के चेहरे पर पति के यों चुपचाप चले जाने के दु:ख से भी बडा त्रास इस तरह अवमानना करके चले जाने को लेकर था। उन्हे जाते समय एक बार भी यह खयाल नही आया कि जब वह अपने शहर मे बिना उर्मिला के यों अकेले पहुचेंगे तो लोग क्या समझेगे। किसी न उर्मिला के विषय में पूछा तो उसे वह क्या उत्तर देंगे।

उर्मिला की घबराहट और रुआंसेपन को लक्ष्य करके मुझे कुछ भी नही सूझ रहा था। मैंने जीवन में ऐसी कोई परिस्थिति कभी जानी-देखी नहीं थी और न ही उपन्यास कहानियो मे किसी ऐसी विषम स्थिति से पाला पडा था।

मैने उर्मिला के कंधे पर हथेली टिकाकर उसे दिलासा दी—"पडित जी ने असह गुस्से की लहर मे यह निर्णय लेकर जो गलती की है उसकी तुम किसी प्रकार भी दोषी नही हो। यह उनका एक पक्षीय निर्णय था और इसके लिए अब उन्हे पछतावा भी कम नहीं हो रहा होगा। मगर इसे लेकर तुम दुखी और परेशान हो, यह उचित नहीं है।"

"मै दुखी और परेशान न होऊ तो आप ही बताइए क्या करू?"

"कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। यह घर तुम्हारा ही है। अभी तुम्हारा विद्यालय भी बंद है। आराम से रहकर अगली स्थितियों की राह देखो।"

"मै तो राह देख लूंगी मगर वहां जाकर वह मेरे विरुद्ध क्या-क्या अभियोग नही लगाएगे?"

"अव्वल तो वह तुम्हारे विरुद्ध कोई अभियोग लगाएंगे ही नही। अगर उन्होने ऐसी कोई भूल कर दी तो उनकी ही मिट्टी खराब होगी। सभी उनकी रीति-नीति ओर स्वभाव से परिचित है। मैं नहीं समझता, उनके कृत्य के प्रति किसी को कोई सहानुभूति होगी।"

"उन्हें क्या लगता है? वह तो मेरा परित्याग भी कर सकते हैं। पुरुषों को ऐसा करने मे कितनी देर लगती है? क्या रोज ही ऐसी सैकडों घटनाए समाचार-पत्रों मे नहीं छपतीं?"

"जरूर छपती है। मै कब इनकार करता हूं, मगर वह सव उर्मिलाएं नही होतीं। पिछले दो दिनो में मेरा जिस उर्मिला से परिचय हुआ है यदि वह उसी रूप मे खडी हो जाती है तो फिर उसे अकारण कोई दडित नहीं कर सकता।"

"आप हमारे निर्दयी समाज को तो जानते है—इसमें सारा दोष और कलंक स्त्री का ही होता है। औरत अकेली कही एक रात रह जाए तो उस पर इतना मैलापन तोप दिया जाता है कि कोई उसके निष्कलंक होने की प्रतीति नही कर सकता।"

"म मानता हू यह स्थिति ता है पर स्त्री के हमेशा गंढ विहीन वने रहकर सारे अन्याय सहते चले जाने से ही यह होता रहा है। यदि एक वार वह सिर उठाकर खड़ी हो जाए तो बहुत कुछ बदल सकता है। अब तुम अपने को ही लो। अच्छी पढ़ी-लिखी विदुषी और आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर हो। पति पग-पग पर प्रताड़ित करते है—परस्पर कोई सौमनस्य वाला संवध भी नही है—फिर भी तुम उनके लिए चिंता में मरी जा रही हो। सोचो, ऐसा क्यो है?"

उर्मिला वोली—"मैंने इस दिशा मे कभी सोचा नहीं।"

"मै बतलाता हू कि तुमने क्यो नहीं सोचा।

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल मे है दूध और आखो मे पानी।

यही तुम्हे हर किसी ने वतलाया है और तुमने भी इसे यथास्थिति के रूप मे स्वीकार कर लिया है। तुम कल दिन और रात वाली उर्मिला बन जाओ तो फिर तुम्हे न कोई परास्त कर सकता है—न हताश कर सकता है। हमने पश्चिम से बहुत-सी बेकार की चीजे तो ग्रहण कर ली है मगर वहा के स्त्री स्वातंत्र्य पर कभी दृष्टि नहीं डाली। क्या वहा कोई पति अपनी पत्नी को इस तरह निराधार छोडकर जा सकता है? यदि वह एक वार चला भी जाए तो वह स्त्री न उसको कभी क्षमा कर सकती है और न वह उसको अपने जीवन में लौटा सकता है।

"पर यहा तो ऐसा नही हो सकता। उर्मिला उद्विग्न होकर वोली।

"हो क्यो नहीं सकता? इसमे कठिनाई ही क्या है। बस वही मानसिक बाधा है जिसे हमने बिना प्रतिरोध के स्वीकार कर लिया है। उदाहरण भी कैसे है—राम लोकापवाद के डर से सीता को त्याग देते है और कहीं कोई पत्ता नहीं हिलता। देवताओं की ओर भी आंखे न उठाकर दमयंती पति के रूप में नल का वरण करती है और नल एक रात उसे बीहड़ वन मे निराधार-निराश्रित छोडकर चल देता है—इस पर भी कहीं कोई सुगबुगाहट नही होती। स्त्री भी इस अन्याय के विरुद्ध कोई चू-चपड नही करती। इसे अपना भाग्य मानकर स्वीकार कर लेती है। इसके अलावा और भी तमाम उदाहरण इसी तरह के भरे पडे हैं। स्पष्ट ही है, जब बचपन से ही स्त्री के मन को इस सांचे में बिठाया जाता है और उसके लिए आत्मावलोकन, आत्मचिंतन वेदादि ग्रंथो का पारायण निषिद्ध ही है तो वह स्वयं को एक निर्वल लता के अलावा और क्या समझेगी जिसे किसी पेड का सहारा चाहिए ही चाहिए।

पर यहा तो ’सकी नियति ह बेल होने की स्थिति म क्या इसक अतिरिक्त उसका भाग्य और कुछ हो सकता है?”

मै उसकी बात सुनकर हस पड़ा और बोला—“अव्वल तो पेड पर चढी बेले सृजन धर्मा कम ही होती हैं और होती भी है तो खरबूज, तरबूज और काशीफल की जमीन पर ही विकसित होने वाली बेलो के मुकाबिले बहुत पोच होती है। शायद तुम विश्वास न करो, मैंने पच्चीस-तीस सेर वजन के तरबूज और काशीफल जिसे कद्दू भी कहा जाता है आमतौर पर देखे हैं। ऐसा सिर्फ इसलिए संभव होता है कि यह बेले हवा मे नही ठोस पृथ्वी पर फैलकर ही फलवती होती है।”

मेरी बात सुनकर उर्मिला के विषण्ण, उदास चेहरे पर हल्का-सा परिवर्तन हुआ और वह कुछ क्षण चुप रहकर सोचती रही। फिर लबी सास लेकर उसने पूछा—“अब आप मुझे क्या करने को कहते हैं?”

“मौज करो—इसके अतिरिक्त कहने को और है ही क्या!”

फिर कुछ देर ठहर कर मैंने कहा—“एक दो रोज के लिए हम लोग कही घूमने फिरने के लिए भी निकल सकते है। मेरे कई मित्र पहाड़ो पर हैं—पौढी और चमोली में भी कुछ अच्छे परिचित रहते हैं, वहां भी जाया जा सकता है।”

“अब मेरी अक्ल तो कुछ काम करती नही है। आप जैसा ठीक समझते हो वही करे।”

“वैसे तो मैं तुम्हारे साथ आज और अभी भी यहा से कहीं के लिए भी प्रस्थान कर सकता हू पर एक तो जोखन के आ जाने की राह देखना जरूरी लगता है। चलो जोखन को भी छोड़ा जा सकता है। इस तरह एकाएक मुझे कभी कही बाहर जाना पड जाता है तो मैं पान वाले को घर की चाभिया देकर चला जाता हूं पर मैं एक-दो दिन पडित मुकुंद माधव की भी प्रतीक्षा कर लेना श्रेयस्कर ही मानता हूं।”

उर्मिला चकित भाव से मेरा मुह देखने लगी। उसे रंचमात्र भी यह आशा नही थी कि उसे इस तरह औचक छोड़कर चले जाने वाले पति महोदय अब कभी लौटकर भी आ सकते है।

उसने गहरे अविश्वास से कहा—“यह मात्र एक दुराशा है। अब उनके यहा लौटकर आने का कोई प्रश्न ही नही उठता।”

“जब रात बहुत काली और निस्तब्ध होती है तो कभी सूर्योदय होगा। इसकी आशा भी दुराशा ही लगने लगती है। मगर हम सभी जानते हैं—प्रभात का आगमन रुक नही सकता सूर्योदय टल नहीं सकता।”

“जो भी हो, मुझे ऐसा नही लगता कि वह कभी लौटेगे।”

"पर मुझे कही बहुत गहरा विश्वास है कि पडित जी अवश्य आएंगे।"

"क्या आप त्रिकालदर्शी है, जो ऐसी भविष्यवाणी कर रहे है?"

"इसमें तत्त्वज्ञ होने अथवा भविष्य द्रष्टा होने का कोई प्रश्न नहीं है। जहा तक मे मानव स्वभाव से परिचित हू मुझे यही लगता है कि उन्हें लौटना चाहिए।"

"मै भी मानव स्वभाव की थोडी-सी जानकारी रखती हू। वह बहुत हठी और एकपक्षीय सोच वाले आदमी हैं। उन्हे जो चग एक बार चढ़ जाती है, वह उनके सिर से उतरती नही है।"

मैने कधे उचकाकर कहा—"भई अब वह तुम्हारे पति हैं, मै उनके संबध मे और क्या कह सकता हू!"

अब शाम होने लगी थी। मै बोला—"अगर फिल्म देखने का मन हो तो यहा एक अच्छी फिल्म लगी है। वैसे तो मै फिल्म देखने से कतराता हूं मगर जब लोग किसी फिल्म की प्रशंसा करते है और समाचार-पत्रो में भी उसकी अच्छी रिपोर्ट छपती हे तो देखने चला जाता हूं।"

"मेरा मूड तो एकदम उखडा हुआ है। अजब, उच्चाटन जैसी स्थिति है। अब आपका जैसा मन हो वैसा ही कीजिए।"

"तो फिर झटपट नहा डालो। सारे दिन लू चलती रही है। नहाने से थोडी राहत मिल जाएगी। शायद अच्छी ही फिल्म हो। इसमे तो कोई बडा जोखिम भी नहीं है। अगर नही जमी तो बीच में उठकर भी आ सकते है।

नहाने जाने से पहले उर्मिला ने पूछा—"क्या आपके लिए चाय या काफी कुछ बना दू?"

"कतई नही।" मैने मेज पर रखी घडी पर नजर डालकर कहा।

उर्मिला नहाने चली गई तो मै सोचने लगा कि मुकुद माधव न लौटे तो आगे की स्थिति क्या होगी! क्या उर्मिला उनके बिना सहज रह पाएगी? अपनी ओर से मे आश्वस्त था कि उसे मेरे पास रहने में कोई कष्ट होने वाला नही था लेकिन लौकिक दृष्टि से क्या यह एक निभने वाली स्थिति हो सकेगी? जोखन महाराज मेरे पास बहुत लबे समय से थे और शब्दो के अधिक आदान-प्रदान के बिना भी हम दोनो एक दूसरे के परस्पर थे। उर्मिला किस परिस्थिति मे यहां रह रही है, यह तो जोखन को बतलाना ही पड़ेगा। उस स्थिति में जोखन का उर्मिला के साथ क्या व्यवहार होगा? एक अविवाहित पुरुष के साथ एक ही घर मे किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री सहज भाव से रहना स्वीकार करेगी। मेरे अपने सामाजिक दायरे मे इस संबंध की क्या व्याख्या की जाएगी।

इसी क्रम मे मैं अभी और भी वहुत से विषम प्रश्नो से घिरने जा रहा था कि उर्मिला नहाकर लौट आई और बोली—"आप भी जल्दी से नहा डालिए।" दीवार घडी पर नजर डालकर मुझे याद दिलाया—"बस छह बजने ही जा रहे हैं।"

जब मैं और उर्मिला सिनेमा हाल पर पहुंचे तो शो छूट चुका था और सूचना विभाग की खबरो वाली रीले चल रही थीं। जल्दी से टिकट लेकर हम दोनो बाक्स में जाकर बैठ गए।

फिल्म शुरू हुई तो हाल मे चारो तरफ गहरी शाति छा गई। अभिताभ बच्चन की शुरू की फिल्मो मे से एक थी। इस 'आनंद' फिल्म मे राजेश खन्ना कैसर का मरीज होता है और अमिताभ बच्चन एक संवेदनशील डॉक्टर। कैंसर पीड़ित व्यक्ति मे जीवन के प्रति गहरी ललक है किंतु उसे मरने का भी कोई भय नहीं है। जितनी देर भी जीना है उसे वह सार्थक ढग से ही जीना चाहता है। डॉक्टर उसे बचाने के लिए प्राणपण से प्रयासरत है। वह भी जीवित रहते मृत्यु की पीड़ा का किसी को सकेत नही देता और अतत· हंसते-खेलते दुनिया से चला जाता है।

फिल्म खत्म होने पर मन में गहरी करुणा और पीड़ा की भावना लेकर हम लोग हाल से बाहर निकले। उर्मिला तो फिल्म में कई अवसरो पर अवशभाव से रो भी उठी। जिसे उसने वहुत छिपाने की भी चेष्टा की थी। पर वह ऐसे विषम क्षण थे कि विगलित हो उठना अनपेक्षित नही था।

जब हम दोनों 'चित्रालय' के परिसर से बाहर निकल आए तो उर्मिला ने एक लबी सांस खींचकर कहा—"इस फिल्म के सारे ही पात्रो मे कितनी गहरी मानवीय सवेदना थी। मैने अपने जीवन मे अब तक ऐसी कोई फिल्म नहीं देखी थी जिसमे एक भी पात्र विसंवादी और दुष्ट न हो। यह पहली फिल्म है जिसके सभी पात्र मन की गहरी भावनाओं से इस कदर जुडे हो।"

रिक्शे के इतजार में एक स्थान पर खडे होकर मैंने कहा—"वह तो है ही मगर सबसे बड़ी बात यह है कि इस चित्र मे जीवन के प्रति गहरी आसक्ति और आस्था के दर्शन होते हैं। कैंसर का रोगी अपने बचे-खुचे जीवन को संपूर्णता से जी लेने मे विश्वास रखता है। वह एक दीन हीन रुग्ण और दूसरो की दया पर जीने वाली जिदगी की कामना नहीं करता। वास्तव में हमारे फिल्म निर्माता ऐसी सार्थक फिल्म बडी मुश्किल से ही बना पाते हैं।"

मैंने निकट से गुजरते रिक्शे वाले को हाथ उठाकर रोका और उर्मिला से रिक्शे पर बैठने को कहा। उर्मिला की बगल में बैठ जाने के बाद मैंने रिक्शा चालक को गंतव्य का पता बतला दिया और उर्मिला से पूछा—"घर पर जाकर

अब खाने-पीने का झंझट करना तो बवाल सरीखा ही है। क्यो न कही होटल मे कुछ खाते पीते चलें।"

उर्मिला ने खाने के प्रति अरुचि प्रकट करते हुए कहा—"दोपहर का खाना ही अब तक हज्म नही हुआ है। नहाने के बाद थोड़ी-सी शाति मिली थी पर सिनेमा हाल की उमस मे फिर वही हाल हो गया। लगता है मुझे तो घर जाकर एक बार फिर से नहाना पड़ेगा।"

मैंने घर पहुचने से पहले ही रिक्शा रुकवाया और पड़ोस के दुकानदार से डबल रोटी मक्खन और दो किलो पानी का बर्फ लिया।

जब हम घर में दाखिल हो रहे थे तो उर्मिला ने पूछा—"फ्रिज के बर्फ से ही काम चल जाता—आपने यह बर्फ किसलिए खरीदा है?"

"तुम नहाने के लिए नही कह रही थी। टप का पानी तो उबलता हुआ ही होगा—उसमें बर्फ डाल देने से कुछ तो ठडा हो ही जाएगा।"

उर्मिला पछतावे के स्वर मे बोली—"पता नहीं मेरी वजह से आपको अभी कितनी मुसीबतें और उठानी पडेगी।"

"खुदा करे ऐसी मुसीबतों से कभी मुक्ति ही न मिले।"

"खुदा को इसमें क्या करना है। ऐसा करने के लिए तो मैं ही बहुत हूं।"

21

मैं देख रहा था कि पंडित मुकुंद माधव के बिना बताए चले जाने से उर्मिला निरंतर उद्विग्न होती जा रही थी। दो दिन में ही उसका चेहरा म्लान हो उठा था। उनकी उपस्थिति में वह मुझसे जिस तरह निर्द्वंद्व भाव से खुली बातचीत करती थी तथा अपने पति के प्रति सतत उपेक्षा का भाव दर्शाती थी—वह अब दिखलाई नहीं पडता था। यद्यपि वह उनके विषय मे अब भी कुछ विशेष चर्चा नही करती थी पर वह उनकी अनुपस्थिति को लगातार गहराई तक महसूस करने लगी थी। मेरा यह आश्वासन भी उसे कोई विशेष राहत नही दे पा रहा था कि उसकी जब तक इच्छा हो वह मेरे साथ पूर्ण स्वतन्त्रता से रह सकती है।

मै विविध प्रसंगों से उसका मन बहलाने का प्रयास करता रहता था। पहले वह खुलकर बहुत से प्रसंगो पर लंबा वार्तालाप करती थी तथा उसकी मेधा का स्वरूप भी उजागर हो उठता था किंतु पिछले दो दिनो से वह कोई भी ऐसी बात नही कर पा रही थी जिससे उसके मन के ठहराव का पता लगे।

दो दिनों तक वह रसोई में भी व्यस्त हो जाती थी पर जोखन के आ जाने से रसोई मे जाने का काम भी समाप्त हो चुका था।

जोखन ने पडित मुकुंद माधव को घर मे न देखकर उससे ही पूछा था। "क्या पडित जी वापस लौट गए?"

मैंने इधर-उधर करते हुए जोखन को बतला दिया था कि वह काम से कुछ दिनों के लिए चले गए है—जल्दी ही लौट आएगे।

कुछ और दिन विचित्र उच्चाटन की मन:स्थिति मे निकल गए। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि उर्मिला और उसके पति महोदय के बीच पारस्परिकता का वैसा प्रभाव नहीं था जो दोनो को हमेशा के लिए सहजता से अलग कर दे। दरअसल उनके

बीच सहज सवाद की स्थिति नही बनती थी और उसकी अनुपस्थिति भीतर के सारे आवेगों को कुंठित करने के लिए पर्याप्त थी।

लबे समय तक जब हम किसी के प्रति एक खास तरह का रवैया अख्तियार कर लेते हैं तो उसे बदलने मे एक विचित्र किस्म की झिझक होने लगती है। बीमार व्यक्ति के प्रति यदि हमारा दृष्टिकोण उसके उपचार और परिचर्या का होता है तो हमारी सलग्नता में कोमलता, चिता और स्नेह की कमी नहीं होती पर यदि हम उसकी बीमारी को मामूली ढग से 'रूटीन' मे शुमार कर लेते है तो हमारे मन मे एक तरह की उपेक्षा और लापरवाही का भाव ही घर कर जाता है और हम उसे बीमार देखने के अभ्यस्त हो जाते है।

यहां भी उर्मिला और उसके पति अपने व्यवहार को बदलने के प्रति निश्चेष्ट थे। हो सकता है वह कभी इस स्थिति को बदलना भी चाहते हों पर ऐन वक्त पर अपनी तत्परता खो बैठते हो। दाम्पत्य संबंधों मे कोमलता का बाहरी यथार्थ भी अपरिहार्य है। उसके प्रदर्शन की आवश्यकता से भी इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके चलते हमारा भीतरी काठिन्य कुछ तो गलत ही है। लड़ना-झगडना और कलह आदि भी दाम्पत्य जीवन के यथार्थपरक प्रसंग हैं पर यदि वही जीवन की मुख्यधारा बन जाएं तो फिर जीवित रहने का लालित्य ही सूख जाता है।

मैने उर्मिला की बेचैनी को दूर करने की कोशिश नही की। मै उसका मनोवैज्ञानिक उपचार करने के लिए यह आवश्यक समझता था कि वह गहरे मनोमथन मे डूबकर अपना आत्मावलोकन करे और जीवन के प्रति उसके पति का रवैया बदले। जिस उम्र मे वह लोग कलह कोलाहल मे जी रहे थे वहां एक-दूसरे के मन की भीतरी रागात्मकता का स्पर्श प्राय असभव ही था। हमारे समाज मे पति-पत्नी आपस मे एक दूसरे को किसी भी तरह सहते चले जाना एक साधना मानते है। वह कड़वे घूंट की तरह ही एक दूसरे को ग्रहण करते हैं और कालान्तर मे इसी ढब को सहज जीवन व्यापार की तरह स्वीकार भी कर लेते है। एक दूसरे से विलग हुए बिना उन्हे अनुपस्थित साथी के मूल्य और आवश्यकता की प्रतीति ही नही हो पाती। यही कारण है कि भारतीय परिवारों मे पहले एक स्वस्थ परपरा थी। पति-पत्नी को अपरिहार्य रूप से वर्ष भर मे कुछ समय के लिए एक-दूसरे से अलग रहने की सहज व्यवस्था हुआ करती थी। थोड़े दिन अलग रहकर उनकी पारस्परिकता के लिए भूख सहज ही प्रबल हो उठती थी। दैहिक और मानसिक क्षुधा की पूर्ति के लिए वह आपस मे ललककर मिलते थे। पर जब से सयुक्त परिवार टूटे यह पारस्परिकता का सकट पति-पत्नी के बीच बढता ही चला जा रहा है।

हो सकता है उर्मिला और उसके पति के साथ परिवार के कुछ और भी सदस्य रहते होते—एक दो बच्चे भी होते तो उन दोनो को आपसी व्यवहार मे एक सार्थक सतुलन रखने की बाध्यता होती। दोनो आर्थिक स्तर पर स्वतंत्र होने के बावजूद एक-दूसरे से जुडने की बजाय खिंचते ही चले जा रहे थे।

इसी तरह ऊहापोह मे चार दिन और निकल गए। पडित मुकुंद माधव की हमे कोई सुन गुन नही मिल पाई। एक रात नौ बजे बिजली गई तो फिर बारह बजे तक नही आई। मैने जोखन से कहकर लॉन में दो चारपाइयां डलवाई और उर्मिला से बोला—"लगता है हाईडिल के सब स्टेशन पर ही कोई बडा घपला हुआ है और आज रात तो बिजली आने की कोई सभावना ही नही दिखती। बाहर लॉन मे भी गर्मी और मच्छर तो कम नही होंगे पर फिर भी कमरे में तो हम लोग उबल ही जाएंगे।"

महीना भले ही जेठ का रहा हो पर निरभ्र आकाश मे चौदहवीं के चंद्रमा का प्रकाश झर रहा था। बिस्तर पर लेटकर मै और उर्मिला दोनो ही करवटें बदल रहे थे। दोनो की ही आंखो में नीद का नाम नहीं था।

मैने यह जानते हुए भी कि उर्मिला सो नही रही है, पूछा—"क्या सो गई है?"

"नही तो" उसने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया। "मुझे भी नींद नही आ रही है। बिस्तर भट्ठी जैसा तप रहा है।"

"हा यही तो! शायद इसी वजह से नीद नहीं आ रही।"

"तो फिर कुछ बातें ही की जाए।"

"कीजिए न! बातें करने को कौन मना करता है?"

मैं कुछ पल सोचता रहा कि किस विषय में बाते की जाएं? जब से उसके पति एकाएक बिना बताए चले गए थे तब से वह बहुत ही खिन्न और चिंतातुर दिखलाई पडती थी। मेरे सामने वह शब्दों में अपना दु:ख व्यक्त नहीं करती थी पर मै जानता था कि वह भीतर ही भीतर निरंतर छीजती चली जा रही थी। अपने पति की उपस्थिति में वह उनकी जितनी अनदेखी और अवमानना करती थी अब उसी अनुपात में मन में पश्चात्ताप कर रही थी।

मैंने कहा—"पंडित जी की याद आ रही होगी।"

"मुझे किसी की क्यों याद आने लगी?"

"तब बताओ, क्या सोच रही हो?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"यह तो कभी हो ही नही सकता। मस्तिष्क का धर्म और कर्म तो सोचना

ही है। वह एक क्षण भी शात नहीं बैठ सकता। यह तो स्वप्न मे भी चैन में बैठने वाला पछी नहीं है।"

"यह सब मै नही जानती। मै तो इस मामले मे निपट अनाडी हू। मन के सोचने की बात तो आप जैसे लोग ही जान सकते हैं।"

इसमे किसी-किसी विशेष या मामूली में कोई फर्क नहीं किया जा सकना। भले ही हमे कोई स्पष्ट दिशा न मिले मगर सोचना तो अहर्निश चलता ही रहता है।"

उसने प्रसग बदलने की कोशिश की—"आप कोई बात कहिए न।"

"कौन-सी बात?"

"कोई भी, किसी भी संबंध में किसी के भी बारे मे।"

"मै तो पडित जी के बारे मे ही सोचता हूं।"

"उनके बारे मे? पर उनके बारे में क्या सोचते है?"

"यही कि ऐसी क्या बात हुई कि उन्हे इतना आघात लगा और वह बिना कुछ बताए ही चले गए।"

"मैने तो कुछ ऐसा कहा नहीं था।"

उर्मिला जी आपने ऐसा कुछ कहा नहीं था, यह आप कैसे कह सकती है? आपने उनके द्वारा लाई हुई माला को लेने से इनकार करते हुए जो टिप्पणी की थी क्या वह आपको बिल्कुल भी याद नही है?"

उर्मिला कुछ देर तक तो चुपचाप लेटी रही और फिर वह बिस्तर पर उठकर बेठ गई। मै बोला—"आपके शब्दो मे जो जहर था उसे कोई भी पति नहीं पचा सकता। फिर वह जिस तरह के कर्मनिष्ठ और धर्मपरायण व्यक्ति हैं—उनके लिए तो असंभव ही था।"

"लेकिन मेरा आशय तो वह नही था।"

"आप और मैं जो बोलते है वह मात्र शब्द ही नहीं रह जाते है। हम बिना सोचे-समझे भी जो बोल जाते हैं उनके पीछे भी अर्थो की ध्वनि रहती है। वही अर्थ और ध्वनि प्रमाण बनते हैं।

"यह मैं नही जानती।"

"ऐसा हो नहीं सकता और यदि ऐसा है तो बहुत भयानक है।"

"पर अब उसको अनहोना करने का तो कोई उपाय मेरे पास नहीं है।"

"उपाय क्यों नही है? यदि तुम स्वीकार कर सको तो एक बहुत ही सरल उपाय है।"

उसने आंखे मेरे चेहरे पर केंद्रित करके पूछा—"बताइए! मुझे स्वीकार करने मे क्या कठिनाई है।"

"मै कल सुबह की ट्रेन से निकलता हूं और कल रात तक पिपरिया पहुच जाऊंगा। पंडित जी वही होंगे और मैं उनको समझा बुझाकर अपने साथ ले आऊंगा। उनके आने पर तुम्हें अपने सवाद का स्वरूप बदलना होगा और कटूक्तियो पर नियंत्रण करना होगा।"

"रवैया क्या मेरा ही खराब है? क्या कटूक्तिया मैं ही बोलती हूं? बस उनके मुंह से तो बोलते समय फूल झरते है?"

"हुई न वही बात, जिसका मुझे डर था!"

"क्या डर था?"

"यही कि तुम मुझे एकदम गलत समझोगी! मै तुम्हें यह समझाना चाहता था कि यदि हम व्यंग्य और कटूक्तिया न बोलें तो दूसरा भी उन्हे बोलने में सावधान रहेगा। दाम्पत्य सबधो में सबसे ज्यादा गड़बड़ और असतुलन पैदा करने वाली चीज कटु वचन ही है। क्या यह मोटी सी बात तुम्हारी समझ मे अब तक नही आई।" फिर मैं हंसकर बोला—"सत वचन तो यही है—'कटु वचन मत बोल रे तोहे पिया मिलेगे'।"

उर्मिला ने मेरी बात पर कोई टिप्पणी नही की वह कई मिनट तक बिस्तर पर चुपचाप बैठी रही।

मैने फिर बात शुरू की—"देखो उर्मिला, दो मे से एक रास्ता तो तुमको चुनना ही होगा। या तो तुम अपने पति महोदया के बारे में सब कुछ भूल जाओ और यह मान लो कि तुम्हारा उनसे कभी, कोई संबध ही नही था। वैसी स्थिति मे तुम्हे अपने जीवन की नए ढंग से शुरूआत करनी होगी। और यह भी स्पष्ट है कि वह कोई सुगम शुभारभ नहीं होगा। दूसरी स्थिति यह है कि तुम उनके सहवास को अपनी नियति स्वीकार करो और अपने को कुछ इस तरह बदल डालो कि उनके अनुरूप बन सको।"

"बस मैं ही सब कुछ करू? मै ही स्वय को बदलने का प्रयास करती रहू—वह स्वय को रत्ती भर भी बदलने को राजी न हों।"

"मैं तुम्हारे अभिमान और उससे जुडे परिताप को समझता हूं। मैं पूरा प्रयास करूगा कि वह भी स्वयं को बदलकर तुम्हारे अनुरूप बनाने की चेष्टा करे। उन्हे अगर तुम्हारी जरूरत न होती तो वह यहा से इतने क्षुब्ध होकर जाते ही नही। जाते भी तो वह स्पष्ट करके जाते कि अब उनके जीवन मे तुम्हारा कोई स्थान नही है।

जब कोई हमसे भीतर से नाराज होता है तभी इस तरह का आचरण करता है जैसा कि पंडित मुकुंद माधव ने किया।"

"जिस मन में एक बार घृणा, कटुता और उपेक्षा घर कर जाती है वहां सामंजस्य की वापसी क्या कभी संभव हो सकती है?"

"दरअसल तुम्हारा यह सोचना असंगत नहीं है पर मेरा अपना खयाल यह है कि देह में होने वाले परिवर्तनों पर हमारा बहुत अधिक वश नहीं है। वह जीवन के ऋतुचक्र से अनुशासित और संचालित होते हैं। हम बहुत प्रयास करके उनमें यत्किंचित परिवर्तन ला सकते हैं पर अंततः वह देर-सबेर अपनी ही निर्दिष्ट दिशा और दशा में पहुंच जाते हैं। इसके विपरीत मन जो बहुत अस्थिर और चंचल कहा जाता है उसमें परिवर्तन की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है। वह हमारी देह की गति का अनुगत नहीं है बल्कि प्रायः देह को ही उसका अनुसरण करने को विवश होना पड़ता है।" मैंने जरा रुककर उससे पूछा—"क्या मेरे सोच में तुम्हें कोई अन्विति दिखाई नहीं पड़ती?"

"नहीं नहीं, मैं आपके विचार की विरोधी नहीं हूं। आप अपनी बात कहते चलिए। मैं बहुत ध्यान से सब बातें सुन रही हूं।"

"हां तो मैं कह रहा था कि मन ही है जिसे निरंतर गतिशील बनाए रखा जा सकता है और हमारा सारा जीवन व्यापार-पारस्परिकता और जागतिक संबंध मन के द्वारा ही निर्धारित होते हैं। हम पहली बार में जो पूरी तरह नहीं समझ पाते उसमें संशोधन करके दूसरी-तीसरी बार अथवा आगे कभी ठीक से समझने जानने में समर्थ हो सकते हैं? स्वयं में संशोधन करने की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है बिल्कुल उसी तरह जिस तरह हम पहली बार दूर से, किसी की बात ठीक से ग्रहण न कर पाने पर उसके निकट पहुंच जाने अथवा उसके समीप आ जाने पर फिर से ठीक तरह से सुन सकते हैं।"

उर्मिला बोली—"मैंने इस सब पर कभी इस तरह नहीं सोचा। आप तो निरंतर सोचते और गुनते ही रहते हैं इसलिए मानव मन के भीतरी तंत्र को भली प्रकार समझकर विश्लेषण करते रहते हैं। मैं ठहरी एक मामूली बुद्धि की साधारण स्त्री।"

मैंने गंभीरता समाप्त करने के लिए कहा—"वाह रे मामूली बुद्धि की साधारण स्त्री। यदि यही बात सच हुई होती तो फिर इतना सारा बखेड़ा ही क्यों खड़ा हुआ होता। फिर तो तुम लंबा घूंघट निकालकर रहती और पति महोदय जिधर को हांक देते उधर ही चल पड़ती। हमारे घरों में जब स्त्रियां घूंघट निकालती

थी तो उनके पति उनकी सूरत से भी परिचित नही होते थे। कई बार तो लौटती दो बारातों मे ऐसे घपले हो जाते थे कि रेलगाडी के भम्भड मे दुलहिनें तक बदल जाया करती थी।''

उर्मिला बोली—''ये सब अतिशयोक्तिया हैं—इनमे कोई भी वास्तविकता नही हो सकती।''

''वास्तविकता कितनी है इसका अनुमान तुम इस घटना से लगाओ कि स्वय महाकवि रवीन्द्रनाथ की 'नौका डूबी' रचना मे इसी तरह दुलहिने बदल जाती है। गुरुदेव न महज कपोल कल्पना के वल पर यह आख्यान खड़ा किया हो—इसे कोई नहीं मान सकता। दूर क्यो जाए, जब मेरी मा की मृत्यु हुई तो लोगो ने मेरे पिता से कहा कि आप अतिम समय उनका चेहरा देख लें। जानती हो मेरे पिता जी का क्या उत्तर था? वह बोले, जिसका मुंह मैने पूरे जीवन मे भी एक बार नही देखा उसका मुह अब आखिरी बार भी क्या देखूं।''

उर्मिला ने आश्चर्य व्यक्त किया—''क्या आप सच कह रहे है?''

''बिल्कुल सच कह रहा हू क्योकि मै उस समय वहां मौजूद था और कोई बच्चा नहीं था बल्कि उसी वर्ष एम.ए. पास कर चुका था। हम सब पांच भाई और एक बहन उनकी जीवित संताने थीं।''

उर्मिला बोली—''मै तो अबूझमाड-बस्तर के जिस इलाके मे रहती हूं वहा निरक्षर और सभ्य समाज की दृष्टि मे जाहिल आदिवासी औरते तक घूंघट नही निकालतीं।''

उसकी बात सुनकर मै देर तक हसता रहा और बाद मे बोला—''जब उनके पास परम गोपनीय अंगो को ढकने तक के लिए कपडा नही होता तो वह काहे से घूंघट निकालेंगी। घूंघट तो दरअसल वही संभव है जहा स्त्रियो के पास कपडा इफरात मे हो। जो घाघरा या लहंगा हमारी मारवाडिनें पहनती हैं उसके कपडे से कई स्त्रियो की धोतिया बन सकती हैं।''

उर्मिला ने पूछा—''इस सबको क्या आप बहुत अच्छा समझते हैं और प्रशसा की दृष्टि से देखते है?''

''यह प्रशसा और निंदा की दृष्टि से देखने का प्रश्न नहीं है। यह समाज का एक स्वरूप है जो अभी भी बहुत से स्थानों और समाजों में कायम है। निश्चय ही वहा भी स्त्रियों-पुरुषों के बीच में द्वैध और तनातनी के कुछ कारण होते ही होंगे पर हमारे पढ़े-लिखे और तथाकथित प्रबुद्ध समाज मे कुछ ज्यादा ही तनातनी दिखलाई पडती है। खुलेपन का जितना अकाल सुविधा भोगी समाज मे है वैसा निम्न वर्ग मे

कही देखने को नही मिलता। वहां स्त्री-पुरुष दोनो ही बराबर का श्रम करते है और अकुंठ भाव से जीवन-यापन करते हैं।"

"रात को शराब पीकर जब पति लौटता है तो वह अपनी घरवाली के साथ कैसा पैशाचिक बर्ताव करता है—क्या आपकी जानकारी मे है?"

"जरूर करता है मगर उसकी पत्नी उसको छोडकर किसी और के साथ घर बसाने के लिए जितनी स्वतन्त्र है उतनी सभ्य समाज की कोई स्त्री नही होती। यहां लंबे समय तक एक शीत युद्ध चलता रहता है और तलाक की प्रक्रिया भी अच्छी खासी लबे समय तक खिचती चली जाती है। आपसी संबंधो के तार टूटने मे भी बरसों लग जाते हैं। पति-पत्नी के बीच में भावात्मकता के सकट पर उतना जोर नही रहता जितना कि आर्थिक सुरक्षा का हौवा खडा कर दिया जाता है।"

"क्या पति से ठुकराई हुई तिरस्कृत स्त्री को आर्थिक सुरक्षा नहीं चाहिए?"

"बिल्कुल चाहिए। मै कब इनकार करता हू कि नहीं चाहिए मगर इस पूरे प्रकरण में दाम्पत्य का प्रश्न कहां रह जाता है? उसकी तो हत्या होकर ही रहती है। प्रेम-व्रेम जैसी चीजें तो खाम-खयाली भरा मजाक ही बनकर रह जाती है।"

"प्रेम और दूसरी संवेदनाएं गहरी और मूल्यवान हैं पर देह रक्षा की आवश्यकता से कैसे इनकार किया जा सकता है। इसी के रहने से बाकी सवेग-आवेग भी बचते है। अन्यथा देह की अनुपस्थिति में किस स्थूल और सूक्ष्म का अस्तित्व सुरक्षित रह पाता है।"

मैं बोला—"मैं देख रहा हूं कि पंडित जी के एकाएक चले जाने से तुम्हे देह अत्यंत महत्त्वपूर्ण लगने लगी है।"

"किसी के आ जाने चले जाने से वह न तुच्छ हो जाती है न महत्त्वपूर्ण। देह का अपना एक अलग ही सत्य है—उससे कोई इनकार नही कर सकता। यहां तक कि वह भी जो देह को लोकोत्तर आनंद प्राप्ति मे बाधक मानने का भ्रम पाले हुए है।"

मै बोला—"उनकी तो बस कुछ पूछो ही मत। दूसरों को जो देह की तुच्छता का उपदेश देने में अव्वल हैं और शरीर की भर्त्सना करने मे कहीं कोई कसर ही नही छोड़ते स्वयं की देह को रेशम से सजाकर रखते हैं। उन्हे मोटे मुलायम गद्दे और वातानुकूलित सज्जापूर्ण कक्ष के बिना तो नींद ही नहीं आती। यह पाखंड इतना सनातन है कि अब इसकी ओर कोई आंखें भी नहीं

उठाना चाहता।"

उर्मिला ने कहा—"बस तो फिर अगर एक अबला नारी पति गृह में ठुकराए जाने पर प्राणों की रक्षा के लिए न्यूनतम आर्थिक सामाजिक सुरक्षा चाहती है तो कहां दोषी है।"

"बिल्कुल भी दोषी नहीं है।" कहकर मैंने धुर पश्चिम की ओर ढलकते चांद की निष्प्रभ चांदनी देखी और बोला—"अरे बातों में तो सारी रात ही निकल गई। मैं सोचता हू, अब थोडी देर सोने की कोशिश करनी चाहिए। अब तो हवा भी अपेक्षाकृत ठंडी है।"

मैंने करवट बदलकर सोने का प्रयास किया। उर्मिला जो बहुत देर से बिस्तर पर बैठी बातें कर रही थी—लेट गई। पता नहीं उसे नींद आई या नहीं पर मैं तो कुछ ही क्षणों में गहरी नींद में डूब गया।

22

ज्यो-ज्यो समय गुजरता चला गया—पडित मुकुद माधव को किसी तरह समझा-बुझाकर वापस लाने का मेरा इरादा भी बराबर पक्का होता चला गया। वैसे तो मै उर्मिला को भी अपने साथ लेकर पिपरिया जा सकता था पर मुझे डर यही था कि कही वहा उन दोनो की बीच की कलह और अधिक मुखरित न हो उठे। जिन लोगों को अभी तक उनके बीच की टूटी कड़ियो का पता नहीं होगा वह भी अनायास इस सबको जान जाएंगे। क्या पता पडित जी हम दोनो को घर मे ही न घुसने दे। असली अपराधी तो वह मुझे ही समझते होंगे क्योंकि उर्मिला दिल्ली मे मेरे साथ ही उनसे अलग हो गई थी और घर पर लौटकर भी वह उनसे कटुतापूर्ण व्यवहार करती रही थी। हो न हो इसके पीछे वह मेरी ही शह मानते होगे। वह यही सोचते होगे कि मैने ही उनकी पत्नी को उनके विरुद्ध भडकाने का षड्यन्त्र रचा है।

पर जाने से पहले मेरे लिए यह जानना आवश्यक था कि पंडित जी यहा से सीधे अपने घर पिपरिया ही गए है या ग्रीष्मावकाश मे काम-काज से मुक्त होने के कारण कही और निकल गए है। वह धर्मप्राण व्यक्ति थे इसलिए तीर्थाटन के लिए निकल जाना भी असभव नहीं था। उनकी आवश्यकताए तो न्यूनतम थी ही, हो सकता है बद्रीधाम, केदारनाथ-गगोत्री जमुनोत्री की यात्रा पर निकल पड़े हों। वैसे भी इस मौसम मे आध्यात्मिक वृत्ति के लोग हिमालय की दिशा मे अच्छी संख्या मे जाते है।

मैं यह भी सोचता था कि भले ही वह अपनी पत्नी से बहुत नाराज हो पर मुझे अपने जाने की सूचना कहीं से भेज सकते है। वह पूरी तरह से रिश्ता तोड़कर उर्मिला को अपने जीवन से बहिष्कृत कर चुके होंगे, मुझे इस पर यकीन नहीं था।

जब कई दिनों बाद तक भी पडित मुकुद माधव का कोई पत्र नही मिला तो

मुझ लगने लगा कि उन्होने उर्मिला से अघोषित रूप से सबध विच्छेद कर लिया है। मुझे यह भी आभास हुआ कि भले ही वह यहा से सीधे घर न गए हो पर जहा भी गए होगे वहा से लौटकर अपने गृह नगर पहुंच चुके होगे।

मैने जिस दिन प्रस्थान करने की बात तय की थी उसी दिन निरभ्र आकाश से वज्र की तरह पडित मुकुद माधव अकस्मात् हमारे घर आ पहुचे।

मै तो उनके आने की कल्पना से भी किनारा कर चुका था। उनको यो यकायक आया देखकर सन्नाटे मे आ गया।

दुआ सलाम के बाद मैंने उनके स्वास्थ्य के बारे मे पूछा। सयोग से उस समय उर्मिला नहाने गई हुई थी।

जब वह बाहर बरांडे मे मोढे की पीठ से टिककर इत्मीनान से बैठ गए तो मने पूछा—"पंडित जी लगता है खूब घूम-फिरकर लौटे है।" मैने इस बात का जान-बूझकर उल्लेख नही किया कि वह मुझे और उर्मिला को कुछ भी बतलाए बिना कहा चले गए थे।

"हा बहुत घूमा। रामेश्वरम् तक हो आया हूं। दक्षिण के अनेक तीर्थ देखे। सब तीर्थ विलक्षण है और दक्षिणायत घोर धार्मिक वृत्ति के प्राणी है।"

"चलिए यह तो अच्छा किया। अभी तो गर्मियो की छुट्टियां भी बाकी है। अवकाश का अच्छा सदुपयोग कर लिया आपने। हमें बतलाते तो हम भी आपके साथ हो लेते।"

वह एक क्षण के लिए गभीर हो गए और उनके चेहरे पर सख्ती का भाव आ गया परतु अगले क्षण ही वह तिरोहित भी हो गया। वह बोले—"वास्तव मे सहसा जो सकल्प बनता है वही पूर्णता की ओर जाता है। बहुत सोच-विचार करने के बाद अव्वल तो कुछ तय ही नही हो पाता और अगर होता भी है तो उसका भीतरी आनद ओपचारिकताएं पूर्ण करने मे निष्प्राण हो उठता है।"

"हा यह तो आप ठीक कहते हैं कि बहुत सोच-विचार करने के बाद कही जाने का उत्साह मंद पड जाता है और बिना तय किए कही के लिए भी निकल पडने मे ही एडवेंचर का सच्चा सुख मिलता है।"

मैंने कुर्सी से उठते हुए कहा—"मै अभी आपके लिए नीबू का शर्बत बनवाता हू। कितनी गर्मी पड़ रही है। आपको प्यास लगी होगी।"

उन्होने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा—"नही-नही, मुझे अभी प्यास बिल्कुल नही है। वह सब कुछ स्नान आदि करने पर ही पिऊंगा।" फिर कुछ क्षण ठहरकर उन्होंने पूछा—"हमारे पंडित जोखन जी मिश्र महाराज कहा है—अभी अपने

गाव स लाटे या नहा

मैंने जोखन के नाम के साथ इतने सारे विशेषण लगे देखकर कहा—"मिश्र जी तो दो दिन बाद ही गाव से लौट आए थे। इस समय मडी से शाक भाजी लेने गए है। बस आते ही होगे।"

पडित जी के मुख पर सतोष की रेखाए खिच आई और वह अपनी अटैची का ताला खोलने लगे। जब वह अटैची खोलकर नहाने के लिए कपड़े निकाल चुके तो मे बोला—"मैं देखता हू कि बाथरूम खाली हो गया क्या?"

"अच्छा-अच्छा कोई नहा रहा है तो कोई बात नहीं है। मुझे स्नान की कोई बहुत जल्दी भी नही है।"

मैंने मुस्कराकर कहा—"कोई जैसा बेगाना व्यक्ति इस घर मे नहाने के लिए नही आ गया है। गुसलखाने में आपकी परम प्रिया पत्नी श्रीमती उर्मिला देवी ही स्नान कर रही हैं। आपको यही कहना उचित है।"

"अच्छा तो उर्मिला नहाने गई हैं।" उनके चेहरे पर भी हल्की-सी मुस्कान आ गइ—"अरे तो वही सही भाई। बात को यो न कहकर कुछ बदलकर कह लो, बात तो एक ही है।"

"वाह पंडित जी! दोनो बाते एक कैसे हो सकती है? हर बात का अपना अलग महत्त्व होता है फिर आप तो ठहरे भाषा के भीतरी तंत्र को सवारने वाले। आपके लिए तो इसका महत्त्व और भी कहीं प्रमुख है।"

तभी जोखन दोनो हाथों मे झोले लटकाए आते दीख पडे। उन्होने पंडित मुकुद माधव को मोढे पर आसीन देखा तो दोनों झोलो को दीवार से टिकाकर बोले—"पडज्जी पालागन। का तीरथ जात्रा कर आए रहे? हम बी यही सोचा के—हो न हो पडज्जी कहू तीरथ पर निकरि गए रहे।"

"हा भई दूर निकरि गये रहे तिरुपति, मदुराई, रामेश्वरम् सभी जगह घूम आए।"

जोखन गद्‌गद भाव से दोनो हाथ जोड़कर बोले—"धन्न महाराज! हमारी तो बस इच्छा ई रही कहू बी निकरि नहीं पाये। आप जैसे पुन्नात्मा के दरसन ई हमारी चारों धाम की जात्रा समझो पूरी।" फिर वह क्षण भर ठहरकर बोले—"पन भैनजी कू बी संगई लै गये होते लगे हाथन।"

जोखन के औचक शब्दों से पंडित जी जरा देर के लिए तो दबसर में पड गए। फिर कुछ सोचकर बोले—"उतनी दूर तक जाने के बारे में पहले से कोई विचार नहीं था बस एकाएक ही मन में बात उठी और चल पड़े।"

"चलआ ऐसे ई सई। फिर कवी चले जाइयो—अबी तो लम्बी उमर सामने परी है।"

जोखन झोले उठाकर रसोई की ओर जाने लगे तो मैं बोला—"देखना गुसलखाना खाली हो गया क्या? पडित जी भी स्नान कर लेगे।"

"हओ अब्बी लेवो।" कहकर वह आगे बढ गए।

जोखन के पीछे मै भी अंदर चला गया और उर्मिला को ड्रेसिग टेबिल के सामने बाल बनाते देखकर बोला—"लाओ जल्दी से पर्स से ग्यारह रुपये निकालो।"

उसने भोहों मे बल डालकर पूछा—"ग्यारह रुपये? सुबह ही सुबह क्या कही कोई परसाद बरसाद चढ़ाने का संकल्प कर लिया है।"

"हा जी! खबर ही ऐसी है। ग्यारह क्या खुशी के मारे ग्यारह सौ भी देने मे आनाकानी नहीं करनी चाहिए।"

उसने आईने से नजर हटाई और पलटकर मेरी ओर देखते हुए बोली—"क्या आपको कोई बडा पुरस्कार मिलने की घोषणा अखबार मे छपी है।"

"पुरस्कार? अरे उससे भी बहुत बडी खबर है—अपने पडित मुकुंद माधव जी तिरुपति, मदुराई और रामेश्वरम् आदि पवित्रतम तीर्थो की यात्राओं का पुण्य कमाकर लौटे हैं।"

यह बात सुनते ही उर्मिला के चेहरे पर तनाव उभर आया और वह एकाएक असहज हो उठी। उसने ड्रेसिग टेबिल की ओर मुडकर अपने माथे पर एक सर्पाकार बिंदी लगाते हुए कहा—"वह यहां क्या करने आए हैं?"

मैने उसके मस्तक की बिंदी की ओर संकेत करके कहा—"स्वय को तुम्हारे माथे के सांप से डसवाने आए हैं।"

उसने मेरी बात का कोई उत्तर नही दिया और दूसरे कमरे की ओर बढ़ गई। मै तुरत उसके पीछे-पीछे गया और बोला—"देखो उर्मिला। मैं तुम्हारे मन की पीड़ा, आक्रोश, मान-अभिमान सभी कुछ बहुत अच्छी तरह समझता हू मगर साथ ही मैं उस व्यथा से भी अपरिचित नही हू जो तुम पिछले दस-बारह दिनो से रात दिन भोग रही हो। उनके यो चुपचाप चले जाने से तुम्हारा बहुत अपमान हुआ सही पर जब वह लौटे आए है तो वह निश्चय ही यहां से जाते समय जैसे थे वैसे अब नहीं हैं।"

उसने आवेश मे पूछा—"यह आप कैसे कह सकते हैं? क्या तीर्थ यात्रा करके आदमी कुछ और हो जाता है? क्या उसका मन बदल जाता है? उसके व्यवहार में क्या कोई बडा परिवर्तन हो उठता है?"

"इसका उत्तर है शायद हा और शायद नहीं।"

"यह तो कोई बात ही नही हुई।"

"बात तो हुई क्योकि जाते समय पडित जी जिस आवेश जनित मनःस्थिति मे यहा से गए थे उसमे उनके यहा एक प्रतिशत भी लौटने की गुंजाइश नहीं थी लेकिन जब वह पिपरिया न जाकर फिर यहीं लौटे है तो कुछ सोचकर ही लौटे होगे।"

"मै तो इसे सीधा-सादा भगोडापन मानती हू।"

"वह बात तो एक शाश्वत सत्य है। पुरुष ही स्त्री को छोडकर भागता है और वही फिर से पलटकर दुर्निवार गति से उसी की ओर लौटता है। पर यह भी सच है कि स्त्री इतने पर भी उसको दुत्कारती नही है बल्कि स्वीकार ही करती है।"

"जिस समाज ने उसे हजारो वर्षो से कुचलकर रखा है उसी ने इस मानसिकता को जन्म दिया है कि स्त्री पुरुष को कुछ भी करने की छूट दे और उसके जो भी अन्याय अत्याचार हो उन्हे खुशी-खुशी सहे। ऐसा करने पर सती-साध्वी देवी महादेवी, पुण्यात्मा अन्नपूर्णा और भी न जाने किन-किन छन्दों से अलंकृत की जाए। पर उसके शोषण पर किसी प्रकार की वैयक्तिक अथवा सामाजिक बदिश न लगाई जाए।"

निश्चय ही उर्मिला के स्वर मे जो आक्रोश का उद्घोष था उसे बाहर बराडे मे बैठे पडित मुकुंद माधव सुनने से वंचित नही रह सकते थे। किन्तु उन्होंने उर्मिला की इस प्रकृत अभिव्यक्ति पर अपनी कोई शाब्दिक प्रतिक्रिया मुखरित नहीं होने दी।

मैंने उर्मिला से इस संबंध में और अधिक बातचीत करना उचित नहीं समझा और बोला—"पंडित जी को मैं स्नानघर मे भेज रहा हूं—इतनी देर मे जोखन जो भी साग-भाजी लाए है—अपनी पसंद से बनाने के लिए कह दो। हम सब लोग आज नाश्ता साथ ही करेगे।" फिर एक क्षण उर्मिला के मुख पर दृष्टि केंद्रित करते हुए बोला—"तुमसे मेरी एक विनम्र प्रार्थना यह भी है कि नाश्ते अथवा खाने पर बैठते हुए भीतर का मनोमालिन्य उसमें शामिल न किया जाए। लड़ने भिड़ने के लिए और भी अनेक मोर्चे हैं।"

मेरी बात से उर्मिला के मुंह पर सहज हसी उभर उठी और वह बोली—"लगता है सभी पुरुष स्त्रियों को कलहान्तरिता ही समझते है।"

"यह तो बडा मुश्किल शब्द है—इसका अर्थ क्या कलह की समाप्ति होता है?"

"कलह की समाप्ति नही, इसका अर्थ कलह का बिगुल फूकना होता हे। लगता है आपका इस शब्द से कभी भी सामना नहीं हुआ।"

"खुदा करे कभी हो भी नही।" कहकर मैं बराडे की दिशा मे चल पड़ा।

पंडित मुकुंद माधव अखबार का पन्ना फैलाए उसमें इस तरह डूबे हुए थे मानो उन्हें आस-पास की दुनिया का कुछ भी पता न हो। मैंने उनसे कहा—"आप तो स्नान-ध्यान से पहले संभवतः पानी भी नहीं पीएगे। अच्छा हो कि आप पहले नहा-धो लें। अभी स्नानघर खाली है। आप चाहे तो उसका उपयोग कर लें।"

पंडित जी ने तो नहाने के लिए कपडे पहले ही अटैची से निकालकर खाली मोढे पर रखे हुए थे। उन्होंने हाथ के अखबार की कई तहें कीं और उसे कुर्सी पर रखकर खड़े हो गए। चलते हुए बोले—"क्या आप नहा चुके हैं।"

"नहाने की स्थिति तक पहुंचने से पहले मुझे बहुत से नखरो से गुजरना पडता है। अभी तो दो बार चाय और पीनी पडेगी उसके बाद अखबारों का पारायण करते हुए बाथरूम में समाधि लगानी पड़ेगी। वह कम से कम दो घटों का सत्र तो होगा ही।"

वह अपने कपड़े उठाकर चलने लगे और बोले—"आधुनिकता का और क्या आशय है। यही तो कि आप अपने दिन की गतिविधियों में कम से कम तीन-चार घटे 'बाथरूम' को समर्पित करने के लिए तत्पर रहें। यदि त्वरित गति से कोई काम करने का अवसर आ जाए तो आपका 'बाथरूम' आपको छूट ही न दे।"

मैंने हंसते हुए कहा—"देववाणी की सबसे बड़ी विशेषता तो यही है कि वहा साधारण बात भी अलंकृत किए विना नहीं कही जा सकती और अतिशयोक्ति अलकार की तो एक तरह से भरमार ही है।"

"आप अंग्रेजी दा सज्जनों का हाजमा भी तव तक नहीं संभलता जब तक बेचारी संस्कृत पर सौ-पचास लानतों की वर्षा न कर ले। बाकी सस्कृत ही मात्र एक ऐसी भाषा है जिसमें सूत्रों की रचना हुई है और साधारणतया सक्षिप्ततम सूत्रों की व्याख्या करने में एक नहीं दर्जनो पुस्तको की रचना हुई है।

पंडित जी जब नहाने के लिए बाथरूम मे दाखिल हो गए तो मैंने रसोई मे जाकर देखा उर्मिला ने झोला उलटकर सारी सब्जियां फर्श पर फैला रखी थीं और वह उन्हें अलग-अलग रख रही थी। मुझे देखकर बोली—"आपको चाय चाहिए न? मै अभी दो मिनट में बनाकर लाती हू।"

मैने कहा—"तुम जिस काम में लगी हो वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। चाय क्या

है वह तो बनती ही रहती है और मैं भी उसे बनाने में थोडा बहुत समर्थ हो चला हू।"

मैंने चाय का वर्तन उठाकर उसमें पानी डालते हुए पूछा— 'क्या तुम भी थाडी चाय लोगी?"

"दरअसल इच्छा हो न हो पर जब कोई पूछता है तो चाय पीने की इच्छा पैदा हो ही जाती है।"

"चाय की यही सस्कृति है कि इसे किसी समय भी स्वीकार ही मिलता है। अगर चाय बनाते समय दूसरे से चाय लेने की बात न पूछी जाए तो वह मन म बुरा मानता है कि पूछा भी नही। इसके अलावा चाय अकेले पीने में मजा भी कुछ नही आता।"

इसी समय जोखन चौके में घुसे और पूछने लगे—"आज का खाना बनेगा?"

मै बोला—"यह उर्मिला जी ही तय करेगी कि क्या-क्या बनेगा पर मेरा खयाल है चावल जरूर बना लेना। पडित जी तो दाल-भात के ही शौकीन है।"

"अजी भात तो जरूल ही बनवै।" कहकर जोखन भी उर्मिला के सामने चौके के फर्श पर बैठ गए और सब्जियों में से भिडी अलग करने लगे।

मैंने चाय छानकर छोटा-सा गिलास उर्मिला के पास फर्श पर ही टिका दिया और अपनी चाय लेकर किचन से बाहर निकल गया।

इसी समय सुबह की डाक लेकर डाकिया आ गया। कई पत्र उलटने पलटने के बाद मुझे एकाएक यह लगा कि मैंने गत दो सप्ताह से कागज और कलम को छुआ तक नही है। यह अनेक वर्षों में पहली बार हो रहा था।

पंडित मुकुंद माधव नहाकर लौटे तो 'अतिथि कक्ष' मे पूजा करने बैठ गए और मै नहाने-धोने मे लग गया।

नहा-धोकर जब मैं नाश्ते के लिए डाइनिग टेबिल के सामने पहुंचा तो मै यह देखकर चकित रह गया कि स्टेनलेस स्टील की थालियों में इडली और दोसा परोसे हुए थे।

मैने पंडित जी को पुकारकर कहा—"अरे पंडित जी इधर आकर तो देखिए—क्या चमत्कार हो रहा है।"

वह आधी धोती गले मे डाले हुए आए और खाने की मेज पर दक्षिणी व्यजन देखकर बोले—"अरे लगता है मद्रास और पांडिचेरी तो मुझसे पहले ही यहा आ पहुंचे। यही सब खाना तो दक्षिण मे हर शहर ग्राम मे खाने को मिलता है।"

"तब तो आपको यह सब खाने का अच्छा अभ्यास हो गया होगा।"

"जैसा देस वैसा भेस—यह तो जगत् प्रसिद्ध कहावत है। जब वहा रहना ही था तो क्षुधा-पूर्ति के लिए यही कुछ खा-पीकर रहना पड़ा। पर यह मैने वह भी कह रखा था कि मैं प्याज नही खाता हू। आप जानिए सारा दक्षिण प्याज लाल मिर्च और चावल पर जीवित है। पडितजी ने कानो को छूकर कहा—"हरे राम! कितनी प्याज लाल मिर्च और गरम मसाले का प्रयोग होता है। सारे देश मे इन वस्तुओं की इतनी खपत नही होगी जितना कि अकेले दक्षिण के कुछेक राज्यों में होती होगी।"

इसी समय ट्रे मे दो मग काफी लेकर उर्मिला आई और मेज पर मग टिकाकर लौटने लगी। उसने पडित जी की ओर आखे उठाकर देखा तक नही। पडित जी ने भी अपराधी भाव से अपना मुंह नीचे कर लिया।

मैंने उर्मिला को सबोधित करते हुए कहा—"आप किधर चल दीं! यह काफी और दोसा क्या हम अकेले खाएंगे पीएंगे?"

"आप लोग खाए, मै और जोखन बाद में खा लेगे।"

मैंने दृढ़ता से कहा—"कोई वाद-आद नहीं होता—आप यहीं हमारे साथ बैठकर खाएगी।" और फिर मै उसके पति की ओर मुंह करके बोला—"पडितजी इन खाद्य पदार्थो में प्याज तो है ही नही, वाकी मिर्च-मसाले भी गड़बड़ अनुपात मे नही होंगे—आप खाना आरभ करे।"

मेरे आग्रह पर उर्मिला सिर झुकाकर एक कुर्सी पर बैठ गई और उसने काफी का प्याला अपनी ओर सरका लिया।

मैंने एक थाली पंडित मुकुंद माधव की ओर सरकाकर कहा—"काश! आपने दक्षिण के प्रवास में काफी का स्वाद भी चख लिया होता तो आपको लगता कि दोसा-इडली-काफी में क्या जुगलबदी है।"

यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा कि पंडित मुकुंद माधव ने काफी का दूसरा प्याला अपनी ओर सरका लिया और बोले—"आप हमे निरा-भुक्कू पुराण पंथी और पोंगा पडित समझते है। मैं काफी को कोई निषिद्ध पेय नहीं मानता। दक्षिण के सभी जनेऊधारी और धर्म सिद्ध पुरुष काफी बडे शौक से पीते है। हमें भी इसमें कोई वैसा परहेज नहीं है। अभी पीएं लेते है।"

उन्हें काफी का घूंट भरते देखकर उर्मिला को भी,जैसे बिजली के करेंट का झटका लगा। उसने तुरंत सिर उठाकर उन्हे काफी पीते देखा और फिर अचरज से मेरा मुह देखने लगी। मै बोला—"चलो एक शुभारंभ तो हुआ। अब

इसी खुशी में उर्मिला जी आप एक-दो कप काफी और तैयार कर लें जैसा कि कहावत है कि नया मुसलमान प्याज कुछ ज्यादा ही खाता है और अल्ला-अल्ला की गुहार भी।"

उर्मिला उठकर जाने लगी तो मैं बोला—"तुमने इतने शौक से यह जो इडली दोसा तैयार किया है यह पूरी तरह गरम भले ही न रह गया हो, कुछ तो गरम है ही। पहले इसी का स्वाद ले लिया जाए, बाद में काफी बना लेना।"

उर्मिला मेरे कहने से बैठ गई और उसने दोसा की थाली अपनी ओर खींचकर हाथ से ही परांठा सब्जी की तरह दोसा खाना शुरू कर दिया। पंडित मुकुंद माधव भी सिर झुकाकर खाने लगे।

खाते हुए मैं बराबर उन परिवर्तनों को लक्ष्य करता रहा जो इस बीच पंडित मुकुंद माधव में हुए थे। वह काफी का नाम सुनते ही भड़कते थे और पता नहीं उस पर कितनी लानतें भेजते रहते थे। मगर अब वह काफी बिना मुंह बिगाड़े ही पी रहे थे। उन्होंने आने के बाद उर्मिला की कड़वी बातें चाहे परोक्ष रूप में ही सुनी थीं पर अपनी कोई मारक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की थी। इस समय भी वह एक आज्ञाकारी बच्चे की तरह खाने की मेज पर बैठे सिर झुकाए दोसा खा रहे थे। पहले शायद वह दोसा छूते भी नहीं होंगे।

[illegible] पर कोई भी अपने स्वभाव में कोई बड़ा परिवर्तन [illegible] आत्मावलोकन और आत्मालोचन के बल पर सात्त्विक वृत्ति वाले इस प्रकार के बदलाव में समर्थ होते देर [illegible] पंडित मुकुंद माधव की प्रचंडता और आत्मस्थ रहने वाली वृत्ति दूसरों के दृष्टिकोण को ग्रहण करने की सदाशयता की ओर प्रवृत्त हो रही है।

उर्मिला यदि उनके इस परिवर्तन को सहानुभूति से समझने का प्रयास करे तो निश्चय ही उनके बीच दूर तक फैली खाई भर सकती है। उनके बीच की संवादहीनता और अबोलापन बहुत कुछ दूर हो सकता है। उर्मिला के भीतर जो कड़वाहट पनपी थी [illegible] थी उसके पीछे बरसों के पारस्परिक विरो[illegible] अविच्छिन्न रूप से संबद्ध थे।

उर्मिला अपना खाना खत्म करके कब अपनी थाली उठाकर चली गई इसका मुझे पता भी नहीं चला। मैं बाहर की गतिविधियों से बेखबर होकर उन दोनों के विग्रह को सुलझाने में ही चिंतामग्न था।

उर्मिला ने गरम काफी का प्याला मेरे सामने लाकर रखा तो मुझे होश हुआ

और मैंने देखा कि पंडित जी भी अपना खाना खत्म कर चुके है। वह मेरी थाली क ओर सकेत करके बोले—"दूसरों को गरम खाने की हिदायत तो आपने खूब दी मग आपका खाना तो ज्यो का त्यो पड़ा है। गरम तो इसे किसी दशा में नही कहा ज सकता।"

"अरे!" कहकर मैंने दोसा का एक टुकड़ा तोड़ा और मुंह में रख लिया।

उर्मिला ने मेरी थाली उठाने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा—"इसे आप थाली मे ही छोड़ दीजिए। मैं अभी दूसरा दोसा बनाकर लाती हूं। दोसा बनाने का सामान अभी बाकी बचा पडा है।"

"उसे भी बना लाओ पर इसे तो मैं अब खाऊंगा ही। गरम खाने का जैसा अपना अलग आनंद है उसी प्रकार ठंडा खाने का भी कुछ और मजा है।"

जब उर्मिला चौके की ओर चली गई तो मैंने लगभग फुसफुसाते हुए कहा—"पंडित जी, आपका इस तरह लौटकर आ जाना एक बड़ा वरदान समझता हूं मगर जिस तरह आप सहसा और कुछ कहे-सुने अंतर्धान हो गए थे उससे उर्मिला को बहुत वेदना हुई है। साथ ही मैं भी बराबर चिंतित बना रहा। यदि आप आज न आ गए होते तो मालूम है मैं क्या करने वाला था।"

"आप अखबार में गुमशुदा व्यक्ति की तलाश का विज्ञापन छपवा देते।"

"मैंने खैर वैसा करने के बारे में तो कभी नहीं सोचा था।"

"तो फिर यही करना शेष रह जाता है कि आप मेरी गुमशुदगी की पुलिस मे रिपोर्ट लिखवाते।"

मै बोला—"उससे क्या होने वाला था?"

"पुलिस मुझे तलाश करते हुए पिपरिया पहुंचती।"

"मैं आपके जैसे सम्मानीय और भद्र नागरिक की शान में इस तरह का भोंडा कर्म कैसे कर सकता था!"

"तब आप ऐसा क्या करने जा रहे थे।" पंडित मुकुंद माधव ने अपनी ठुड्डी खुजलाते हुए मेरी ओर देखा।

"मै स्वयं आपकी तलाश में आज मध्य प्रदेश जाने वाला था। मैं अपने एस. डी. ओ. मित्र के पास जाकर आपको पिपरिया में दिखवाता और अगर आप वहां होते तो आपको बेडियों में जकड़कर यहां ले आता।"

"तब तो यह एक तरह से खैरियत ही हुई कि मैं अपने शहर में नहीं गया अन्यथा आप मुझे एक कैदी की भूमिका में उपस्थित कर देते।"

मैंने कहा—"पंडित जी, कैदी तो आप हम सभी हैं। जैसा कि रूसो ने कहा

है—"मैन इज बोर्न फ्री बट ही इज एवरीवेयर इन चेस (मनुष्य स्वाधीन पैदा होता है पर बाद में हर जगह बधनो में जकडा हुआ रहता है।)

वह बोले—"मैं रूसो की इस बात से सहमत नही हू। मनुष्य अपनी आत्म शक्ति के बल पर मुक्ति प्राप्त करता है। आत्मा हमेशा मुक्त है—उसे कौन अपने पाश में बाध सकता है?"

मैं वोला—"मै आत्मा जैसी हवाई चीज़ को लेकर वहस में पड़ना नहीं चाहता और उसका लाभ भी क्या है? आप यदि वैसे ही मुक्तात्मा होते तो यहां से जाने के बाद फिर भूलकर भी इधर न लौटते। यह तो आपके भीतर ही कोई ऐसा मजबूत बधन था जो आपको यहा वापस ले आया। हालांकि जो मै कह रहा हूं, वह बहुत कठोर और अप्रिय है परतु मै उसे कह लेने की बाध्यता अनुभव करता हू। आप जिस तरह उर्मिला जी को निराधार और बिना कुछ भी बताए छोड़कर चले गए थे यदि इसी प्रकार वह भी कभी आपको यो अचानक छोडकर चली गई होती तो पता नहीं आप क्या कर डालते।"

पंडित मुकुंद माधव माथे पर उंगलियां रगडते हुए बोले—"मैं क्या करता? मै तो कुछ भी नही करता।"

उन्हें दिग्भ्रमित देखकर मैं बोला—"आप चाहे और जो कुछ भी करते पर उर्मिला जी की तरफ आंखे उठाकर तो न देखते। बहुत रातो की तो बात जाने ही दें—यदि वह एक रात भी यों एकाएक लापता हो जाती तो वह आपके लिए कुल्टा और अस्पृश्य तो निश्चय ही हो जातीं। आपके ही लिए क्यो, एक पूरा समाज जो मेरी आपकी परिचित के दायरे में आता है उनकी ओर घोर घृणा और उपेक्षा भरी आखो से ही देखता। हमारे आपके न्याय के देवताओं का भी उस दशा मे जो निर्णय होता उसे मै आपको बतलाने की जरूरत नहीं समझता हू।"

मेरी अत्यत कठोर बात सुनकर भी पंडित मुकुद माधव के चेहरे पर कोई अप्रीतिकर भाव नहीं उभरा। वह बहुत गभीर होकर सोचने लगे।

इसी समय उर्मिला एक प्लेट में दो दोसे लेकर आ गई। मैने उसकी लाई हुई प्लेट से एक दोसा उठा लिया और प्लेट पंडितजी की ओर बढा दी।

उन्होने कहा—"मेरा पूरा खाना हो चुका है—कृपया इसे भी आप ही लें।" और यह कहकर वह हाथ धोने चले गए।

मेरा खयाल था कि वह वाश बेसिन पर हाथ धोने के बाद फिर से हम लोगो के पास लौटकर आएगे पर वह नहीं लौटे। सभवत· वह बाहर बराडे में जाकर ही बैठ गए।

उर्मिला को कुछ भी पता नही था कि मैं उसकी अनुपस्थिति में उसके पति से क्या बात कह चुका हू। हो सकता है कि वह मेरी कही हुई बातों पर विस्तार से सोचने के लिए ही बाहर चले गए थे।

मैंने बाकी बचे हुए दोसे की ओर संकेत करके उर्मिला से कहा—"अब यह तो तुम ही खा सकती हो या फिर जोखन महाराज खाएगे।"

"मैंने तो इतने मन से आज इडली दोसा बनाया था। पता नहीं कैसा बना होगा। आपने तो कुछ भी खाया ही नहीं।"

उर्मिला के चेहरे पर उदासी देखकर मैंने कहा—"दोसे और इडली लाजवाब बनी हैं। इनमे कोई कमी नहीं है लेकिन इससे अधिक खा सकने की मेरी स्थिति नहीं है। हां, अगर दोपहर का खाना गोल करने की इजाजत दो तो मैं इसे भी निपटा सकता हू।"

"यह मैं कैसे कह सकती हू। ऐसा करुगी तो जोखन महाराज मेरी जान ले लेगे।"

"जोखन की बात बाद मे होगी पहले मुझे तुमसे ही एक जरूरी बात कहनी है। तुम सब काम-धाम छोड़कर 'प्राण छोड़ो आज गृहकाज' वाली शैली पर मेरे सामने आकर बैठो।"

"क्या बहुत ही खास बात है? आपके इस तरह से कहने से तो मुझे अपनी सांस ही रुकती हुई सी लग रही है।"

"सांस रोककर प्राणायाम करने की जरूरत नहीं है। बस शात चित्त से सुनने वाली बात है।"

सिर पर धोती का पल्ला खींचकर उर्मिला मेरे सामने कुर्सी पर आकर बैठ गई और मेरा मुह देखने लगी।

उसकी उत्सुकता भरी आंखों को लक्ष्य करके मैंने कहा—"यह बात तुमसे ही मतलब रखती है, इसलिए मैं कह रहा हू और इसे बहुत स्थिर तथा शात मन से सुनो।"

उर्मिला ने अपनी गर्दन को हल्का-सा खम देकर मुझे कहने की स्वीकृति दे दी। उसका संकेत समझकर मैंने कहना प्रारंभ कर दिया।

"बात यह है उर्मिला जी कि यह एक सुखद सयोग है कि पंडित जी यहां स्वयं ही वापस लौट आए। पिछले दस-बारह दिनों में उनको लेकर जो यह चिंता बनी हुई थी कि वह पता नहीं कहा होगे—अब स्वतः ही समाप्त हो गई। तुम जरा सोचो, यदि वह एक ही दिन और न आए होते तो मैं उनकी तलाश

मे मध्य प्रदेश चला जाता और वहा न जाने कहा-कहा टक्कर मारता-फिरता। वह तो घर गए ही नहीं थे इसलिए मुझे व्यर्थ प्रयास होकर अतत लौटना ही पड़ता। बाद मे भी पता नही क्या-क्या विषम स्थितिया पैदा होती कहा नहीं जा सकता था।''

उर्मिला गहरे मनोयोग से मेरी बाते सुन रही थी। उसने मेरे बोलने मे कोई बाधा नहीं दी तो मैं निर्बाध बोलता चला गया—''अब तुम्हे ही यह सोचना है कि आगे की योजना क्या रहेगी। जाहिर है कि पंडित जी एक-दो दिन से ज्यादा तो अब यहां ठहरने वाले नहीं है। वैसे भी शिक्षा संस्थान दस-बारह दिन ही और बद है। तुम्हे अपने भविष्य तथा अस्तित्व के संदर्भ मे निर्णय लेना है कि तुम्हारा अगला कदम क्या होगा। रुष्ट बने रहकर अथवा कटुता पूर्ण सवाद जारी रखकर तो तुम समस्या का कोई हल नहीं निकाल सकती। जो भी सर्वाधिक उचित मार्ग तुम्हारी समझ मे आता हो उसी पर चलने के बारे में तय करने की बात है।''

उर्मिला मेरे चुप हो जाने के बाद भी गहराई से कुछ सोचती रही। उसे आशा थी कि मै आगे भी शायद कुछ कहूंगा। जब मैने आगे कुछ नहीं कहा तो उसने मुझसे पूछा—''आप मुझसे क्या करने को कहते है?''

''मैने इस संबध मे कुछ भी नही सोचा है। यह सब तुमको ही तय करना होगा। तुम मुझसे किसी विषय मे राय लोगी तो मैं शायद कुछ कह सकूं।''

मेरी मुद्रा देखकर संभवतः उर्मिला सहम गई। उसका चेहरा उतर गया ओर उसने मेरी ओर इस तरह देखा जैसे मेरे इस स्वरूप का उससे पहली बार परिचय हो रहा है। वह जब से इस घर मे आई थी उसने मुझे बिल्कुल दूसरे रूप में—एक उदार व्यक्ति और सहज ही घुलमिल जाने वाला स्नेही मान लिया था। वह घंटों-घंटों जिस तरह मुझसे हिल मिलकर बातें करती रही थी—संभवतः पहली बार उस व्यक्ति को उसने मेरे भीतर से अनुपस्थित पाया।

मैंने भरसक नम्र होते हुए उसे समझाया—''देखो उर्मिला! हम जो कामना करते है वह हमे बहुत बार नहीं मिलता पर जो मिलता है उसे भी तो हमें अपने अनुरूप बनाने का प्रयास करना चाहिए या नहीं?''

उसने मेरी तरफ इस आशा से देखा जैसे उसकी मुश्किलो का कोई सरल निदान बतलाने जा रहा हूं। वह बोली—''प्रयास क्यों नहीं किया जाना चाहिए। वह तो एक तरह से अनिवार्य है।''

''तो फिर तुम्हीं बतलाओ क्या तुम कभी यह सोच सकती थी कि पंडितजी

दो सप्ताह मे ही इतने बदल जाएंगे कि वह तुम्हारी किसी भी अप्रसन्नता पर अपनी कोई विध्वसक प्रतिक्रिया व्यक्त नही करेगे। यह सिर्फ एक परिवर्तन ही नहीं है कि उन्होंने तुम्हारी मेरी खुशी के लिए तुम्हारे द्वारा बनाकर लाई गई काफी खुशी से पी ली और एक बार भी मुंह नही बिगाडा। इसे तुम यों समझो कि वह स्वयं को तुम्हारे अनुरूप बनाने के रास्ते पर चल पडे हैं। तुम्हें उनसे यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि केवल वही समझौते की जगह पर पाव बढ़ाते चले और तुम उनकी दिशा में एक कदम भी न बढो। पारस्परिकता का यही तकाजा है कि तुम उनके मनोभावों को समझने के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित करो।"

उर्मिला को मेरा सुझाव कुछ तथ्यपूर्ण लगा और वह बोली—"अगर आदमी का अतर्मन बदल जाता है तो फिर बाहर का व्यवहार भी बदलता ही है। मैं नही जानती कि वह कितनी देर तक इस बदली हुई मन-स्थिति को यथास्थिति मे रख पाएंगे। आप कहते हैं तो मैं आपके कहे अनुसार ही स्वय को बनाने का प्रयास करूंगी।"

मैंने गंभीरता से उसकी बात सुनी और उसे सहज बनाने के उद्देश्य से बोला—"मेरे कहने से अगर तुम स्वय को बदलोगी तो वह वास्तविक बदलना नही होगा। हम जिनको प्यार करते हैं, उनकी खुशी के लिए ही अपने को उनके अनुरूप ढालने में खुशी अनुभव करते हैं। प्रेम और कर्त्तव्य का यही अतर है। कर्त्तव्य 'यह तो करना ही चाहिए' पर बल देता है तो प्रेम हमारे भीतर की उमंग से उमडता है। तब हमे किसी के लिए देने में भी आनद और चरम उल्लास की अनुभूति होती है।"

वह न जाने क्या सोचकर उदासी से बोली—"काश! ऐसा हो सकना सभव हुआ होता!"

"मुझे नहीं लगता कि तुम्हारे हाथ से सब कुछ निकल चुका है और अब उसे पाना असभव हो चला है।"

"प्रेम की दूब अत्यंत कोमल होती है। उपेक्षा के आतप से एक बार झुलस जाने के बाद वह पुनः हरियाली प्राप्त नहीं कर पाती। मेरे मन में प्रेम नाम की कोई तरग अब नही उठती। वह नदी अब पूरी तरह सूख चुकी है—वहा रेत की शक्ल मे भरी उमंगें ही उडती रहती हैं।"

"मै इस सबंध मे कुछ नही जानता इसलिए अधिकाधिक रूप से कुछ कह भी नहीं सकता पर मानव स्वभाव को जानने-समझने के प्रयास में मैने यही देखा है कि हमारे भीतर का कोई संवेग कभी नही मरता, जिसे हम मरा हुआ समझ बैठते

है वह भी पता नही अपने लिए किधर से प्राणवायु खींचकर पुन पुन- जीवित हो उठता है। मैं इसे इसी जन्म मे होने वाले पुनर्जन्मो मे गिनता हू। जिस प्रेम की तुम मर जाने की बात करती हो, वह भी कभी नहीं मरता पश्चिम वाले पहली दृष्टि के प्रेम को बडा महत्त्व देते हैं और उसी को लेकर बडी-बडी बाते की जाती हैं पर वह एक स्त्री और पुरुष के बीच वहा जीवन पर्यत चलता है? आज तो वहा इतनी धत्तेरे की है कि 'लव एट फर्स्ट साइट' का दम भरने वाले भी तीन-तीन बार तलाक ले-देकर फिर से शादियां रचाने को गर्दने नचाते घूमते है। फिर क्या होता है इस 'लव एट फर्स्ट साइट' अथवा 'प्रथम दृष्टि में प्रेम का?''

उर्मिला बोली—''हमारे पूरब मे भी क्या इसको लेकर बडी बाते नही की जाती?''

''मै बातो मे नहीं जाता। मै तो तुमसे ही पूछना हूं कि क्या यह स्थिति अपरिहार्य है? इस देश में तो शादी के बाद ही प्रेम की परपरा है। स्त्री-पुरुष एक बार परिणय-सूत्र मे बध जाने के बाद ताजिदगी एक दूसरे के साथ रहकर जीवन-यापन करते रहे है। झगड़े-टंटे की बात तो दरगुजर नहीं की जा सकती पर उसे लेकर परिवार और वैवाहिक जीवन में विखंडन होता हो, यह अपवाद स्वरूप ही देखने को मिलता है। दरअसल हम जिसे प्रथम दृष्टि का प्रेम कहते है वह और कुछ नही महज 'इनफेचुएशन' (मोहजंनित उत्तेजना') है। यदि वह सच्चा प्रेम हो तो उसका ज्वार कुछ महीनों अथवा वर्षो के दैहिक भोग के बाद क्यों भाटे में बदल जाएगा?''

''मै वह सब तो नही जानती पर यह बराबर महसूस करती हूं कि मै एक सास लेती हुई शव मात्र रह गई हू। मेरे संवेग आवेग चुक गए हैं और वह फिर से पैदा हो पाएगे इसमे मुझे पूर्ण संदेह है।''

''जितना मै तुम्हें जान पाया हूं उससे तो मुझे तुम्हारी वह स्थिति नहीं लगती। तुम्हारे भीतर ललक-चहक, उत्सुकता-उमग सभी कुछ तो मैने पिछले दिनों कितने ही अवसरों पर देखी है। सहज उल्लास से चमकती तुम्हारी आंखों की दीप्ति भी अभी मेरी स्मृति मे पूर्ण सुरक्षित है फिर तुम अपने को शव कैसे कहती हो?''

''इसलिए कि मेरी जीने की इच्छा ही समाप्त हो गई है।''

''तो फिर मै तुम्हे अपने पति के साथ जाने के लिए कभी नहीं कहूंगा। महज लोकाचार और औपचारिक स्तर पर दाम्पत्य का निर्वाह तो अनाचार की श्रेणी में ही आता है। मन पर बोझ रखकर किसी की पत्नी बनी रहो, मै यह कभी नहीं कहूगा। फिर तो बस यही रास्ता बचता है कि अपने लिए कोई नई तलाश, किसी नए रास्ते

के बारे में सोचो। पर साथ ही यह भी ध्यान में रखो कि किसी के स्वभावगत गुण दोष को लेकर आगे कोई निर्णय मत लेना। उसे भी मैं प्रेम की श्रेणी में नहीं रखता क्योंकि हम सहसा जिसके प्रति आकर्षित होते हैं—प्रथम दृष्टि में उसके भीतर के समूचेपन से तदाकार नहीं होते। हर व्यक्ति अंश-अंश करके टुकड़ों में ही हमारे सामने व्यक्त होता है और फिर वह कुल मिलाकर जो कुछ होता है उसमें सारा कुछ स्पृहणीय तथा संगत भी नहीं होता।''

उर्मिला मेरी लंबी मीमांसा बड़े धैर्य से सुन रही थी। मैं बोला—''अब यह सब बहुत हो चुका। मेरी बातों से तुम्हारा सिर दुखने लगा होगा। यही अच्छा होगा कि तुम जाकर अब आराम करो। हम लोग फिर से बैठकर इत्मीनान से हर पहलू पर विचार कर सकते हैं। देर आयद दुरुस्त आयद की भी गुंजाइश बनी रहनी चाहिए।''

मैं उर्मिला को वहीं छोड़कर बाहर निकल गया। पंडित मुकुंद माधव लान में आरामकुर्सी पर लंबे होकर लेटे थे और किसी बृहदाकार पोथे का अवलोकन कर रहे थे। निश्चय ही वह कोई दर्शनशास्त्र का ग्रंथ था।

मैंने उन्हें बाधा देना ठीक नहीं समझा और अपने कमरे में जाकर कई दिनों से इकट्ठे हो गए खतों के उत्तर लिखने के बारे में सोचने लगा।

23

उर्मिला पर मेरे समझाने बुझाने का यह प्रभाव पड़ा कि उसने स्वयं को यथाशक्ति सहज बनाए रखने का प्रयास किया। शाम का खाना उसने जोखन को नही बनाने दिया और स्वयं ही सारी सब्जियां पुलाव और खीर बनाई। उसमें बादाम, किसमिस वगैरह भी डाले। निश्चय ही यह व्यंजन उसके पति पंडित मुकुंद माधव की रुचि के थे। उसने बहुत आग्रह के बावजूद हमारे साथ खाना नहीं खाया-बल्कि हम दोनों को गरम खाना परोसा।

उर्मिला के परिवर्तन का प्रभाव उसके पति पर भी हुआ और वह सरल भाव से बातें करते हुए मुस्कराते रहे। एक बार भी ऐसा प्रतीत नहीं हुआ कि उर्मिला और उनके बीच में कोई छोटा-सा भी गतिरोध है। भले ही वह एक-दूसरे से मुखर होकर संवाद नही कर रहे थे पर उनके बीच सहज सौमनस्य का अभाव नहीं दीख पड़ता था।

रात का खाना खत्म करके मैं और पंडित मुकुंद माधव लॉन पर जाकर टहलने लगे। थोड़ी ही देर मे अपना खाना पीना करके उर्मिला भी हम लोगों के साथ आकर टहलने लगी।

इधर-उधर की बातें करते हुए हम लोग काफी देर तक लॉन की ठंडी घास पर घूमते रहे और पंडित जी अपनी दक्षिण यात्रा के विविध अनुभव सुनाते रहे।

जब आसमान में चांद काफी ऊपर आ गया तो मैं बोला—"आइए अब थोड़ी देर बैठकर गप-शप करते हैं। वैसे भी अभी नींद तो किसी को नहीं आ रही है।" शाम को कुछ बादल हो जाने से हवा मे भी थोड़ी-सी ठंड की रमक आ गई थी। इसलिए लॉन में कुर्सियां डालकर बैठना खुशगवार लग रहा था।

पंडित जी और मैं लॉन मे कुर्सियां डालकर बैठ गए तो वह बोली—"आज क्या

आप काफी पीने के मूड में नही है?"

उन्होंने उर्मिला की ओर देखकर कहा—"यह इतनी अच्छी काफी बनाती है कि अगर हम लोग काफी पीते हुए वार्तालाप करें तो चादनी ओर मादक बयार का आनद एक साथ कई गुना बढ जाए।"

उर्मिला के मुह पर मुस्कान की दीप्ति खिल उठी। वह उठते हुए बोली—"हा यह बात एकदम सटीक कही। मैं अभी काफी बनाकर लाती हू।"

मै बोला—"वैसे तो हमारे जोखन पडित भी काफी ठीक-ठीक ही बना लेते हे ओर सब चीजो का अनुपात भी गडबड नही होने देते पर उर्मिला जी की तो बात ही कुछ अलग है। उर्मिला जी ही यह कष्ट करे तो बढिया काफी के साथ बतरस का आनद वास्तव मे कुछ अलग तरह का ही होगा।"

उर्मिला उठकर काफी बनाने चली गई तो मै पडित मुकुंद माधव से बोला—"पडित जी यह काफी वाला सुझाव आपने खूब दिया। दरअसल यही छोटी-छोटी बाते है जो हमारे भीतर आनद की लहरे पैदा करती रहती है। आप यदि अपने व्यवहार में किंचित मृदु हो उठे तो उर्मिला के भीतर जो अवसाद घर कर गया हे वह चुटकी बजाते समाप्त हो जाए।"

पडित जी कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद बोले—"यह आप सही कहते है महाराज। मैं पिछले कई दिनो से इसी बात पर लगातार चिंतन कर रहा हूं। वास्तव मे कुछ छोटी और मामूली बाते किस तरह दाम्पत्य को सुखी अथवा क्लेशकारी बना देती है इस पर हम विचार करना ही छोड देते है और तभी सकट उपस्थित हो उठता हे। अपने निकटस्थ व्यक्ति के प्रति अनजाने मे असावधान हो जाना उसकी अवमानना का लक्षण है—यह बात दिमाग से निकल जाती है। मैं भी इस त्रुटि को स्वीकार करता हू और मानता हूं कि दाम्पत्य जीवन मे परस्पर व्यंग्य बाण चलाने से बडा अपराध कुछ भी नही है। हम सब मनुष्य कूप के समान है। उसमे से वही प्रतिध्वनि निकलती है जो ध्वनि उसमे ध्वनित होती है।

पडित मुकुद माधव के स्वभाव मे इस चमत्कार पूर्ण परिवर्तन को देखकर मै चकित रह गया और सोचने लगा यदि सगतिपूर्ण सोच मनुष्य की बुद्धि का साथ देने लगे तो ससार का कितना भारी कल्याण हो जाए? थोड़े से कटु शब्द हमारे जीवन मे कितना कलह कोलाहल मचाए रहते है। वह हमारे भीतर के रस निर्झर को सुखाकर रख देते है। व्यवहार की कटुता का आतप हमें जितना दग्ध करता है उतना किसी भी अन्य आग से सभव नही है।

उर्मिला ट्रे मे काफी के तीन मग और कटोरी मे चीनी लेकर आ गई। पडित

जी उठे और लपककर वरांडे की ओर जाते हुए बोले—"ठहरो। मैं स्टूल उठाकर लाता हू।"

वह आधे मिनट से भी कम समय मे हल्की-सी गोल-मेज उठा लाए और लॉन मे रखते हुए बोले—"लो इस पर रख दो।"

उर्मिला ने ट्रे मेज पर टिका दी और बोली—"वैसे तो मैंने शुगर भी काफी के साथ फेट दी थी पर काफी मे मीठा कम लगे तो मिला लेना।"

निश्चय ही यह बात उसने अपने पति से ही कही थी पर उसकी ध्वनि में निर्वैयक्तिकता का पुट था।

काफी की एक-दो घूट लेने के बाद ही पंडित मुकुद माधव बोले—"वास्तव मे यह एक अत्यत सुदंर पेय है। मै तो अब तक इसके आस्वाद से वचित ही रहा। वास्तव में इसे अपनाने का श्रेय मैं दक्षिण यात्रा को ही देता हू। वहा तो जन सामान्य इसे भोजन की तरह ग्रहण करते है।"

मैने उन्हे बतलाया—"काफी मे ठोस भोजन के गुणों की कमी नहीं है। इसी अर्थ में यह चाय और दूसरे साधारण पेयो से एकदम अलग है। इसके अतिरिक्त प्रवास में पानी बदल जाने से पेट पर जो घातक प्रभाव होने लगते हैं उनका भी काफी पीने से बहुत कुछ शमन हो जाता है।"

"यह आप ठीक ही कहते है।" बोलकर पंडित जी पूरे आनंद से काफी सुडकने लगे। उन्होंने कटोरी की चीनी को छुआ तक नहीं। मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि काफी में पडित जी की रुचि के अनुरूप मिठास नहीं थी पर वह इस संबध मे कुछ नहीं बोले।

मैंने पहले उर्मिला की ओर देखा, वह विचारमग्न लग रही थी पर उसके मुख पर किसी प्रकार का तनाव नहीं था। इसके बाद मैंने पडित जी की ओर देखा वह भी मुझे सहज ही लगे।

अनुकूल अवसर देखकर मैं बोला—"पडित जी मैं आपको अपने एक मित्र के सबध मे बतलाना चाहता हूं।"

वह काफी का मग मेज पर टिकाकर बोले—"अवश्य बतलाइए। अभी तक तो हमने आपके किसी मित्र को आपके पास आते ही नहीं देखा। यह बड़ी विचित्र बात है कि आपके जैसे विश्रुत बौद्धिक व्यक्ति के पास आकर लोग इस तरह तग ही नहीं करते जिस प्रकार हम कर रहे हैं।"

मै हसकर बोला—"आप क्या तग कर रहे हैं—आप तो यहां रह ही नहीं।"

"फिर भी रह तो रहे ही है। कहकर उन्होने उर्मिला की ओर आखे उठाकर

देखा जिसका आशय यही था कि वह चाहे बराबर न रहे हों पर उर्मिला तो इस घर में इतने दिन से बराबर रह ही रही है।

मैंने अपनी बात आगे बढ़ाई—"हां तो मैं अपने मित्र और उनकी श्रीमती जी के बारे में एक सच्ची घटना आपको सुनाने जा रहा हूं। मेरे वह मित्र डॉक्टर हैं और उन्हें संगीत से जबरदस्त चिढ़ है।"

पंडित मुकुंद माधव ने हैरत से कहा—"अयं? डॉक्टर को संगीत से चिढ़? यह तो आपने एक अनोखी बात बतलाई। अरे भाई, उनका तो पेशा ही ऐसा है जिसमें रोग, शोक, मरण, हाय-हत्या निरंतर लगी ही रहती है। इन सबसे थक ऊबकर तो आदमी संगीत और कला के प्रति ही आकृष्ट होता है। पर आपके डॉक्टर मित्र एक अनोखे जीव हैं।"

"हां उन्हें संगति से ही चिढ़ है। वैसे पुस्तकें खूब पढ़ते हैं। बहुत सभ्य, सुसंस्कृत और भद्र सज्जन हैं। अरसिक तो आप उन्हें किसी भी अर्थ में कह ही नहीं सकते।"

अपनी बात रोककर मैंने काफी की एक घूंट भरी और अपनी बात आगे बढ़ाई—"संयोग से डॉक्टर महोदय की जिस युवती से शादी हुई वह डॉक्टरी पेशे में नहीं है। वह एक कॉलिज में रसायन शास्त्र की प्रोफेसर हैं। पर उनकी नृत्य और संगीत में गहरी रुचि है। विवाह के समय डॉक्टर मित्र को इस संबंध में कोई जानकारी नहीं थी।

"शादी के कुछ ही दिनों बाद उनकी श्रीमती जी को पता चल गया कि उनके पति महाशय संगीत से बुरी तरह बिदकते हैं। उन्होंने पति की रुचि का खयाल रखते हुए, तानपुरे, हारमोनियम और घुंघरुओं को तिलांजलि दे दी। उनके वाद्य यंत्र एक कोने में पड़े धूल से अटते चले गए। जो लोग डॉक्टर की पत्नी की संगीत के प्रति गहरी संलग्नता से परिचित थे उन्होंने उन्हें समारोहों के अवसर पर आमंत्रण-निमंत्रण भेजने बंद नहीं किए। पति की अरुचि का खयाल करके वह कहीं भी नहीं आती-जाती थीं। पति जब कभी इधर-उधर होते थे तो लंबे अभ्यासवश बेचारी थोड़ा बहुत गुनगुना भर लेती थी पर अपने लगाव को कभी भी उनकी उपस्थिति में प्रदर्शित नहीं करती थी।

"होते-होते विवाह को पूरा साल निकल गया। उन दोनों ने अपनी शादी की वर्षगांठ पर अपने परिचितों, मित्रों को बड़े आग्रह से आमन्त्रित किया। खूब अच्छा खाना-पीना हुआ पर संगीत की महफिल नहीं जमी। डॉक्टर साहब की श्रीमती जी की जो अंतरंग सहेलियां और सहयोगी प्रोफेसर इस अवसर पर उपस्थित थीं उन्होंने

अर्चना जी (जो उनका नाम था) को गाने को कहा। उन्होंने अपनी सखियों की बात टाल दी और ऐसा भाव जतलाया मानो गाने बजाने से उनका कभी कोई सबंध ही न रहा हो।

"अब उन्होंने डॉक्टर साहब से आग्रह किया कि वही अर्चना जी से गाने का अनुरोध करें।

"अर्चना जी के पति डॉक्टर वर्मा बोले—"भई ये सब जब इतना इसरार कर रही है तो कुछ गा दो। नहीं गाओगी तो यह सब अपने मन में यही विचार लेकर जाएगी कि मेरे जैसे अरसिक के संसर्ग में रहकर तुम गाना-बजाना भूल गई हो।

"अर्चना ने अपने पति की ओर अचंभे से देखा पर फिर उसने यही मान लिया कि वह सिर्फ ऊपरी मन से आग्रह कर रहे हैं। उसने टालते हुए कहा—'कैसे गाया जाएगा—तबले पर संगत करने के लिए तो कोई है ही नहीं?'

"अब तबले की परख ऐसी थी कि उस शर्त को कौन पूरी करे? वहां एक दो लोग ऐसे होंगे भी जो तबले पर थप-थप करना बराए नाम जानते भी हों मगर बाकायदा तबला बजाने वाला कोई नहीं था।

"अब एक दो मेहमानों ने कहा—'चलिए बिना बाजे-वाजे के ही एकाध गाना गा दीजिए। यही बात अर्चना के डॉक्टर पति ने भी कही। मगर जिस अर्चना ने पति की नापसंदगी की वजह से तबले, तानपूरे और हारमोनियम को एक तरह से बनवास दे दिया था वह भला किसी के भी आग्रह से क्यों गाती?

"जब अर्चना ने किसी की बात पर गाने की हामी ही नहीं भरी तो डॉक्टर वर्मा स्वयं उठकर गए और हारमोनियम की गर्द झाड़कर उसे महफिल के बीच उठा लाए। इस पर सभी मेहमानों ने प्रसन्नता से तालियां बजाईं।

"इस पर अर्चना की सहेलियां बोलीं—'लो अब तो खुद तुम्हारे श्रीमान जी ही गाने की फरमाइश कर रहे हैं—इन्हें कैसे टालोगी?'

"अर्चना तो न गाने की जैसे कसम ही खा बैठी थी—बोली बिना तबले की संगत के मैं गाने की आदी नहीं हूं।'

"मेहमानों में से कोई बोला—'बस तो अब गाना हो चुका। न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।'

"इस पर डॉक्टर वर्मा फिर उठकर गए और तबले की जोड़ी उठा लाए। तबले सामने रखकर बोले—'चलो तुम हारमोनियम पर पीं-पीं तो शुरू करो—मैं तबले पर उल्टी सीधी थप-थप कर देखता हूं।'

"इस बात पर सारी महफिल में इतनी हंसी हुई कि मैं आपको क्या बतलाऊं।

डाक्टर वमा को हैरत से देखने वालो की वहा कमी नही थी क्योकि ज्यादा मेहमान जानते थे वर्मा जी का गाने बजाने से दूर का रिश्ता भी नहीं है।

"अर्चना तो कभी सपने मे भी नही सोच सकती थी कि वर्मा जी तबला छूते होगे। जब वर्मा जी ने तबलो को सामने रखकर उनकी डोरिया ठीक-ठाक कसी और हथेलियों से तबलो पर थाप दी तो उनके सधे हाथो का कमाल किसी से छिपा नही रहा। अर्चना तो जैसे अंचभे के समुद्र में डूबने-उतराने लगी। वह तो यही जानती थी कि उसके पति ने तबला-हारमोनियम आदि वाद्यों को कभी छुआ भी नहीं होगा।

"अब बेचारी अर्चना के सामने कोई ऐसा बहाना नही रह गया था कि वह गाने से इनकार कर दे। उसने हारमोनियम पर स्वर निकालने शुरू किए तो डॉक्टर साहब ने भी तबलो पर हल्की सी ठुनक शुरू कर दी। ज्योही स्वर ताल का अनुपात सयमित हुआ, अर्चना ने संयत स्वर में कोई राग शुरू कर दिया। डॉक्टर वर्मा ने बडे सधे हाथो से तबला बजाना शुरू कर दिया। कुरते की बांहों को कुहनियों तक चढाए जब डॉक्टर वर्मा एकात तल्लीनता से तबला बजा रहे थे तो हम लोग मुंह बाए उनका कमाल देख रहे थे। एक बार को तो सारी महफिल चौक गई। बेचारी अर्चना की क्या हालत हुई होगी इसका तो बस अनुमान ही लगाया जा सकता है। अर्चना ने सरल संगीत के साथ-साथ पूर्वा धनाश्री वगैरह कई राग भी गाए पर साहब डॉक्टर साहब ने भी वह समा बांधा कि लगता था सात पुश्तों के तबलची थे।

"जब देर गए रात को महफिल बरखास्त हुई तो मैंने डॉक्टर को धर लिया और पूछा—'भई वर्मा, यह तुमने किस भूत-प्रेत को सिद्ध किया है जो आज तुम्हारे सिर चढकर सारी सभा को मंत्रकीलित कर गया। मुझे अपनी हथेलियां तो दिखाओ। मै सोच भी नही सकता कि यह हाथ इतने बाकमाल हो सकते है।'

"उस समय अर्चना तो जैसे सकते के आलम में ही पहुंच गई थी। बेचारी कुछ भी न समझ पा रही थी, न बोल पाने की हालत में थी।

"वह हम दोनों को वहीं छोडकर चली गई और दो बीडा-पान बनाकर लाई तो उसे जैसे कुछ होश आया—उसने गद्‌गद कठ से पूछा—'आपने यह तबला वादन कहा सीखा। आपके डर से तो मैंने गाना ही छोड़ दिया था।'

"डॉक्टर वर्मा ने हंसते हुए कहा—'जानेमन! वाकई मेरी सगीत में कोई दिलचस्पी नहीं थी मगर जब मुझे पता चला कि तुम सगीत से जबरदस्त लगाव रखती हो और बाकायदा गाती हो तो मैंने चोरी छुपे भगवान दास तबला वादक के यहा जाना शुरू कर दिया और मैं क्लीनिक बंद हो जाने के बाद एक घंटा रेगुलरली वहा ना-धी-धी-ना सीखने लगा। पिछले छह महीने से मैं वहां जा रहा था और मैंने

उससे यह वायदा ले लिया था कि वह इस बात का जिक्र किसी से भी नही करेगा। मे यह बात जानता था कि हमारी शादी की एनवरसरी पर तुमसे गाने का इसरार किया जाएगा और तुम मेरा खयाल करके गाने से इनकार करोगी। उस वक्त मैं तुम्हें तबले पर सगत देकर बतला दूंगा कि मै तुम्हें किस कदर चाहता हू।'

"अंत में डॉक्टर वर्मा ने अर्चना के कंधे पर हाथ रखते हुए गहरी ममता से कहा—'अब आगे से तुम देखोगी कि तुम्हारा गाना बाकायदा जारी रहेगा और यह तावेदार आपके साथ तबले पर संगत के लिए हमेशा हाजिर रहेगा।'

मै अपनी बात समाप्त करके चुप हो गया तो पंडित मुकुंद माधव जैसे सोते से जागे और उन्होने पूछा—"प्रभाकर जी। क्या यह सच्ची घटना है या आपने अपनी कोई कहानी सुना दी है?"

मैने हसते हुए कहा—"इससे तो कोई खास अतर पडने वाला नहीं है। घटना की सत्यता मुख्य मुद्दा नही है। उसके परिणाम की सार्थकता ही विचारणीय है, आप इसके ऐतिहासिक यथार्थ पर न जाएं बस यही देखे कि दाम्पत्य सबंधो मे पारस्परिक समझ का क्या महत्त्व है। वही तो उन्हे तदाकार करती है।"

उर्मिला वर्मा दंपती का आख्यान सुनकर अभिभूत हो उठी थी। उसका मुख चादनी में खिला-खिला लग रहा था। वह सहज रूप से कहने लगी—"असल में दाम्पत्य जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि जो थोडे से महत्त्वपूर्ण क्षण हसी-खुशी से बिताने के लिए मिलते है उन्हे अनावश्यक कलह मे खो दिया जाता है। निश्चय ही जागतिक आपाधापी भी उनको विनष्ट करने पर कमर कसे रहती है तथापि उन्हें किसी कदर पकडा जा सकता है। यह प्रायः भुला ही दिया जाता है कि सग साथ रहने के लिए जो बहुत गिने चुने पल मिले हैं, उन्हे पंख फैलाकर उड़ जाने से पहले अपनी गिरफ्त मे ले लिया जाए। धीरे-धीरे जड़ता इस सीमा तक जा पहुचती है कि यह सत्य किसी के बार-बार याद दिलाने पर भी याद नहीं रहता।"

मै बोला—"अंग्रेजी में बेटर लेट दैन नेवर अर्थात् देर आयद दुरुस्त आयद इसी को कहा जाता है।"

इस समय पंडित मुकुंद माधव भी काफी बदले-बदले और भावाभिभूत लग रहे थे। वह बोले—"जीवन का यही तो सबसे बडा दुखात है कि हम वसत ऋतु मे भी जबरन पतझड को आमंत्रित करते हैं। यह नही जानते कि फिर-फिर बार प्रकृति मे ही बसत की आवृत्ति होती है। मनुष्य के जीवन में उसकी पुनरावृत्ति संभव नहीं है। यहां एक मौसम एक बार को ही मिला है उसे भरपूर जी कर काट लो या रो-धो कर।"

"आप ठीक कहते है पंडित जी वसंत की स्मृति में जीने से तो वसंत में ही जीना अच्छा है।"

पंडित मुकुंद माधव एक दीर्घ सांस खींचकर बोले—"पर वह भी हो कहां पाता है? हम अभागे मनुष्य तो हर क्षण आंदोलित होते रहते है और स्वयं को कहीं भी रेखांकित नहीं कर पाते। पूरी जिंदगी मुट्ठी से सूखी रेत-सी झर जाती है और हम जी लेने से वंचित रह जाते है।"

मल्लिका ने एक-दो बार उबासियां लीं तो मुझे लगा दार्शनिक चिंतन का सिलसिला लंबा खिंचने से उसे नींद आने लगी है।

पंडित मुकुंद माधव बोले—"भाई जी हमें गृह नगर छोड़े हुए बहुत दिन हो गए। मैं सोचता हूं कि कल हमें निकल जाना चाहिए। दिन की किसी गाड़ी से निकलने में आरक्षण के झंझट में भी नहीं पड़ना पड़ेगा।"

मैंने उनके 'हम' शब्द पर गौर किया, इसका आशय स्पष्ट ही था कि वह उर्मिला से समझौता करने की मानसिकता बना चुके थे। मैंने उर्मिला का चेहरा देखा, वहां भी कोई विरोधी भाव नजर नहीं आया।

दोनों पति-पत्नी एक साथ ही उठे और सोने के कमरे की ओर बढ़ गए। यह पहली बार हो रहा था कि मेरे यहां आने के बाद, वह दोनों एक साथ एक ही शयनकक्ष में सोने के लिए गए हों।

उस क्षण एक मादक गंध मुझे अपने आस-पास फैलती लगी। एक दूसरे से बहुत दूर-दूर छिटकी भावधारा के दो किनारों पर जैसे सहसा एक पुल निर्मित हो उठा।

अपने आस-पास छिटकी चांदनी की स्निग्धता में जैसे एक अनिवार्य संगीत घुल गया। बाहर-भीतर से मैंने स्वयं को फूल जैसा हल्का अनुभव किया और अपने सोने के कमरे में चला गया।

❑❑❑

जन्म : 10 अगस्त 1933 मुजफ्फर नगर
शिक्षा : हिंदी साहित्य तथा राजनीति शास्त्र में एम.ए.

प्रकाशन : गत चालीस वर्षो में लगभग ढाई सौ कहानियां हिंदी की सभी शीर्ष पत्रिकाओं में प्रकाशित।

प्रकाशित कथा संग्रह : विशेष चर्चित : केवल पिता, धरातल, काल विदूषक, सिलसिला अकर्मक क्रिया, पुल टूटते हुए, खारिज और बेदखल।

चर्चित कहानियां प्रकाशित उपन्यास : चालीस विशेष चर्चित : दराजों में बद दस्तावेज, लौटते हुए, कई अंधेरों के पार प्रथम परिचय, घर न घाट, सुबह की तलाश, बैरंग खत, माया मृग व्यंग्य संग्रह : किस्सा एक खरगोश का, दुनिया मेरे आगे।

विशेष : अनेक रचनाओं का अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में अनुवाद

पुरस्कार : अनेक बार हिंदी संस्थान उत्तर प्रदेश एवं अन्य संस्थानों से सम्मानित एवं पुरस्कृत।

शोध : व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर कई विश्वविद्यालयों में निरंतर शोध कार्य : सम्प्रति वर्तमान साहित्य मासिक का संपादन

वर्तमान पता : एफ. ई. नया कवि नगर गाजियाबाद 201002
फोन : 4758752 4714845